भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा

एम. ए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध)

प्रश्न पत्र-4

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

अध्याय 1	भाषा और भाषा विज्ञान	5
अध्याय 2	स्वनविज्ञान	30
अध्याय 3	रूप एवं वाक्य विज्ञान	52
अध्याय 4	अर्थ विज्ञान	74
अध्याय 5	भाषा विज्ञान का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध	92
अध्याय 6	हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि	95
अध्याय 7	हिन्दी और उसका विकास	115
अध्याय 8	हिन्दी की भाषिक संरचना	144
अध्याय 9	हिन्दी प्रचार–आन्दोलन और हिन्दी का विविध रूप	167
अध्याय 10	भाषा और लिपि	183
अध्याय 11	हिन्दी में कंप्यूटर सुविधाएँ	199

एम. ए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध)
भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा

प्रश्न पत्र : 4

पूर्णांक : 100
समय : 3 घण्टे

निर्देश

1. *पूरे पाठ्यक्रम से दस अति लघु प्रश्न पूछे जाएंगे। परीक्षार्थियों को प्रत्येक प्रश्न का (लगभग 30 से 50 शब्दों में) उत्तर देना होगा। प्रत्येक प्रश्न 2 अंकों का होगा। पूरा प्रश्न 20 अंकों का होगा।*
2. *पूरे पाठ्यक्रम से 10 लघूत्तरी प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनमें से परीक्षार्थियों को 7 प्रश्नों के (लगभग 100-150 शब्दों में) उत्तर देने होंगे। प्रत्येक प्रश्न 5 अंक को होगा। पूरा प्रश्न 35 अंकों का होगा।*
3. *खण्ड "क" और "ख" दोनों खण्डों से कम से कम दो-दो और कुल मिलाकर पाँच प्रश्न पूछे जाएंगे। परीक्षार्थियों को तीन प्रश्नों के उत्तर देना होगा। जिनमें से प्रत्येक खण्ड से कम से कम एक प्रश्न करना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न 15 अंकों का होगा।*

(क) भाषा विज्ञान

1. भाषा और भाषा विज्ञान
   भाषा : परिभाषा और प्रव त्ति — भाषा : व्यवस्था और भाषा-व्यवहार
   भाषा : संरचना और भाषिक-प्रकार्य — भाषाविज्ञान : परिभाषा-स्वरूप एवं व्याप्ति
   भाषाविज्ञान : अध्ययन की दिशाएँ (वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक)
2. स्वनविज्ञान
   स्वनविज्ञान : स्वरुप और शाखाएं वाग्यंत्र और ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया
   स्वन : अवधारण और वर्गीकरण, — स्वनगुण और उसकी सार्थकता, स्वनिक परिवर्तन की दिशाएँ
   स्वनिम : परिभाषा : अवधारण और भेद
3. रूप और वाक्य
   रुपिम की अवधारणा और भेद (मुक्त-आबद्ध, अर्थदर्शी-संबंधदर्शी रुपिम), संबंधदर्शी रूपिम के भेद और प्रकार्य।
   वाक्य की अवधारणा और भाषा की इकाई के रूप में वाक्य,
   अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद, वाक्य के भेद, निकटस्थ अवयव, वाक्य के गहन संरचना
4. अर्थविज्ञान
   अर्थ की अवधारणा, शब्द-अर्थ संबंध, — एकार्थकता, अनेकार्थता, विलोम,
   अर्थ-बोध के साधन, अर्थ-परिवर्तन के कारण, अर्थ-परिवर्तन की दिशाएं
5. भाषा विज्ञान का अन्य विषयों से संबंध
   साहित्य के अध्ययन में भाषा विज्ञान की उपयोगिता, भाषा विज्ञान और व्याकरण संबंध।

(ख) हिन्दी भाषा

1. हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि
   भारतीय आर्य भाषाएँ
   प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ-वैदिक तथा लौकिक संस्क त : परिचय
   मध्ययुगीन भारतीय आर्य भाषाएँ-पालि, प्राक त तथा अपभ्रंश-परिचय, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ-परिचय
   आधुनिक भारतीय आर्य वर्गीकरण-हार्नले और ग्रियर्सन के वर्गीकरण
2. हिन्दी और उसका विकास
   अपभ्रश (अवहट्ठ सहित) और पुरानी हिंदी स्वरूप और संबंध हिंदी की उपभाषाएं : पश्चिमी हिंदी और उनकी बोलियां
   पूर्वी हिंदी और उनकी बोलियाँ, राजस्थानी और उनकी बोलियाँ, पहाड़ी और उनकी बोलियाँ
   काव्य भाषा के रूप में अवधी का उद्भव और विकास, काव्य-भाषा के रूप में ब्रज का उद्भव और विकास, साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी बोली का उद्भव और विकास, मानक हिंदी का रूपगत विवेचन
3. हिन्दी का भाषिक स्वरूप
   हिन्दी की स्वनिम व्यवस्था-खंड्य, खंड्येतर — खंड्य स्वनिम वर्गीकरण-स्वर एवं व्यंजन
   हिन्दी शब्द-संरचना-उपसर्ग, प्रत्यय, समस्तपद — रूप रचना-हिन्दी की व्याकरणिक कोटियाँ
   लिंग, वचन, कारक और काल की व्यवस्था संदर्भ से हिन्दी — संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया रूप।
   हिन्दी वाक्य रचना : सार्थकता, पदक्रम, अन्विति।
4. हिन्दी प्रसार आंदोलन और हिन्दी के विविध रूप
   हिन्दी-प्रसार आंदोलन-प्रमुख व्यक्तियों और संस्थाओं का योगदान हिन्दी के विविध रूप-बोली, मानक भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा, संचार भाषा हिन्दी की संवैधानिक स्थिति।
5. नागरी लिपि
   नागरी लिपि नामकरण और विकास — नागरी लिपि की वैज्ञानिकता
   नागरी लिपि का मानकीकरण
6. हिन्दी में कंप्यूटर सुविधाएं
   आंकड़ा-संसाधन और शब्द-संसाधन — वर्तनी-शोधन
   हिन्दी भाषा-शिक्षण

अध्याय - 1
भाषा और भाषा विज्ञान

1.1 भाषा और भाषा के भेद

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अतः समाज में रहते हुए सदा विचार-विमर्श की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप में भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों को भाषा की संज्ञा दी जाती है। भावाभिव्यक्ति संदर्भ में हम अनेक माध्यमों को सहारा लेते हैं; यथा – स्पर्श कर, चुटकी बजाकर, आँख घुमा या दबाकर, उँगली को आधार बनाकर, गहरी साँस छोड़कर, मुख के विभिन्न अंगों के सहयोग से ध्वनि उच्चारण कर आदि।

भाषा की स्पष्टता के ध्यान में रखकर उसके निम्नलिखित वर्ग बना सकते हैं –

1. **मूक भाषा**

   भाषा की ध्वनि रहित स्थिति में ही ऐसी भावभिव्यक्ति होती है। इसे भाषा का अव्यक्त रूप भी कहा जा सकता है। संकेत, चिह्न, स्पर्श आदि भावाभिव्यक्ति के माध्यम इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। पुष्प की भाषा भी मूक है।

2. **अस्पष्ट भाषा**

   जब व्यक्त भाषा का पूर्ण या स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है, तो उसे अस्पष्ट कहते हैं, यथा – चिड़ियाँ प्रातः काल से अपना गीत शुरू कर देती है, किन्तु उनके गीत का स्पष्ट ज्ञान सामान्य व्यक्ति नहीं कर पाता है। इस प्रकार पक्षियों का गीत मानव के लिए अस्पष्ट भाषा है।

3. **स्पष्ट भाषा**

   जब भावाभिव्यक्ति पूर्ण स्पष्ट हो, तो ऐसी व्यक्त भाषा को स्पष्ट कहते हैं। जब मनुष्य मुख अवयवों के माध्यम से अर्थमयी या याद च्छिक ध्वनि-समष्टि का प्रयोग करता है, तो ऐसी भाषा का रूप सामने आता है। यह भाषा मानव-व्यवहार और उसकी उन्नति में सर्वाधिक सहयोगी है।

   विचार-विनिमय के विभिन्न साधनों को ध्यान में रखकर भाषा को मुख्य रूप से निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

   1. **स्पर्श भाषा** :– इसमें विचारों की अभिव्यक्ति शरीर के एक अथवा अधिक अंगों के स्पर्श-माध्यम से होती है। इसमें भाषा के प्रयोगकर्ता और ग्रहणकर्ता में निकटता आवश्यक होती है।
   2. **इंगित भाषा** :- इसे आंगिक भाषा भी कहते हैं। इसमें विचारों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार के संकेतों के माध्यम से होती है; यथा – हरी झंडी या हरी बत्ती मार्ग साफ या आगे बढ़ाने का संकेत है या बत्ती मार्ग अवरुद्ध होने या रुकने का संकेत है।
   3. **वाचिक भाषा** :– इसके लिए 'मौखिक' शब्द का भी प्रयोग होता है। ऐसी भाषा में ध्वनि-संकेत भावाभिव्यक्ति

के मुख्य साधन होते हैं। इसमें विचार-विनिमय हेतु मुख के विभिन्न अवयवों का सहयोग लिया जाता है, अर्थात इसमें भावाभिव्यक्ति बोलकर की जाती है। यह सर्वाधिक प्रयुक्त भाषा है। सामान्यतः इस भाषा का प्रयोग सामने बैठे हुए व्यक्ति के साथ होता है। यंत्र-आधारित दूरभाष (टेलीफोन), वायरलेस आदि की भाषा भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आती है। भाषा के सूक्ष्म विभाजन में इसे यांत्रिक या यंत्र-आधारित भाषा के भिन्न वर्ग में रख सकते हैं।

4. **लिखित भाषा** :- भावाभिव्यक्ति का सर्वोत्त माध्यम लिखित भाषा है, इसमें अपने विचार का विनिमय लिखकर अर्थात् मुख्यतः लिपि का सहारा लेकर किया जाता है। इस भाषा में लिपि के आधार पर समय तथा स्थान की सीमा पर करने की शक्ति होती है। एक समय लिपिबद्ध किया गया विचार शताब्दियों बाद पढ़ कर समझा जा सकता है और कोई भी लिपिबद्ध विचार या संदेश देश-विदेश के किसी भी स्थान को भेजा जा सकता है। किसी भी समाज की उन्नति मुख्यतः वहाँ की भाषा-उन्नति पर निर्भर होती है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि उन्नत देश की भाषा भी उन्नत होती है। इसके साथ भाषा को मानवीय सभ्यता का उत्कर्ष आधार माना गया है। काव्यदर्श में वाणी (भाषा) को जीवन का मुख्याधार बताते हुए कहा गया है –

"वाचामेय प्रसादेन लोक यात्रा प्रवर्तते।"

1.2 भाषा : अर्थ एवं परिभाषा

भाषा शब्द संस्कृत की भाष् धातु से निष्पन्न है। इसका अर्थ है– व्यक्त वाणी अर्थात् बोलना या कहना। किसी भी वस्तु की स्पष्ट और वैज्ञानिक परिभाषा करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। शुद्ध परिभाषा के विषय में न्याय-शास्त्र में कहा गया है कि उसका अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोष से रहित होना आवश्यक है। भारतीय आचार्यों से लेकर पाश्चात्य विद्वानों ने भी भाषा की परिभाषा अपने-अपने चिन्तन के अनुसार भिन्न-भिन्न ढंग से की है –

(क) संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएँ –

1. महर्षि पतु जलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी महाभाष्य में भाषा की परिभाषा करते हुए कहा है– "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।" जो वाणी से व्यक्त हो उसे भाषा की संज्ञा दी जाती है।
2. भर्तृहरि ने शब्द उत्पत्ति तथा ग्रहण के सम्बन्ध में भाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है –

   "शब्द कारणमर्थस्य स हि तेनोपजायन्ते।
   तथा च बुद्धि विषयादर्थाच्छब्दः प्रतीयते॥"

   3/3/3/3/2

   "बुद्ध, यर्थादेव बुद्धयर्थे जाते तदानि द श्यते।

   3/3/3/3

   शब्द व्यापार (भाषा) दो बुद्धियों के बीच विचार आदान-प्रदान का एक माध्यम है।
3. अमरकोष में भाषा को वाणी का पर्यायवाची बताते हुए कहा गया है।

   "ब्राही तु भारती भाषा गीर् वाग् वाणी सरस्वती।"[1]

(ख) **आधुनिक भारतीय भाषा - वैज्ञानिकों की परिभाषाएँ –** आधुनिक युग में अनेक वैयाकरणों तथा भाषा-वैज्ञानिकों ने भी भाषा को परिभाषित किया है, जिनमें कुछ उद्धरणीय परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं –

1. हिन्दी के प्रसिद्ध वैयाकरण पं. कामता प्रसाद गुरु ने 'हिन्दी व्याकरण' पुस्तक की प्रस्तावना में कहा है –

---

1. पतंजलि महाभाष्य 1/3/82

"भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार या स्पष्टता समझ सकता है।"[1]

2. दुनीचंद ने अपनी पुस्तक "हिन्दी व्याकरण" में भाषा की परिभाषा करते हुए लिखा है –

"हम अपने मन के भाव प्रकट करने के लिए जिन सांकेतिक ध्वनियों का उच्चारण करते हैं, उन्हें भाषा कहते हैं।"[2]

3. डॉ. श्यामसुन्दर दास ने कहा है – "मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।"[3]

4. डॉ. उदयनारायण तिवारी ने अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा है– "भाषा मनुष्य के प्रतीकात्मक कार्यों का प्राथमिक एवं बहु विस्त त रूप है। इसके प्रतीक ध्वनि अवयवों से उत्पन्न ध्वनि अथवा ध्वनि-समूहों से बने होते हैं एवं विभिन्न वर्गों तथा आकारों में इस प्रकार सजाये हुए रहते हैं कि उनका संयुक्त एवं डौल आकार (ढाँचा) बन जाता है।"[4]

5. डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार– "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः द च्छिक (arbitrary) ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"[5]

6. आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार – "उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है। जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग करते हैं, उस या द च्छिक, रूढ़, ध्वनि-संकेत की प्रणाली को भाषा कहते हैं।"[6]

7. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार – "विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द-समूह ही भाषा है। जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।"[7]

8. डॉ. बाबूराम सक्सेना के मतानुसार - "जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उसे भाषा कहते हैं।"[8]

9. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए लिखा है – "भाषा मुख से उच्चरित उस परम्परागत सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की व्यक्ति को कहते हैं, जिसकी सहायता से मानव आपस में विचार एवं भावों को आदान-प्रदान करते हैं तथा जिसको वे स्वेच्छानुसार अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं।"[9]

---

1. पं. कामता प्रसाद गुरु - हिन्दी व्याकरण
2. दुनीचन्द - हिन्दी व्याकरण प. 1
3. डॉ. श्याम सुन्दर दास - भाषा विज्ञान, प. 20
4. डॉ. उदयनारायण तिवारी - भाषाशास्त्र की रूपरेखा, प. 6
5. डॉ. भोलानाथ तिवारी - भाषा विज्ञान, प. 5
6. आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा – भाषा विज्ञान की भूमिका, प. 19-20
7. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी –
8. डॉ. बाबूराम सक्सेना– भाषा विज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा, प. 66
9. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना – सामान्य भाषा विज्ञान, प. 6

10. डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल के अनुसार – "भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छन्द प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है जिससे मानव समाज में अपने भावों का परस्पर आदान-प्रदान करते हुए एक-दूसरे को सहयोग देता है।"[1]

11. श्री नलिनि मोहन सन्याल का कथन है – "अपने स्वर को विविध प्रकार से संयुक्त तथा विन्यस्त करने से उसके जो-जो आकार होते हैं उनका संकेतों के सद श व्यवहार कर अपनी चिन्ताओं को तथा मनोभावों को जिस साधन से हम प्रकाशित करते हैं, उस साधन को भाषा कहते हैं।"[2]

12. डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के मतानुसार – "भाषा याद च्छिक वाक्प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।"[3]

(ग) पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ –

पाश्चात्य विद्वानों ने भी विभिन्न द ष्टियों से भाषा को परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ द्रष्टव्य हैं –

1. प्लेटो ने विचार तथा भाषा पर अपने भाव व्यक्त करते हुए लिखा है–'विचार आत्मा की मूक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।'

2. मैक्समूलर के अनुसार–"भाषा और कुछ नहीं है केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा अविष्कृत ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।"[4]

3. क्रोचे द्वारा लिखित परिभाषा इस प्रकार है – "Language is articulate, limited organised sound, employed in expression".[5] अर्थात् भाषा उस स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को कहते हैं, जो अभिव्यंजना के लिए नियुक्त की जाती है।

4. ब्लॉक और ट्रेगर के अनुसार – "A Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group co-operates".[6] अर्थात् भाषा व्यक्त ध्वनि चिह्नों की उस पद्धति को कहते हैं जिसके माध्यम से समाज-समूह परस्पर व्यवहार करते हैं।

5. हेनरी स्वीट का कथन है – "Language may be defined as expression of thought by means of speech-sound."[7] अर्थात् जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है, उसे भाषा कहते हैं।

6. ए. एच. गार्डिनर के विचार से "The common definition of speech is the use of articulate sound sybols for the expression of thought."[8] अर्थात् विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट ध्वनि-संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उन्हें भाषा कहते हैं।

---

1. डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल – भाषा विज्ञान और हिन्दी प . 10
2. श्री नलिनी मोहन संन्याल – भाषा विज्ञान, प . 68
3. डॉ. देवीशंकर द्विवेदी – भाषा-भाषिकी, प . 11
4. मैक्समूलर – भाषा विज्ञान पर व्याख्यान (अनु. डॉ. हेमचन्द जोशी) प . 18
5. Croce — Theory of Aesthetic, page 235
6. Block and Trager— out line of Linguistics malysis
7. Henry sweet — The History language
8. A.H. Gardiner — Speech & Languaged

ऊपर उद्ध त सभी परिभाषाओं में भिन्न-भिन्न द ष्टिकोण सामने आते हैं। वैज्ञानिकता को द ष्टि में रखकर भाषा की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं – "भाषा याद च्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था हैं, जिसके माध्यम से मानव अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है।'

भाषा की वैज्ञानिक परिभाषा में तीन बातें सामने आती हैं –

(क) **भाषा याद च्छिक संकेतों पर आधारित है :–** किसी भी भाषा के शब्द तथा अर्थ में कोई तर्कसंगत संबंध नही होता है। यदि शब्द विशेष में अर्थ का संबंध तर्क संगत होता तो प्रत्येक वस्तु के लिए सभी भाषाओं में एक ही वस्तु के लिए अलग-अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं, यथा –

हिन्दी	**संस्कृत**	**अंग्रेजी**
लड़की	बालिका	Girl
कुत्ता	कुक्कुरः	Dog

सभी शब्दों के विषय में यह भी स्पष्ट नहीं किया जा सकता है कि विशेष जीव या वस्तु को प्रारम्भ से गाय, कुत्ता, कुर्सी ही क्यों कहा गया है। ये ध्वनियाँ इच्छानुसार निर्धारित कर समाज द्वारा स्वीकार कर ली जाती है। इस प्रकार निश्चित ध्वनियों से निश्चित जीव या वस्तु का बोध होता है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा याद च्छिक है।

(ख) **भाषा ध्वनि-संकेतों पर आधारित है :–** भाषा विज्ञान के अन्तर्गत जिस भाषा का अध्ययन किया जाता है वह मनुष्य के मुख-अवयवों से उच्चरित होती है। इस प्रकार भावाभिंव्यजना की स्पर्श तथा संकेत-आधारित भाषा इससे अलग हो जाती है। इसके अन्तर्गत वाचिक तथा लिखित भाषाएँ ही आती हैं। इस प्रकार ध्वनि-संकेत एक भेदक तत्त्व है, जिसका निर्धारण आवश्यक होता है।

(ग) **भाषा व्यवस्था पर आधारित है :–** व्यवस्था का अर्थ-शब्द विशेष अर्थ से संबंध जोड़ देना और समाज में उसका प्रयोग प्रचलन तथा प्रसिद्ध होना है। भाषा में ऐसी व्यवस्था होती है। इस व्यवस्था के अनुसार ही बालक धीरे-धीरे सामान्य शब्दों - गाय, घर तथा पानी आदि का प्रयोग करने लगता है। सामान्यताः इन जीवों, वस्तुओं को ये नाम क्यों दिए गए, वह इसे जानने का प्रयत्न ही नहीं करता है, यदि वह प्रयत्न करे भी तो प्रत्येक स्थिति में सफल भी नहीं होगा, क्योंकि यह व्यवस्था प्रयोग-प्रवाह की रूढ़ि स्थिति है।

1.3 भाषा की प्रव त्ति

भाषा के सहज गुण-धर्म को भाषा के अभिलक्षण या उस की प्रकृति कहते हैं। इसे ही भाषा की विशेषताएँ भी कहते हैं। भाषा-अभिलक्षण को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। भाषा का प्रथम अभिलक्षण वह है जो सभी भाषाओं के लिए मान्य होता है, इसे भाषा का सर्वमान्य अभिलक्षण कह सकते हैं। द्वितीय अभिलक्षण वह है जो भाषा विशेष में पाया जाता है। इससे एक भाषा से दूसरी भाषा की भिन्नता स्पष्टता होती है। हम इसे विशिष्ट भाषागत अभिलक्षण भी कह सकते हैं।

यहाँ मुख्यतः ऐसे अभिलक्षणों के विषय में विचार किया जा रहा है, जो विश्व की समस्त भाषाओं में पाये जाते हैं –

1. भाषा सामाजिक सम्पत्ति है

सामाजिक व्यवहार भाषा का मुख्य उद्देश्य है। हम भाषा के सहारे अकेले में सोचते या चिन्तन करते हैं, किन्तु वह भाषा इस सामान्य याद च्छिक ध्वनि-प्रतिकों पर आधारित भाषा से भिन्न होती है। भाषा अघोपांत समाज से संबंधित होती है। भाषा का विकास समाज में हुआ, उसका अर्जन समाज में होता है और उसका प्रयोग भी समाज में ही होता है। यह तथ्य द ष्टव्य है कि बच्चा जिस समाज में पैदा होता है तथा पलता है, वह उसी समाज की भाषा सीखता है।

2. भाषा पैत्रिक सम्पत्ति नहीं है

कुछ लोगों का कथन है कि पुत्र को पैत्रिक सम्पत्ति (घर, धन, बाग आदि) के समान भाषा भी प्राप्त होती है। अतः भाषा पैत्रिक सम्पत्ति है, किन्तु यह सत्य नहीं है। यदि किसी भारतीय बच्चे को एक-दो वर्ष अवस्था (शिशु-काल) में किन्हीं विदेशी भाषा-भाषी लोगों के साथ कर दिया जाये, तो वह उनकी ही भाषा बोलेगा। यदि भाषा पैत्रिक सम्पत्ति होती, तो वह बालक बोलने के योग्य होने पर अपने माता-पिता की ही भाषा बोलता।

3. भाषा व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है

भाषा सामाजिक सम्पत्ति है। भाषा का निर्माण भी समाज के द्वारा होता है। महान साहित्यकार या भाषा-प्रेमी भाषा में कुछ एक शब्दों को जोड़ या उसमें से कुछ एक शब्दों को घटा सकता है इससे स्पष्ट होता है कि कोई साहित्यकार या भाषा-प्रेमी भाषा का निर्माता नहीं हो सकता है। भाषा में होने वाला परिवर्तन भी व्यक्तिकृत न होकर समाजकृत होता है।

4. भाषा अर्जित सम्पत्ति है

भाषा परम्परा से प्राप्त सम्पत्ति है, किन्तु यह पैत्रिक सम्पत्ति की भांति नहीं प्राप्त होती है। मनुष्य को भाषा सीखने के लिए प्रयास करना पड़ता है। सामाजिक व्यवहार भाषा सीखने में मार्ग-दर्शन के रूप में कार्य करता है, किन्तु मनुष्य को प्रयास के साथ उसका अनुकरण करना होता है। मनुष्य अपनी मात भाषा के समान प्रयोगार्थ अन्य भाषाओं को भी प्रयत्न कर सीख सकता है। इसे स्पष्ट होता है, भाषा अर्जित सम्पत्ति है।

5. भाषा व्यवहार अनुकरण द्वारा अर्जित की जाती है

शिशु बौद्धिक विकास के साथ अपने आसपास के लोगों की ध्वनियों को अनुकरण के आधार पर उन्हीं के समान प्रयोग करने का प्रयत्न करता है। प्रारम्भ में वह या, मा, बा आदि ध्वनियों का अनुकरण करता है फिर सामान्य शब्दों को अपना लेता है। यह अनुकरण तभी सम्भव होता है जब उसे सीखने योग्य व्यवहारिक वातावरण प्राप्त हो। वैसे व्याकरण, कोश आदि से भी भाषा सीखी जा सकती है, किन्तु यह सब व्यवहारिक आधार पर सीखी गई भाषा के बाद ही सम्भव है। यदि किसी शिशु को निर्जन स्थान पर छोड़ दिए जाए तो वह बोल भी नही पाएगा, क्योंकि व्यवहार के अभाव में उसे भाषा का ज्ञान नहीं हो पाएगा।

6. भाषा सामाजिक स्तर पर आधारित होती है

भाषा का सामाजिक स्तर पर भेद हो जाता है। विस्त त क्षेत्र में प्रयुक्त किसी भी भाषा की आपसी भिन्नता देख सकते हैं। सामान्य रूप में सभी हिन्दी भाषा-भाषी हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं, किन्तु विभिन्न क्षेत्रों की हिन्दी में भिन्नता होती है। यह भिन्नता उनके शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक आदि स्तरों के कारण होती है। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र की अपनी शब्दावली होती है जिसके कारण भिन्नता दिखाई पड़ती है। शिक्षित व्यक्ति जितना सतर्क रहकर भाषा का प्रयोग करता है सामान्य अथवा अशिक्षित व्यक्ति उतनी सतर्कता से भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता है। यह स्तरीय तथ्य किसी भी भाषा के विभिन्न कालों के भाषा-प्रयोग से भी अनुभव कर सकते हैं।

7. भाषा सर्वव्यापक है

यह सर्वमान्य तथ्य है कि विश्व के समस्त कार्यों का सम्पादन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाषा के ही माध्यम से होता है। समस्त ज्ञान भाषा पर आधारित है। व्यक्ति-व्यक्ति का संबंध या व्यक्ति-समाज का संबंध भाषा के अभाव में असम्भव है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है –

"न सोस्ति प्रत्ययों लोके यः शब्दानुगमाद ते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सवं शब्देन भासते।"
वाक्यपदीय 123-24

मनुष्य के मनन-चिन्तन तथा भावाव्यक्ति का मूल माध्यम भाषा है, यह भी भाषा की सर्वव्यापकता का प्रबल-प्रमाण है।

8. भाषा सतत प्रवाहमयी है

मनुष्य के साथ भाषा सतत गतिशीली अवस्था में विद्यमान रहती है। भाषा की उपमा प्रवाहमान जलस्रोत-नदी से दी जा सकती है, जो पर्व से निकल कर समुद्र तक लगातार बढ़ती रहती है, अपने मार्ग में वह कहीं सूखती नहीं है। समाज के साथ भाषा का आरम्भ हुआ और आज तक गतिशील है। मानव समाज जब तक रहेगा तब तक भाषा का स्थायित्व पूर्ण निश्चित है किसी व्यक्ति या समाज के द्वारा उसमें परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु उसे समाप्त करने की किसी में शक्ति नहीं होती है।

9. भाषा सम्प्रेषण मूलतः वाचिक है

भाव सम्प्रेषण सांकेतिक, आंगिक, लिखित और यांत्रिक आदि अनेक रूपों में होता है, किन्तु इनकी कुछ सीमाएँ हैं अर्थात् इन माध्यमों के द्वारा पूर्ण भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं। स्पर्श तथा संकेत भाषा तो स्पष्ट रूप में अपूर्ण है, साथ ही लिखित भाषा से भी पूर्ण भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं। वाचिक भाषा में आरोह-अवरोह तथा विभिन्न भाव-भंगिमाओं के कारण पूर्ण सशक्त भावाभिव्यक्ति सम्भव होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण पूर्ण सशक्त भावाभिव्यक्ति सम्भव होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण वाचिक भाषा को सजीव तथा लिखित तथा अन्य भाषाओं को निर्जीव भाषा कह सकते हैं। वाचिक भाषा का प्रयोग भी सर्वाधिक रूप में होता है। अनेक अनपढ़ व्यक्ति भी ऐसी भाषा का सहज, स्वाभाविक तथा आकर्षक प्रयोग करते हैं।

10. भाषा चिरपरिवर्तनशील है

संसार की सभी वस्तुओं के समान भाषा भी परिवर्तनशील है। किसी भी देश के एक काल की भाषा परवर्ती काल में पूर्वत् नहीं रह सकती, उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाता है। यह परिवर्तन अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण होता है। संस्कृत में 'साहस' का अर्थ अनुचित या अनैतिक कार्य के लिए उत्साह दिखाना था, तो हिन्दी में यह शब्द अच्छे कार्य के लिए उत्साह दिखाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भाषा अनुकरण के माध्यम में सीखी जाती है। मूल-भाषा (वाचक-भाषा) का पूर्ण अनुकरण सम्भव नहीं है। इसके कारण हैं– अनुकरण की अपूर्णता, शारीरिक तथा मानसिक रचना की भिन्नता एवं भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की भिन्नता। इस प्रकार भाषा प्रतिफल परिवर्तित होती रहती है।

11. भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित होता है

भाषा के दो रूप मुख्य हैं – मौखिक तथा लिखित। इनमें भाषा का प्रारम्भिक रूप मौखिक ही होता है। लिपि का विकास तो भाषा जन्म के पर्याप्त समय बाद में होता है। लिखित भाषा में ध्वनियों का ही अंकन किया जाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि ध्वन्यात्मक भाषा के अभाव में लिपि की कल्पना भी असम्भव है। उच्चरित भाषा के लिए लिपि आवश्यक माध्यम नही है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज भी ऐसे अनगिनत व्यक्ति मिल जाएँगे जो उच्चरित भाषा का सुन्दर प्रयोग करते हैं, किन्तु उन्हें लिपि का ज्ञान होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित या मौखिक है और उसका परवर्ती विकसित रूप लिखित है।

12. भाषा का आरम्भ वाक्य से हुआ है

सामान्यतः भाव या विचार पूर्णता के द्योतक होते हैं। पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति सार्थक, स्वतंत्र और पूर्ण अर्थवान इकाई-वाक्य से ही सम्भव है। कभी-कभी तो एक शब्द से भी पूर्ण अर्थ का बोध होता है; यथा–

'जाओ' आदि। वास्तव में ये शब्द न होकर वाक्य के एक विशेष रूप में प्रयुक्त हैं। ऐसे वाक्यों में वाक्यांश छिपा होता है। यहाँ पर वाक्य का उद्देश्य-अंश 'तुम' छिपा हुआ है। श्रोता ऐसे वाक्यों को सुनकर व्याकरणिक ढंग से उसकी पूर्ति कर लेता है। इस प्रकार ये वाक्य बन जाते हैं – 'तुम जाओ।' 'तुम आओ' बच्चा एक ध्वनि या वर्ण के माध्यम से भाव प्रकट करता है। बच्चे की ध्वनि भावात्मक द ष्टि से संबंधित होने के कारण एक सीमा में पूर्णवाक्य के प्रतीक में होती है; यथा – 'प' से भाव निकलता है–मुझे प्यास लगी है या मुझे दूध दे दो या मुझे पानी दे दो। यहाँ 'खग जाने खग ही की भाषा' का सिद्धान्त अवश्य लागू होता है। जिसके ह्रदय में ममता और वात्सल्य का भाव होगा या जग सकेगा वह ही ऐसे वाक्यों की अर्थ-अभिव्यक्ति को ग्रहण कर सकेगा।

13. भाषा मानकीकरण पर आधारित होती है

भाषा परिवर्तनशील है, यही कारण है कि एक ही भाषा एक युग के पश्चात् दूसरे युग में पहुँचकर पर्याप्त भिन्न हो जाती है। इस प्रकार परिवर्तन के कारण भाषा में विविधता आ जाती है। यदि भाषा-परिवर्तन पर बिल्कुल ही नियंत्रण न रखा जाए तो तीव्रगति के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुछ ही दिनों में भाषा का रूप अबोध्य बन जाएगा। भाषा परिवर्तन पूर्णरूप से रोका तो नहीं जा सकता, किन्तु भाषा में बोधगम्यता बनाए रखने के लिए उसके परिवर्तन-क्रम का स्थिरीकरण आवश्यक होता है। इस प्रकार की स्थिरता से भाषा का मानकीकरण हो जाता है।

14. भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है

विभिन्न भाषाओं के प्राचीन, मध्ययुगीन तथा वर्तमान रूपों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप संयोगावस्था में होता है। इसे संश्लेषावस्था भी कहते हैं। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आता है और वियोगावस्था या विश्लेषणावस्था आ जाती है। भाषा की संयोगावस्था में वाक्य के विभिन्न अवयव आपस में मिले हुए लिखे-बोले जाते हैं। परवर्ती अवस्था में यह संयोगवस्था धीरे-धीरे शिथिल होती जाती है; यथा –

"रमेशस्य पुत्रः ग हं गच्छति।

रमेश का पुत्र घर जाता है। 'रमेशस्य' तथा 'गच्छति' संयोगवस्था में प्रयुक्त हैं।

15. भाषा का अन्तिम रूप नहीं है

वस्तु बनते-बनते एक अवस्था में पूर्ण हो जाती है, तो उसका अन्तिम रूप निश्चित हो जाता है। भाषा के विषय में यह बात सत्य नहीं है। भाषा चिरपरिवर्तशील है। इसलिए किसी भी भाषा का अन्तिम रूप ढूँढ़ना निरर्थक है और उसका अन्तिम रूप प्राप्त कर पाना असम्भव है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि यह प्रकृति जीवित भाषा के संदर्भ में ही मिलती है।

16. भाषा का प्रवाह कठिनता से सरलता की ओर होता है

विभिन्न भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भाषा का प्रवाह कठिनता से सरलता की ओर होता है। मनुष्य स्वभावतः अल्प परिश्रम से अधिक कार्य करना चाहता है। इसी आधार पर किया गया प्रयत्न भाषा में सरलता का गुण भर देता है। इस प्रकृति का उदाहरण द्रष्टव्य है – डॉक्टर साहब > डाक्टर साहब > डाटर साहब > डाक साहब > डाक् साब > डाक्साब।

17. भाषा नैसर्गिक क्रिया है

मात भाषा सहज रूप में अनुकरण के माध्यम से सीखी जाती है। अन्य भाषाएँ भी बौद्धिक प्रयत्न से सीखी जाती है। दोनों प्रकार की भाषाओं के सीखने में अन्तर यह है कि मात भाषा तब सीखी जाती है जब बुद्धि अविकसित होती है, अर्थात् बुद्धि विकास के साथ मात भाषा सीखी जाती है। इससे ही इस संदर्भ

में होनेवाले परिश्रम का ज्ञान नहीं होता है। जब हम अन्य भाषा सीखते हैं, तो बुद्धि-विकसित होने के कारण ज्ञान-अनुभव होता है। कोई भी भाषा सीख लेने के बाद उसका प्रयोग बिना किसी कठिनाई के किया जा सकता है। जिस प्रकार शारीरिक चेष्टाएँ स्वाभाविक रूप से होती हैं ठीक उसी प्रकार भाषा-ज्ञान के पश्चात् उसकी भी प्रयोग सहज-स्वाभाविक रूप में होता है।

18. प्रत्येक भाषा की निश्चित सीमाएँ होती है

प्रत्येक भाषा की अपनी भौगोलिक सीमा होती है अर्थात् एक निश्चित दूरी तक एक भाषा का प्रयोग होता है। भाषा-प्रयोग के विषय में यह कहावत प्रचलित है—"चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी।" एक भाषा से अन्य भाषा की भिन्नता कम या अधिक हो सकती है, किन्तु भिन्नता होती अवश्य है। एक निश्चित सीमा के पश्चात् दूसरी भाषा की भौगालिक सीमा प्रारम्भ हो जाती है; यथा – असमी भाषा असम सीमा तक प्रयुक्त होती है, उसके बाद बंगला की सीमा शुरू हो जाती है। प्रत्येक भाषा की अपनी ऐतिहासिक सीमा होती है। एक निश्चित समय तक एक भाषा प्रयुक्त होती है, उससे पूर्ववर्ती तथा परवर्ती भाषा उससे भिन्न होती है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी निश्चित-प्रयोग समय से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है।

1.4 भाषा-व्यवस्था और भाषा-व्यवहार

भाषा और समाज दोनों अभिन्न हैं। भाषा मनुष्य की सर्वोत्तम उपलब्धि है। भाषा के ही माध्यम से मनुष्य सामाजिक बना है। मनुष्य ने भावादान-प्रदान को व्यवस्थित करने के लिए भाषा को व्यवस्थित किया है। इस प्रकार मनुष्य एक ओर भाषा को व्यवस्था प्रदान करता है, तो दूसरी ओर भाषा का औचित्यपूर्ण प्रयोग करता है। भाषा-व्यवस्था यदि व्याकरण पर आधारित होती हैं तो भाषा-व्यवहार लोक-सम्मति पर गतिशील होता है। भाषा-व्यवस्था और भाषा-व्यवहार दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं।

1. भाषा-व्यवस्था

भाषा को व्यवस्थित करनेवाला शास्त्र 'व्याकरण' है। विभिन्न व्याकरणिक कोटियों के आधार पर भाषा को व्यवस्थित रूप मिलता है। इसमें लिंग, वचन, पुरुष, कारक व काल आदि प्रमुख व्याकरणिक कोटियाँ हैं। स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा की व्यवस्थित और अनुकूल रचना आवश्यक है। इस प्रारूप के लिए विभिन्न व्याकरणिक कोटियों का ध्यान रखना अनिवार्य है।

विभिन्न पदों में व्याकरणिक कोटियों की योजना :– वाक्य भाषा की पूर्ण सार्थक इकाई है। जब वाक्य में योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति गुण सम्पन्नता होती है, तभी वाक्य का व्यवस्थितरूप सामने आता है। इन्हीं संदर्भों में व्याकरणिक कोटियों की उपयोगी भूमिका होती है।

(अ) **लिंग-व्यवस्था :–** वाक्य रचना के लिए पद में विभिन्न लिंगों की भाषयी योजना की जाती है। जब वाक्य की रचना की जाती है, तो एक पदानुरूप दूसरे पद में लिंग की योजना की जाती है; यथा – 'छात्र' एक शब्द है। यह पद स जन में पुल्लिंग हो सकता है या स्त्रीलिंग रूप में 'छात्रा' हो सकता है। जब छात्र/छात्रा संज्ञा शब्द को उद्देश्य के रूप में प्रयोग करते हैं, तो इसी के अनुरूप क्रिया की व्यवस्था करनी होती है।

(i) मोहन घर जा रहा है।
मोहन घर जा रहा था।
मोहन घर जा रहा होगा।

(ii) लता घर जा रही है।
लता घर जा रही थी।
लता घर जा रही होगी।

प्रथम तीन वाक्यों में 'मोहन', उद्देश्य और कर्त्ता पद के अनुसार क्रिया 'जा रहा है', 'जा रहा था' और 'जा रहा होगा' में पुल्लिंग व्याकरणिक कोटे की व्यवस्था की गई है, तो अन्य तीन वाक्यों में 'लता' पदानुसार 'जा रही है', 'जा रही थी' और 'जा रही होगी' स्त्रीलिंग क्रिया पद की व्यवस्था की गई है।

(आ) **वचन-व्यवस्था :–** वाक्य में एक पदानुसार अन्य पदों की व्यवस्था की जाती हे। इसे अन्विति की संज्ञा दी जाती है। वाक्य में वचन अन्विति अनिवार्य होती है। हिन्दी में वचन-व्यवस्था से कहीं सरल है क्योंकि संस्कृत में एकवचन और बहुवचन के साथ द्विवचन की भी व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अनुरूप वाक्य के पदों की योजना अपेक्षित होती है।

(i) बच्चा बहुत देर से हँस रहा है।
बच्चा बहुत देर से हँस रहा था।
बच्चा बहुत देर से हँस रहा होगा।

(ii) बच्चे बहुत देर से हँस रहे हैं।
बच्चे बहुत देर से हँस रहे थे।
बच्चे बहुत देर से हँस रहे होंगे।

यहाँ प्रारम्भिक तीन वाक्यों में बच्चा एकवचन कर्त्ता पद के अनुसार 'हँसना' क्रिया से एकवचन पदों–हँस रहा है; हँस रहा था, हँस रहा होगा' की रचना की गई है। उत्तरांश के तीन वाक्यों में कर्त्ता पद 'बच्चे' बहुवचन के अनुसार बहुवचन क्रिया पदों – 'हँस रहे हैं', 'हँस रहे थे' और 'हँस रहे होंगे' की योजना की गई है।

इस व्यवस्था के विपरीत पदों का प्रयोग वाक्य रचना के लिए अनिवार्य है।

(इ) पुरुष-व्यवस्था :– संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में तीन पुरुषों की व्यवस्था है। दोनों भाषाओं की पुरुष-व्यवस्था में चिन्तन और नामकरण की भिन्नता अवश्य है। संस्कृत में प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष नाम था। इस व्यवस्था में प्रथम पुरुष में विधाता (वह) को भी रखने में सर्वोपरि महत्त्व था। मध्यम पुरुष सामने स्थित व्यक्ति के लिए और उत्तम पुरुष अपने लिए था। हिन्दी में आधुनिकता का प्रभाव है उत्तम पुरुष (मैं, हम) को सर्वोपरि (उत्तम) स्थान दिया गया। मध्यम पुरुष को पूर्ववत् मध्यम स्थिति में रखा गया है। हिन्दी में प्रथम पुरुष को दूरी बनाते हुए अन्य पुरुष कह दिया गया है।

संस्कृत व्यवस्था	**हिन्दी व्यवस्था**
प्रथम पुरुष (सा, ते ताः)	उत्तम पुरुष (मैं, हम)
मध्यम पुरुष (त्वं, युवाम्, यूयम्)	मध्यम पुरुष (तू, तुम, आप)
उत्तम पुरुष (अहं, आवाम्, वयम्)	अन्य पुरुष (वह, वे)

वाक्य-रचना में पुरुष व्याकरणिक कोटि की अनिवार्यता है। इसके अभाव में वाक्य-रचना सम्भव नहीं होगी। पुरुष-अन्विति के कुछ उदाहरण द ष्टव्य है –

(क) **उत्तम पुरुष**
मैं विशाल के साथ बात कर रहा था।
मैं अब घर चल रहा हूँ।
हम खाना खा चुके हैं।

(ख) **मध्यम पुरुष**
तू कहाँ जा रहा है?
तुम क्या कर रहे हो?
आप क्या कर रहे हैं?

(ग) अन्य पुरुष
वह क्या पढ़ रहा है?
वे घर जा रहे हैं।

इन वाक्यों में उत्तम पुरुष (मैं, हम), मध्यम पुरुष (तू, तुम, आप) और अन्य पुरुष (वह, वे) के अनुरूप अन्य पदों की व्यवस्था की गई है।

इन प्रतिनिधि व्याकरणिक कोटियों के प्रतिनिधि उदाहरण देकर व्यवस्था का परिचय कराया गया है। यहाँ ध्यातव्य है कि वाक्य में एक पद के अनुरूप विभिन्न व्याकरणिक कोटियों की समन्वित योजना होती है; यथा–

'प्रदीप घर जा रहा है' वाक्य में प्रदीप पुल्लिंग, एकवचन, अन्य पुरुष व्याकरणिक योग्यता-सम्पन्न कर्त्ता (संज्ञा) पद है। इसके ही अनुरूप 'जा रहा है' एकवचन, अन्य पुरुष और वर्तमान कालिक क्रिया पद है।

2. भाषा-व्यवहार

भाषा व्यवहार का सम्बन्ध भाषा-प्रयोग से होता है। इस विषय में हम यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि व्याकरण-समस्त वाक्य लोक-स्वीकृति है या नहीं? वाक्य के व्याकरण सम्मत होने के साथ उसका लोक-स्वीकृत होना अनिवार्य है। वास्तव में भाषा-व्यवस्था का सीधा-सम्बन्ध भाषा की संरचना से है, तो भाषा-व्यवहार का सम्बन्ध भाषा के संरचनात्मक स्वरूप के औचित्य से है।

भाषा-व्यवस्था में स्पष्ट उल्लेख है कि विशेष्य के अनुरूप उसके साथ विश्लेषण प्रयुक्त होता है। 'गोरा लड़का', 'गोरी लड़की', साँवला लड़का', 'साँवली लड़की' भाषा-व्यवस्था के अनुसार लिंग और वचन व्याकरणिक कोटियों के अनुरूप है और भाषा-व्यवहार में औचित्यपूर्ण है।

'बैंगनी लड़की' 'नीला लड़का' में व्याकरणिक कोटियों की अन्विति है, किन्तु लोक-स्वीकृति सम्भव नहीं है।

इस प्रकार भाषा की तीन स्थितियाँ सम्भावित है –

1. भाषा व्यवस्थानुरूप किन्तु लोक-सम्मत (भाषा-प्रयोग) नहीं
2. भाषा व्यवस्थानुरूप नहीं, किन्तु लोक-सम्मत (भाषा-प्रयोग)
3. भाषा व्यवस्थानुरूप और लोक-सम्मत (भाषा-प्रयोग)

इस संदर्भ से हम अध्ययन करते हैं कि कोई वाक्य संरचनात्मक (भाषा-व्यवस्था) की द ष्टि से कितना अनुकूल है। लोक-व्यवहार (लोक-सम्मत) किस सीमा तक मान्य और ग्राह्य है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वाक्य संरचना वैज्ञानिक मान्यताओं और लोक-व्यवहार की द ष्टि से अतिक्रमण तो नहीं हो रहा है।

भाषा-प्रयोग को कुछ प्रमुख द ष्टियों में इस प्रकार विश्लेषित कर सकते हैं –

(1) **भावात्मकता :–** विशेष भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा-व्यवस्था में नया रूप अपनाया जाता है। खाना और भोजन दोनों पर्यायी शब्द है। भोजन को महत्त्व देने के कारण इसका प्रयोग आदरार्थक संदर्भ में किया जाता है। जब कि 'खाना' प्रयोग सामान्य रूप में किया जाता है। इतना ही नहीं 'खाना' और 'भोजन' के साथ प्रयुक्त क्रियाओं में भिन्नता द ष्टव्य है –

खाना खाओ (स्वीकार्य-लोक-सम्मत)
भोजन कीजिए (स्वीकार्य-लोक-सम्मत)
खाना कीजिए (अस्वीकार्य-लोक-सम्मत)
भोजन खाओ (अस्वीकार्य-लोक-सम्मत)

इसी प्रकार 'गंगा' और 'नाला' दो शब्द हैं। इनके साथ प्रयुक्त अन्य पदों की व्यवस्था और व्यवहार (लोक-सम्मत) देख सकते हैं –

यह गंगा जल (गंगा का जल) है (स्वीकार्य)
यह नाले का पानी है। (स्वीकार्य)
यह गंगा पानी है। (अस्वीकार्य)
यह नाले का जल है। (अस्वीकार्य)

विशेष भावाभिव्यक्ति के संदर्भ में साहित्यकार के वाक्यों को देखें, तो व्याकरण की द ष्टि से अशुद्ध लगते हैं। किन्तु नये संदर्भ, गंभीर भावाभिव्यक्ति में वाक्यों का स्वरूप अनुकूल सिद्ध होता है; यथा –

कलियों ने आँखें खोली।

फूलों की हँसी उपवन में बिखरी।

वह विरह से अपना जीवन तपा रही है।

इस प्रकार विशेष भावाभिव्यक्ति में भाषा-व्यवहार का रूप सामने आता है।

(2) **सामाजिक सम्बन्ध :**– भाषा के व्याकरण से समाज-भाषा विज्ञान की व्यवस्था बहुत कुछ भिन्न होती है। किसी शब्द का प्रयोग समाज के किसी संदर्भ में (किससे, कौन, किस समय, किस स्थान पर) किया जा रहा है, इसका विशेष महत्त्व होता है। व्याकरण के अनुसार, मध्यम पुरुष एक वचन के लिए 'तू, तुम, आप' शब्दों के प्रयोग होते हैं। 'तू' छोटे के लिए अथवा प्रेम, क्रोध और भक्तिभाव में किया जाता है। 'तुम' समानता में और 'आप' वय, बुद्धि योग्यता आदि संदर्भों में बड़े के लिए प्रयोग किया जाता है।

तू आ जा।

आप आ जाइए या आप आइए।

ये दोनों वाक्य भाषा-व्यवस्था के अनुसार शुद्ध है, किन्तु सामाजिक सम्बन्धों को ध्यान में रखकर प्रयोग करना अनिवार्य है। वाक्यों की स्वीकार्य-अस्वीकार्य स्थिति द ष्टव्य है –

मालिक ने नौकर से कहा–'तू घर चला जा'।

(स्वीकार्य)

नौकर ने मालिक से कहा 'तू घर चला जा'

(अस्वीकार्य)

भाषा-प्रयोग में सामाजिक सम्बन्धों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

यदि कोई कर्मचारी अपने अधिकारी के घर जाने पर अधिकारी के पर्याप्त छोटे बच्चे से पूछे, आप का क्या नाम है?' तो वाक्य स्वीकार्य है। जब कि 'आप' शब्द व्याकरण की द ष्टि से बड़े (उम्र, बुद्धि या ज्ञान संदर्भ) के प्रति किया जाता है।

(3) **भाषिक भंगिमा :**– भाषा प्रयोक्ता की मानसिकता भी भाषा-प्रयोग को दिशा प्रदान करती है। इस संदर्भ में भाषा-प्रयोक्ता परिवेश, विषय, श्रोता आदि के आधार पर विशेष भंगिमा अपनाता है और पदों या वाक्य को नया रूप मिलता है; यथा –

आ	जा
आओ	जाओ
आइए	जाइए
आ जाइए	चले जाइए
पधारिए	भाग जाइए

अन्य उदाहरण –

आप मेरे घर आएँ।

आप मेरे घर आइए।

आप मेरे घर आइए ना।

आप मेरे घर आएंगे ना।

आप मेरी कुटिया पर पधारें।

आप मेरे गरीबखाने तशरीफ फरमाइए।

आप मेरी कुटिया को पवित्र कीजिएगा।

आदि आदि।

इस प्रकार भाषा प्रयोक्ता भाव-भंगिमा के आधार पर वाक्यों की विशेष रचना करता है।

(4) **व्यंजना-आधार :**– जब शब्द विशेष के अर्थ की विशेष महत्ता न होकर प्रयोग के आधार पर विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, तो व्यंजनात्मक रूप सामने आता है। भाषायी प्रयोग की परिपक्वता पर ऐसी व्यंजनात्मक सामने आती है। यह भाषा व्यवहार विशेष प्रभावोत्पादक होता है।

घर-

1. यह घर पत्थर का बना है। (मकान-स्थूल रूप)
2. आप का घर कहाँ है? (निवास स्थान)
3. दंगे में उसका घर उजड़ गया। (परिवार)

खाना –

1. खाना खाना ही पड़ेगा।
2. कसम खानी ही पड़ेगी।
3. गम़ खाना ही पड़ेगा।
4. ठोकर खाना ही पड़ेगा।

इस प्रकार शब्दों को विशेष व्यंजना हेतु भिन्न-भिन्न पदों के साथ प्रयुक्त किया जाता है इससे गंभीर और प्रभावी अभिव्यक्ति होती है।

(5) **मुहावरेदार प्रयोग :**– मुहावरे के प्रयोग से भाषा को नया और चमत्कारिक रूप मिल जाता है, साथ ही अभिव्यक्ति भी अधिक प्रभावशाली हो जाती है। मुहावरे के मूल स्वरूप को बदलना भी सम्भव नहीं होता, क्योंकि इनको लोक-सम्मति मिली होती है; यथा– 'आँख लगना' के स्थान पर 'नेत्र लगना' 'चक्षु लगना' या 'नयन लगना' नहीं कह सकते हैं। मुहावरे के प्रयोग में भी विशेष भाव-भांगिमाएँ भी अभिव्यंजित होती है; यथा –

आँख लगना

1. आँख लगना (किसी की) उसकी पत्थर की आँख लग गई।
2. आँख लगना (नींद में) बैठे-बैठे उसकी आँख लग गई।
3. आँख लगना (किसी से) उसकी और पल्लवी की आँख लग गई।
4. आँख लगना (किसी ओर) उसकी आँखें लक्ष्य की ओर लगी हैं।

इस प्रकार मुहावरे के आधार पर भाषा में चमत्कारिक स्वरूप सामने आता है।

(6) **शैली :**– भाषा-व्यवहार में शैली की विशेष भूमिका होती है। हिन्दी की सामान्य शैली के साथ उर्दू, हिन्दुस्तानी और संस्कृत-निष्ठ शैलियों के रूप देख सकते हैं।

उर्दू शैली में अरबी-फारसी बहुल शब्दावली को नागरी लिपि में लिखते हैं या बोलते हैं – "फ़रमाइए ज़नाब, पान पेश है।"

हिन्दुस्तानी शैली में हिन्दी के तद्भव शब्दों को विशेष महत्त्व देते हुए अरबी-फारसी शब्दों का भी उपयुक्त प्रयोग किया जाता है। इसमें क्रिया का प्रयोग प्रायः तद्भव शब्दावली पर आधारित होता है–"कर्ज़ लौटाकर फ़र्ज पूरा किया"।

संस्कृतनिष्ठ शैली में तत्सम् शब्दों के साथ तद्भव शब्दों का यत्र-तत्र प्रयोग होता है। सामासिक शब्दों की बहुलता होती है।

"वार्षिकोत्सव में अभ्यागत का स्वागत कीजिए।"

"अतिथि देवो भव का विचार हृदयंगम योग्य है।"

"उदयाचल से उदित भगवान भास्कर की
रक्तिम मधु किरणें कितनी मोहक हैं।"

इस प्रकार शैली आधार पर भाषा के व्यावहारिक रूप की विशेषता सामने आती है।

(7) **भाषा-संस्कार :**– वर्तमान समय में भाषा को जनसामान्य या आँचलिक जीवन और आयातित अर्थात् पाश्चात्य आँधी से प्रभावित देख सकते हैं। जहाँ पर जनसामान्य का सहज जीवन दर्शाना होता है। वहाँ भोजपुरी, अवधी और हरियाणवी आदि लोक-भाषाओं के पुट का उपयोग किया जाता है; यथा –

नौकर विवश होकर बोला "मैं अपने घर जा रहा हूँ बाबू जी"। (मानक हिन्दी)।

नौकर विवश होकर बोला "हम अपने घर जात अही बाबू।" (अवधी)

नौकर बोला, "वो घरां गयौ।" (ब्रज)

नौकर बोला, "वह घर गया।" (मानक हिन्दी)

यह निर्विवाद तथ्य है कि लोक-भाषा में जो सहजता, भाव-प्रवणता और सटीक अभिव्यक्ति है, वह मानव-भाषा में सम्भव नहीं होती है। इस प्रकार इससे भाषा को विशेष संस्कारित रूप मिलता है।

वर्तमान समय में पाश्चात्य आँधी में भाषा का विशेष रूप उभर रहा है। जिसमें व्याकरण के सिद्धान्त ही नहीं, भाषा-व्यवहार भी अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। यथा – अभिवादन में प्रणाम, चरण-स्पर्श, नमस्कार, नमस्ते, राम-राम, राधे-राधे आदि के प्रयोग होते रहे हैं। अब गुड मॉर्निंग, गुड इवनिंग, टाटा, बॉय-बॉय आदि सब सिमट कर 'हाय! हाय!' में समाहित हो गए हैं।

मीडिया से पसरती भाषा-संस्कृति के स्वरूप से सभी परिचित हो चुके हैं – सरल, संयुक्त और मिश्र वाक्यों में योजक शब्दों का अंग्रेजी रूप विशेषरूप से उल्लेखनीय है –

"मैं वहाँ गई थी बट जल्दी लौट आई।"

"मैं कह रहा हूँ, एण्ड चलूँगा भी।" आदि आदि।

इस प्रकार प्रत्येक भाषा की अपनी व्यवस्था होती है और भाषा-प्रयोग की विविध दिशाएँ होती हैं जिसके आधार पर विभिन्न भावों के अनुकूल अभिव्यक्ति होती है।

1.5 भाषा - संरचना और भाषिक प्रकार्य

भाषा-संरचना का मूलाधार संरचनात्मक पद्धति है जिस प्रकार भवन रचना में ईंट, सीमेंट, लोहा, शक्ति अर्थात् मजदूर और कारीगर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषा-संरचना में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, प्रोक्ति और अर्थ की अपनी-अपनी भूमिका होती है।

(1) ध्वनि - संरचना

सामान्यतः किन्हीं दो या दो से अधिक वस्तुओं के आपस में टकराने से वायु में कम्पन होता है। जब यह कम्पन कानों तक पहुँचता है, तो इसे ध्वनि कहते हैं। भाषा विज्ञान में मानव के मुखांगों से निकली ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। ध्वनि भाषा की लघुतम, स्वतंत्र और महत्त्वपूर्ण इकाई है। यदि सभी

भाषा की ध्वनियों में सैद्धान्तिक रूप से कुछ समानताएँ होती हैं तो प्रत्येक भाषा की ध्वनियों में कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं।

(क) **वर्गीकरण :**– भाषा-ध्वनियों का अध्ययन करते हैं, तो दो मुख्य वर्ग सामने आते हैं – स्वर और व्यंजन।

1. **स्वर :** भाषा में कुछ ऐसी ध्वनियाँ होती हैं जिनके उच्चारण में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता अर्थात् इनके उच्चारण में फेफड़े से आनेवाली वायु अबाध गति से बाहर आती है और इनका उच्चारण जितनी देर चाहें कर सकते हैं।

   विभिन्न भाषाओं में स्वर ध्वनियों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है; यथा – वर्तमान समय में हिन्दी की स्वर ध्वनियाँ हैं –

   अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।

   अंग्रेजी में स्वरों की संख्या पाँच है –

   a, e, i, o, u.

   विभिन्न भाषाओं में स्पष्ट-ध्वनियों के स्थान-व्यवस्था में भी भिन्नता है। किसी भाषा में समस्त ध्वनियाँ पूर्ववर्ती या परवर्ती एक स्थान पर व्यवस्थित होती हैं; तो किसी भाषा में व्यंजन ध्वनियों के मध्य व्यवस्थित होती है।

   हिन्दी की सभी स्वर ध्वनियाँ व्यंजन से पूर्व एक स्थान पर व्यवस्थित हैं – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।

   अंग्रेजी में स्वरों की व्यवस्था व्यंजनों के मध्य है –

   abcde ..... hij.....nop.....tuv.....z.

2. **व्यंजन :** जिन ध्वनियों के उच्चारण में स्वर ध्वनियों का सहयोग अनिवार्य हो और जिनके उच्चारण में फेफड़े से आनेवाली वायु मुख के किसी भाग में अल्पाधिक रूप से अवरुद्ध होने के कारण घर्षण के साथ बाहर आए, उन्हें व्यंजन ध्वनि कहते हैं। हिन्दी में व्यंजन ध्वनियों को स्वर के बाद स्थान दिया गया है जबकि अंग्रेजी में स्वर ध्वनि के साथ मिश्रित रूप में।

   हिन्दी में कुछ व्यंजन ध्वनियों का प्रयोग स्वर के रूप में भी होता है। इन्हें अर्ध स्वर कहते हैं : यथा – य्, व्।

   हिन्दी में महाप्राण ध्वनियों के लिए स्वतन्त्र चिन्हों की व्यवस्था है; यथा – प्रत्येक वर्ग की दूसरी और चौथी ध्वनियाँ –

   कवर्ग - ख, घ
   चवर्ग - छ, झ
   टवर्ग - ठ, द
   तवर्ग - थ, ध
   पवर्ग - फ, भ

(ख) **बलाघात :**– भाषा में विभिन्न ध्वनियों के एक साथ प्रयोग होने पर भी उनके उच्चारण में प्रयुक्त बल में पर्याप्त भिन्नता होती है। जब किसी ध्वनि पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होता है, तो उसे बलाघात कहते हैं; यथा – 'आम' शब्द में "आ" और "म" दो ध्वनियाँ हैं। "आ" पर 'म' की अपेक्षा अधिक बल दिया जाता है।

हिन्दी ध्वनियों में बलाघात के विषय में यह ध्यातव्य है कि यह प्रभाव सदा स्वर पर ही होता है।

जब एक वाक्य में किसी शब्द की सभी ध्वनियाँ अन्य शब्दों की ध्वनियों की अपेक्षा अधिक सशक्त रूप से प्रयुक्त होती हैं, तो उसे शब्द बलाघात कहते हैं; यथा –

(क) मुझे **एक** रंगवाली कलम चाहिए।

(ख) मुझे एक **रंगवाली** कलम चाहिए।

यहाँ 'क' वाक्य में 'एक' शब्द की ध्वनियों पर बलाघात है, तो 'ख' वाक्य में 'रंगवाली' शब्द की ध्वनियों पर। इस प्रकार दोनों वाक्यों के अर्थ में भिन्नता आ गई है।

(ग) **सन्धि** कभी-कभी दो भाषिक इकाइयाँ मिलकर एक हो जाती हैं, ऐसे ध्वनि परिवर्तन को सन्धि कहते हैं। प्रत्येक भाषा के सन्धि-नियमों की अपनी विशेषताएँ होती हैं। हिन्दी में कई प्रकार की सन्धियाँ मिलती हैं, यथा –

1. **ह्रस्वीकरण :** हिन्दी तद्भव शब्दों में यह प्रक्रिया मिलती है –
   आप + ना (अ > अ) = अपना
   आधा + खिला (आ > अ) = अधखिला
   भीख + आरी (ई > इ) = भिखारी

2. **दीर्घीकरण :**
   मुख्य + अर्थ (अ + अ = आ) = मुख्यार्थ
   कवि + इन्द्र (इ + इ = ई) = कवीन्द्र

3. **घोषीकरण :**
   डाक + घर (क > घ) = डाकघर
   धूप + बत्ती (प > ब) = धूपबत्ती

4. **लोप :**
   घोड़ा + दौड़ (आ लोप) = घुड़दौड़
   पानी + घाट (ई और आ लोप) = पनघट

5. **आगम :**
   मूसल + धार (आ आगम) = मूसलाधार
   दीन + नाथ (आ आगम) = दीनानाथ
   विश्व + मित्र (आ आगम) = विश्वामित्र

(2) शब्द-संरचना

भाषा की लघुतम, स्वतंत्र और सार्थक इकाई को शब्द की संज्ञा दी जाती है। शब्द-संरचना का अध्ययन उपसर्ग, प्रत्यय, समास तथा पुनरुक्ति आदि रूपों से करते हैं।

(1) **उपसर्ग :**– उपसर्ग वह भाषिक इकाई है, जो शब्द के पूर्व में प्रयुक्त होती है, किन्तु इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। ऐसी इकाई शब्द-संरचना का मुख्य आधार है। इसे मुख्यतः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।

प्रथम – अपनी भाषा के उपसर्ग; यथा – हिन्दी में उ, कु, स, सु आदि।

अ – धर्म > अधर्म, दुर - दिन > दुर्दिन

स – जीव > सजीव, सु – गंध > सुगंध

द्वितीय – दूसरी भाषा के उपसर्ग; यथा

बे – बेकाम (फा. + हि.)

बे – बेसिर (फा. + हि.)।

प्रत्यय – निज भाषा के प्रत्यय

कार = नाटककार, साहित्यकार, स्वर्णकार

आनी = सेठानी, जेठानी, देवरानी

ता = सफलता, असफलता, सुन्दरता

द्वितीय – कभी-कभी शब्द के साथ भिन्न भाषा के उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं; यथा –

ई = डाक्टरी [डॉक्टर (अंग्रेजी) + ई (हिन्दी प्रत्यय)]

दारी = वफादारी [वफा (अ.) + दार (फा.)]

ची = संदूकची [संदूक (अ.) + ची (तु.)]

दार = जड़दार [जड़ (हिन्दी) + दार (फा.)]

(2) **समास :**– समास में दो शब्द जुड़कर एक सामासिक शब्द का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसे रूप को समस्त पद या सामासिक पद कहते हैं; यथा –

घोड़ों की दौड़ > घुड़दौड़

अर्थ संदर्भ से सामासिक शब्दों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

प्रथम वर्ग में उन सामासिक शब्दों को रख सकते हैं जिनके अर्थ वही रह जाते हैं जो समास के पूर्व होते हैं; यथा –

माता और पिता = माता-पिता

राजा और रानी = राजा-रानी।

दूसरे वर्ग में उन सामासिक शब्दों को रख सकते हैं, जिनके अर्थ में भिन्नता आ जाती है; यथा –

जल और वायु = जलवायु

यहाँ विग्रह में पानी और हवा का ज्ञान होता है, सामासिक रूप में विशेष अर्थ वातावरण का ज्ञान होता है।

(3) पद संरचना

जब शब्द वाक्य निर्माणार्थ निर्धारित व्याकरणिक क्षमता प्राप्त कर लेता है, तो उसे पद की संज्ञा दी जाती है। पद संरचना में शब्दों के विभिन्न व्याकरणिक रूपों का अध्ययन किया जाता है। रूप संरचना, संज्ञा, सर्वमान, क्रिया आदि विभिन्न धरातलों पर करते हैं। संज्ञा के रूप संरचना में मुख्यतः वचन पर चिन्तन करते हैं; यथा –

लड़का > लड़के, लड़कों

गुड़िया > गुड़ियाँ, गुड़ियो, गुड़ियों।

इस प्रकार विभिन्न प्रत्ययों के योग से पद संरचना होती है।

सर्वनाम के साथ विभिन्न कारक चिह्नों के योग से पद संरचना सामने आती है; यथा –

तुम > तुमने, तुमसे, तुममें, तुमको आदि।

आप > आपने, आपसे, आपमें, आपको आदि।

क्रिया पद की संरचना में भी प्रत्यय की विशेष भूमिका होती है; यथा –

चलना > चलें, चलो, चलूँगा, चलिएगा, चलोगी आदि।

दौड़ना > दौड़े, दौड़ो, दौडूँगा, दौड़िएगा, दौड़ोगी आदि।

यदा-कदा संयुक्त क्रिया के प्रयोग-आधार पर क्रिया-पद की विशेष संरचना होती है; यथा –

आना > आ जाओ

मारना > मार डाला, मार दिया

खाना > खा लिया, खा डाला

कांपना > काँप उठा, काँप गया

(4) वाक्य संरचना

भाषा की स्वतंत्र, पूर्ण सार्थक सहज इकाई को वाक्य कहते हैं। वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से कम से कम एक क्रिया का होना अनिवार्य है। वाक्य संरचना में मुख्यतः उद्देश्य तथा विधेय दो भाग होते हैं; यथा –

"उदित जा रहा है" में "उदित" उद्देश्य और "जा रहा है" विधेय है।

वाक्य में उद्देश्य छिपा भी हो सकता है; यथा –

जाओ > (तुम) जाओ।

खाइए > (आप) खाइए।

वाक्य की स्पष्ट संरचना का भावाभिव्यक्ति में विशेष महत्त्व होता है; यथा –

रोको मत जाने दो, रोको मत जाने दो

यहाँ प्रथम वाक्य संरचना में 'न रोको' की भावाभिव्यक्ति है, तो दूसरी वाक्य संरचना में 'रोकने' की।

वाक्य को संरचनात्मक आधार पर सरल, संयुक्त और मिश्र वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। एक प्रकार के वाक्य को दूसरे प्रकार के वाक्य में परिवर्तित कर सकते हैं; यथा – निषेधात्मक वाक्य निर्माण प्रक्रिया –

(क) वह योग्य है > वह अयोग्य नहीं।

(ख) तुम यहाँ से जाओ > तुम यहाँ न रुको।

(5) प्रोक्ति-संरचना

भाषा की महत्तम इकाई प्रोक्ति है। ध्वनि यदि भाषा की लघुत्तम इकाई है, तो प्रोक्ति महत्तम और पूर्ण अभिव्यक्ति करनेवाली इकाई है। वाक्य के द्वारा प्रोक्ति के समकक्ष अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है; यथा –

(क) नितिन अच्छा लड़का है।

(ख) नितिन एम.ए. का छात्र है।

(ग) नितिन नियमित परिश्रम करता है।

(घ) नितिन को परीक्षा में प्रथम स्थान मिला

यहाँ नितिन के विषय में चार वाक्य दिए गए हैं। आपसी सम्बन्धों के अभाव में यहाँ पूर्ण, स्पष्ट और सहज अभिव्यक्ति नहीं है। प्रोक्ति का रूप आते ही भावाभिव्यक्ति स्पष्ट हो जाती है –

"नितिन अच्छा लड़का है। नियमित परिश्रम करने के कारण उसे एम.ए. की परीक्षा में प्रथम स्थान मिला।"

यह एक लघु प्रोक्ति है। प्रोक्ति का स्वरूप तो उपन्यास या महाकाव्य के प्रथम शब्द से अन्तिम शब्द तक विस्त त हो सकता है। **आचार्य विश्वनाथ** ने 'साहित्य दर्पण' में महाकाव्य की कल्पना की है। उन्होंने लिखा है – "वाक्योच्चयो महावाक्यम्" वाक्यों का उच्चय (उव् + चय) एक-दूसरे के ऊपर सदा रूप महाकाव्य है। इस प्रकार विभिन्न वाक्यों के एक-दूसरे के साथ समाहित होने के स्वरूप को वाक्य कहते हैं।

वाक्य या प्रोक्ति के विभिन्न घटकरूपी वाक्य भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हुए भी परस्पर मिलते हुए भी एक समग्रता बोधक अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। इस प्रकार वाक्य से कहीं विस्त त अर्थ और संरचना का ज्ञान होता है। इस प्रक्रिया से जुड़े विभिन्न वाक्यों का समूह विशेष भाव और संरचना संदर्भ में भाषा की महत्तम इकाई का बोध कराता है। आचार्य विश्वनाथ ने इसे 'महावाक्य' कहा तो डॉ. रामचन्द्र वर्मा इसे 'वाक्यबन्ध' नाम अभिहित किया है। उनकी धारणा है कि यदि पद से विभिन्न पदों के योग पर पदबन्ध बनाता है तो वाक्य को विभिन्न वाक्यों के योग से वाक्यबन्ध बनना चाहिए।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने आचार्य विश्वनाथ के नाम पर सहमति व्यक्त करते हुए लिखा, "यह अजीब-सी बात है कि अपनी परम्परा के इस पुराने शब्द महाकाव्य को छोड़कर आज हमने इस अर्थ में एक नया शब्द 'प्रोक्ति' बनाया है और स्वीकार किया है। ऐसा करके हमने "अपनी परम्परा के प्रति बहुत न्याय नहीं किया है।"

डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने प्रोक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है, "अर्थ की द ष्टि से परिपूर्ण वाक्यों की सुसंबद्ध इकाई का नाम प्रोक्ति है।"

प्रोक्ति की संरचना, आन्तरिक अर्थ-संदर्भ और अभिव्यक्ति को ध्यान में रखकर इसे निम्नलिखित तत्त्व-रूपों में देख सकते हैं –

(क) एकाधिकवाक्य।

(ख) आन्तरिक सुसंबद्धता या संबद्धता।

(ग) तत्त्व-सरणिः वक्ता, श्रोता, वक्तव्य, संदर्भ, शैली प्रकार।

(घ) संप्रेषणीयता।

(ङ) संरचना और संप्रेषणीयता में एक इकाई स्वरूप।

(6) अर्थ - संरचना

ध्वनि, शब्द, पद और वाक्य आदि भाषा की शारीरिक इकाइयाँ हैं, तो अर्थ भाषा की आत्मा है। अर्थ को मुख्यतः सात वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

(क) मुख्यार्थ - पानी, गाय, विद्यालय आदि।

(ख) लक्ष्यार्थ - वह तो गधा है।

(ग) व्यंजनार्थ - यहाँ परम्परा से अर्थ जोड़ते हैं, यथा – गंगा जल (पवित्रता का प्रतीक)

(घ) सामाजिक - ष्टल्वनष्ठ शब्द के लिए हिन्दी में विभिन्न संदर्भों के लिए तू, तुम और आपका प्रयोग करते हैं।

तू - (छोटे के लिए, गुस्से में) तू जा, तू खा।

तुम - (बराबर के लिए) तुम चलो, तुम लिखो।

आप - (आदर सूचक, बड़ों के लिए) आप चलिए, आप लिखिए।

(ङ) बलात्मक - प्रमोद रोटी खाएगा, रोटी खाएगा प्रमोद।

(च) शैलीय अर्थ - (हिन्दुस्तानी, उर्दू, हिन्दी शैली) आप बैठिए, आप तशरीफ रखिए, आप विराजिए।

पर्यायता : कुछ शब्दों को पर्यायी या समानार्थी शब्द कहते हैं। वास्तव में पर्यायी शब्दों के दो वर्ग हैं –

(क) **पूर्ण पर्यायी :** Dog > कुत्ता, Man > आदमी।

(ख) **आंशिक पर्यायी :** भीगा-गीला, छोटा-नाटा, सुन्दर-अच्छा, बढ़िया-स्वादिष्ट।

विलोम : विलोम अर्थ अभिव्यक्ति हेतु मूल यौगिक रूपों में शब्दों का निर्माण करता है।

मूलः जड़-चेतन, सुख-दुःख, दिन-रात आदि।

यौगिक : इसमें कभी उपसर्ग लगाते हैं कभी प्रत्यय; यथा –

शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित (उपसर्ग-आधार), कृतज्ञ-कृतघ्न (प्रत्यय-आधार)

अर्थ-संरचना में समास की भी विशेष भूमिका होती है; यथा –

दुआ-बद्दुआ, स्वदेश-परदेश (विदेश)

स्वतंत्र-परतंत्र, बुद्धिमान-बुद्धिहीन

इसी प्रकार अनेकार्थी शब्दों की संरचना में भी विविधता देखी जा सकती है, जो भाषा-संरचना का महत्त्वपूर्ण अंश है।

(7) भाषिक-प्रकार्य

भाषा सामाजिकता का मूलाधार है। भाषा के ही माध्यम से समस्त व्यवहार सम्पन्न होते हैं। परिवार और समाज की संकल्पना और भाव आदान-प्रदान सब कुछ भाषा पर ही आधारित है। मानवतावादी चिंतन और ज्ञान-विज्ञान का विकास भाषा के ही आधार पर सम्भव है।

मनुष्य भाषा के माध्यम से जो कुछ अर्जित करने में समर्थ होता है, उसे भाषिक-प्रकार्य कहते हैं।

भाषा के प्रकार्य प्रभावों-क्षेत्र को स्पष्ट करने के उलिए इसे इस प्रकर रेखांकित कर सकते हैं।

वक्ता → संदर्भ → श्रोता

भाषा-प्रकार्य को वक्ता, संदर्भ और श्रोता के आधार पर तीन श्रेणी में रख सकते हैं –

1. वक्ता की द ष्टि से भाषा अभिव्यक्ति प्रकार्य में सामने आती है।
2. संदर्भ की द ष्टि से भाषा संप्रेषण प्रकार्य करती है।
3. श्रोता की द ष्टि से भाषा प्रमाणिक प्रकार्य करती है।

इस प्रक्रिया में तीन स्थितियों की भूमिका रेखांकन योग्य होती है –

(1) **संपर्क** - भाषिक प्रक्रिया में वक्ता और श्रोता मानसिक और भौतिक रूप में एक-दूसरे के सामने आते हैं।

(2) **कोडीकरण** - वक्ता अपने कथ्य या संदेश को भाषा का आवरण पहनाता है। इसी को कोडीकरण कहते हैं।

(3) **संदेश (डिकोडीकरण)** - वक्ता कथन या संदेश के ग्रहण करने के लिए भाषा का डिकोडीकरण करता है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जब वक्ता द्वारा प्रयुक्त भाषा से श्रोता सुपरिचित होता है, तो भाषा आवरण से अर्थ ग्रहण (डिकोडीकरण) कर लेता है।

रोमन याकोबसन ने भाषा-प्रकार्य के छः भेद किए हैं –

(1) **अभिव्यक्ति** - मन के धरातल में एकाएक उभरे भावों की अभिव्यक्ति को इस वर्ग में व्यवस्थित किया है। इस वर्ग का प्रतिनिधित्व मुख्यतः विस्मयादिबोधक शब्द करते हैं।

(2) **इच्छा-विषयक** - किसी को आज्ञा देने या बुलाने की प्रक्रिया इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है।

(3) **अभिधात्मक** - किसी घटना का वर्णन करना या भाषा के किसी के किसी तथ्य को प्रस्तुत करना इसी प्रकार का भाषिक-प्रकार्य है।

(4) **संपर्क-द्योतक** - दूरभाष, इन्टरनेट, सेलुलर सेवा पर भार्षिक संवाद। इसमें हाँ, जी अच्छा, ठीक, हूँ. .. आदि से संपर्क का चलते रहने का बोध होता है। वक्ता और श्रोता के संपर्क का ज्ञान इस भाषिक-प्रकार्य का परिचायक है।

(5) **आदि भाषिक प्रकार्य** - इसमें वक्ता पूर्व के किसी विषय को प्रस्तुत करता है। इसीलिए इसे आदि भाषिक-प्रकार्य की संज्ञा दी है।

(6) **काव्यात्मक प्रकार्य** - इसमें काव्यात्मक अभिव्यक्ति को स्थान दिया गया है। इसके साथ-संदेश-संप्रेषण या अभिव्यक्ति को इसी के अर्न्तगत स्थानापन्न किया है।

कुछ विद्वानों ने संप्रषण को ही भाषिक प्रकार्य बताते हुए इसकी विवेचना की है। इस संदर्भ में मार्ति का नाम विशषरूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने भाषिक-प्रकार्य के चार रूपों की चर्चा की है –

(1) **संप्रेषण** - वक्ता अपने भावों को भाषा के माध्यम से दूसरों तक संप्रेषित करता है और दूसरे के भाव भाषा के माध्यम से ग्रहण करता है।

(2) **विचारों की प्रस्तुति** - मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। वह अपने विचारों को मनः स्थिति के अनुसार अस्तित्व में लाने के लिए भाषा को आधार बनाता है।

(3) **विशेषाभिव्यक्ति** - जब मनुष्य अपने भावों को विशेष रूप में मात्र अपने लिए प्रकट करता है, तो उसे भाषा का विशेषाभिव्यक्ति प्रकार्य कहते है। इसका प्रतिनिधित्व स्वगत-कथन या स्वगत-संभाषण करता है।

(4) **प्रभावोत्पादक** - यदा-कदा भावों की अभिव्यक्ति मात्र दूसरे पर प्रभाव डालने के लिए किया जाता है। सौन्दर्य-चित्रण में भाषा का प्रभावोत्पादक प्रकार्य सामने-आता है।

भाषा मानव-जीवन के प्रारम्भ से लेकर उसके विकास के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी हुई है। मानव के ज्ञान-विज्ञान से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों की उन्नति में भाषा की विशेष भूमिका होती है। भाषिक-प्रकार्य के विस्तार और महत्त्व को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं –

(1) **भाषाः साधन स्वरूप** - कार्य सम्पन्नता का सर्वप्रमुख साधन भाषा है। बच्चे को भी सहज रूप में पता लग जाता है कि दूध माँगने - ''मुझे दूध चाहिए'' भाषा-प्रयोग से दूध मिल जाएगा। इसी प्रकार हर व्यक्ति भाषा का प्रयोग साधन के रूप में करके अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है।

(2) **व्यवहार-नियंत्रक** - व्यवस्था के लिए नियंत्रण और नियंत्रण के लिए आदेश और निर्देश की अपेक्षा होती है। समाज के लघुत्तम इकाई परिवार की व्यवस्था के लिए माता-पिता के द्वारा बच्चे को ''क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए?'' निर्देश दिया जाता है। इसी प्रकार समाज के विभिन्न क्षेत्रों में निर्देश-आदेश से कार्य को नियंत्रित किया जाता है। सामाजिक व्यवस्था संदर्भ में यह प्रमुख भाषिक-प्रकार्य है।

(3) **परस्पर संपर्क-साधन** - मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अपने विचार दूसरों तक पहुँचाना चाहता है और दूसरे के विचार ग्रहण करना चाहता है। यह विचार-विनिमय ही सामाजिकता का सबल आधार

है। हर व्यक्ति को समान धर्मी लोगों, सहकर्मियों, पड़ोसियों, सम्बन्धियों और समयानुसार यदा-कदा अजनबियों से सम्पर्क करना होता है। विभिन्न लोगों से विविध संदर्भो, संपर्क-सेतु भाषा ही है। समाज के अनुसार, भाषा के स्तर में भेद होना स्वाभाविक है। किन्तु भाषा का मुख्य प्रकार्य संपर्क-संधान प्रभावी और आकर्षक रूप में सम्पन्न होता है।

(4) **ज्ञानार्जन-साधन** - मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है वह विविध क्षेत्रों में उन्नति करने के लिए उनसे सम्बन्धित उपयोगी तथ्यों की जानकारी करना चाहता है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाएँ अपने प्रभावीरूप में सामने आ चुकी हैं। विज्ञान, वाणिज्य, चिकित्सा, विधि, न्याय, धर्म और राजनीति आदि विषयों का अपेक्षित ज्ञानार्जन भाषा के ही माध्यम से सम्भव है। शिक्षक का अध्यापन कार्य भाषा के माध्यम से होता है, तो शिष्य का अध्ययन कार्य भाषा के ही आधार पर सम्भव है। स्वाध्याय के लिए पुस्तकों की अपेक्षा होती है। पुस्तक-रचना का आधार भी भाषा ही है। स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्यों की जानकारी का मूल साधन भाषा है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स ष्टि और मानव स जन का समस्त ज्ञान भाषा के ही माध्यम से सम्भव है। ''भाषा समस्त ज्ञान-विज्ञान का परम आधार है।''

(5) **आत्मोन्नति-साधन** - प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है कि एक वह जिस परिवेश और समाज में रहता है, वहाँ उसे मान-सम्मान मिले भाषा के ही माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति अपने क्षेत्र का अपेक्षित ज्ञान प्राप्त कर पारंगत होना चाहता है। भाषा ही वह सेतु है, जिसके आधार से कोई सफल शिक्षक बनता है, तो कोई महान दार्शनिक बन जाता है, इसी आधार पर एक वैज्ञानिक बन जाता है तो दूसरा चिकित्सक बन जाता है। भाषा के माध्यम से सतत् साधना करता हुआ कोई ओजस्वी कवि बन जाता है तो कोई चर्चित उपन्यासकार। कबीर, सूर, तुलसी और प्रसाद आदि को महान कवियों की श्रेणी में स्थान दिया गया है तो प्रेमचन्द्र, अम तलाल नागर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र आदि को चर्चित उपन्यासकार की श्रेणी में रखा गया। महान कवि और उपन्यासकार बनने में व्यक्तिगत भाषायी अभिरुचि और भाषायी-प्रकार्य है।

(6) **काल्पनिक उड़ान-अभिव्यक्ति-आधार** - मनुष्य यथार्थ के धरातल पर रहता हुआ कल्पना-लोक में विचरण करता है। बच्चों के सामने उसको हँसने-हँसाने के लिए कहानियों और कविताओं में परियों और चमत्कारिक लोगों के साथ मानव-बोली बोलते हुए पशु-पक्षी को प्रस्तुत किया जाता है। सपनों के राजकुमार और सपनों की राजकुमारी के जीवंत द श्य उपस्थित किए जाते हैं। बाल-साहित्य के ऐसे द श्य इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। साहित्य में कल्पना और रहस्य का चित्रण भाषा की ही आधार भूमि पर सम्भव है। छायावादी और आध्यात्मिक चिन्तन की भाषा के आधार पाकर अभिव्यक्त होते हैं।

इस प्रकार भाषिक-प्रकार्य के आधार पर मानव विविध क्षेत्रों में बहुमुखी उन्नति करता है।

1.6 भाषा विज्ञानः परिभाषा स्वरूप व्याप्ति

भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषा विज्ञान कहते हैं। प्राचीन काल में भाषा विषयक अध्ययन निरुक्त, शब्दानुशासन, निर्वसन-शास्त्र, व्याकरण और प्रतिशाख्य आदि में होता रहा है। आधुनिक भाषा विज्ञान की प्रक्रिया शुरू हुए दो शाताब्दी हो चुकी है। भाषा विज्ञान के लिए समय-समय पर अनेक नाम दिए गए हैं। सर्वप्रथप इसके तुलनात्मक अध्ययन को देखते हुए इसे कम्पेरेटिव ग्रामर (Comparative Grammar) कहा गया। कुछ समय पश्चात् यह देखा गया कि इसमें केवल व्याकरण का ही तुलनात्मक अध्ययन न होकर भाषा के अन्य पक्षों का भी तुलनात्मक अध्ययन होता है, तो इसके स्थान पर कम्पेरेटिव फिलोलोजी (Comparative Philology) नाम रखा गया। कुछ समय तक यह नाम चलता रहा फिर यह अनुभव किया गया कि ऐसे अध्ययन में सदा ही तुलनात्मक द ष्टिकोण रहता

है इसलिए तुलानात्मक भाव की स्वतः अभिव्यक्ति के कारण फिलोलोजी (Philology) नाम चलने लग गया। इसमें भाषा विज्ञान सर्वाधिक प्रचलित शब्द है। वर्तमान समय की प्रयोग-स्थिति में भाषा विज्ञान शब्द लिंग्विस्टिक्स का समानार्थी बन गया है। भाषा विज्ञान सर्वाधिक प्रचलित होने के साथ सहज रूप में भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का भाव प्रकट करता है।

भाषा विज्ञानः परिभाषा

भाषा के क्रमबद्ध तथा सुसंगठित अध्ययन को भाषा विज्ञान कहते हैं। इसमें मानव-मुखोच्चरित और लिखित भाषा-रूपों का अध्ययन किया जाता है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने समय-समय पर भाषा विज्ञान की परिभाषा की है।

डॉ. देवेन्द्र शर्मा ने भाषा विज्ञान की भूमिका के पष्ठ 176 पर भाषा विज्ञान की परिभाषा करते हुए लिखा है - ''भाषा विज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा विज्ञान कहलाएगा।''

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषा विज्ञान के प. 7 पर भाषा विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार की है - ''भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा विशिष्ट, कई और सामान्य का समकालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रयोगिक दष्टि से अध्ययन और तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है।''

डॉ. देवी शंकर द्विवेदी ने भाषा और भाषिकी के प. 129 पर भाषिकी शब्द को महत्त्व देते हुए लिखा है - ''भाषा विज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं। भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।''

डॉ. मंगल देव शास्त्री ने तुलनात्मक भाषा शास्त्र के प. 3 पर लिखा है - ''भाषा विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्यरूप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गो की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

Dr. P. D. Gune ने 'An Introduction to Comparative Philology' के प. 1 पर लिखा है - "Comparative Philology or simply Philology is the science of language philology strictly means the study of a language from the literary point of view."

इस प्रकार भाषा विज्ञान की परिभाषा के संदर्भ में दिए गए भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के प्रत्येक मन्तव्य का अपना महत्त्व है। भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की दिशाएँ भिन्न हो सकती हैं, किन्तु वैज्ञानिक दष्टिकोण होना अनिवार्य है।

भाषा विज्ञानः व्याप्ति

भाषा विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्त त है। इसका क्षेत्र विश्व की समस्त भाषाओं तक फैला हुआ है। भाषा विज्ञान मानव मात्र की भाषा से सम्बन्धित होता है इसलिए इसका विस्तार मानव के चिन्तन तक है। इसमें यदि साहित्यिक भाषाओं का अध्ययन किया जाता है, तो विभिन्न बोलियों का भी अध्ययन किया जाता है। वर्तमान समय में बोलियों का अध्ययन भाषा विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है इसमें भाषा विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक अध्ययन के साथ उत्पत्ति तथा विकास का भी अध्ययन किया जाता है।

भाषा विज्ञान में वर्तमान तथा अतीत से सम्बन्धित भाषाओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि इसमें एक तरफ उन भाषाओं का अध्ययन किया जाता है जो अब वाचिक रूप में प्रयुक्त नहीं होती हैं, उनका केवल साहित्य प्राप्त होता है। भाषा के विभिन्न कालों में भाषा विज्ञान का सम्बन्ध होता है। भाषा की विभिन्न इकाइयाँ-ध्वनि, वर्ण, शब्द, पद, वाक्य तथा अर्थ भाषा विज्ञान क्षेत्र के विभिन्न आयाम हैं।

1.7 भाषा विज्ञान : अध्ययन की दिशाएँ

इसे भाषा विज्ञान अध्ययन की प्रणालियाँ भी कहते हैं। भाषा विज्ञान में एक भाषा, दो भाषाओं अथवा विविध भाषाओं का विशिष्ट अध्ययन करते हैं। भाषा के उच्चरित या लिखित अथवा दोनों स्वरूपों पर चिन्तन किया जाता है। भाषा विज्ञान - अध्ययन की निम्नलिखित प्रणालियाँ हैं -

1. वर्णनात्मक पद्धति

(Descriptive Linguistics)

जब किसी भाषा के विशिष्ट काल का संगठनात्मक अध्ययन किया जाता है, तो उसे वर्णनात्मक अध्ययन कहते हैं। प्रसिद्ध विद्वान पाणिनी के अष्टाध्यायी में इसी प्रकार का भाषा - अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें भाषा के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया तथा विशेषण आदि की वर्णनात्मक समीक्षा करते हुए ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि पर विचार किया जाता है। भाषा की सब इकाइयों पर अध्ययन करते हुए उनसे सम्बन्धित नियम निर्धारित किया जाता है। भाषा के सीमित काल का ही अध्ययन होता है, फिर भी इसका प्राचीन काल से विशेष महत्त्व रहा है। इस प्रकार के अध्ययन में भाषा के साधु - असाधु रूपों पर चिन्तन करते हुए उसके ध्वनि, शब्द आदि इकाइयोंरूपी शरीरांग के साथ उसकी अर्थरूपी आत्मा पर भी विचार किया जाता है। वर्तमान समय में वर्णनात्मक पद्धति के भाषा - अध्ययन की ओर विद्वानों का विशेष झुकाव दिखाई पड़ता है।

2. ऐतिहासिक अध्ययन

(Historical Linguistics)

इस पद्धति में भाषा विशेष के काल-क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाता है। यदि किसी विशेष भाषा के कालों के विवरणात्मक अध्ययन को कालक्रम से व्यवस्थित कर दिया जाए, तो ऐतिहासिक अध्ययन हो जाएगा।

भाषा - विकास या परिवर्तन की विभिन्न धाराओं का अध्ययन इसी पद्धति में होता है। भारतीय आर्य भाषाओं के विकास-क्रम में हिन्दी का अध्ययन करना चाहें तो इसी पद्धति से वैदिक संस्क त, लौकिक संस्क त, प्राक त, अपभ्रंश, भाषाओं पर विचार करते हुए हिन्दी भाषा का अध्ययन किया जाएगा। यदि हिन्दी शब्दों का उद्‌भव और विकास जानना चाहेंगे तो संस्क त, पाली, प्राक त और अपभ्रंश के साथ हिन्दी का कालक्रमिक अध्ययन करना होगा; यथा - कर्म (संस्क त) > कम्म (प्राक त) > काम (हिन्दी)। भाषा चिर परिवर्तनशील है। समय तथा स्थान परिवर्तन के साथ भाषा में परिवर्तन होना स्वभाविक ही है। समय-समय पर भाषा की ध्वनियों, शब्दों तथा वाक्यों में ही नहीं अर्थ में भी परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन हमें ऐतिहासिक पद्धति के अध्ययन से ही ज्ञात होता है।

3. तुलनात्मक पद्धति

(Comparative Linguistics)

भाषा - अध्ययन की जिस पद्धति में दो या दो से अधिक भाषाओं की ध्वनियों, वर्णों, शब्दों, पदों, वाक्यों और अर्थों आदि की तुलना की जाती है, उसे भाषा - अध्ययन की तुलनात्मक पद्धति कहते हैं। इस अध्ययन के अन्तर्गत एक भाषा के विभिन्न कालों के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन कर उसकी विकासात्मक स्थिति का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करते हैं। एक भाषा की विभिन्न बोलियों की समता-विषमता जानने के लिए भी भाषा - अध्ययन की इस पद्धति से ही उभरा है। इसका प्रबल प्रमाण है कि प्रारम्भ में इसके लिए तुलनात्मक भाषा विज्ञान (Comparative Philology) नाम दिया गया था। यह भी सत्य है कि बिना तुलनात्मक अध्ययन - द ष्टिकोण

अपनाए किसी नियम का निर्धारण अत्यन्त कठिन होता है। भाषा - परिवार के निर्धारण में भी तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक होता है। भाषा की सरसता, सरलता या विशेषताओं को स्पष्टरूप से रेखांकित करने के लिए तुलनात्मक अध्ययन सर्वाधिक उपयोगी होता है।

4. प्रयोगात्मक पद्धति

(Experimental Linguistics)

भाषा - अध्ययन का महत्त्व दिन - प्रतिदिन बढ़ रहा है। इसे देखते हुए भाषा - अध्ययन की इस नई पद्धति का प्रारम्भ हुआ है। इसमें भाषा के जीवन्तरूप का व्यवहारिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन किसी क्षेत्र विशेष से जुड़ा होता है। इसलिए इसे क्षेत्रीय कार्य (Field Work) कहते हैं। इस पद्धति के अध्ययन में अध्येता को किसी क्षेत्र विशेष में जाकर सम्बन्धित भाषा - भाषी से निकट सम्पर्क करना होता है। प्रायोगिक अध्ययन में किसी भाषा या बोली की ध्वनियों, शब्दों, वाक्यों के साथ बोलनेवाले की भाषा में प्रयुक्त मुहावरे, कहावतों आदि की प्रयोग-स्थिति भी अध्ययन किया जाता है। प्रयोगात्मक अध्ययन से ही विभिन्न बोलियों की सहजता, स्वाभाविकता तथा अभिव्यक्ति की स्पष्टता की बात सामने आ रही है जैसे-जैसे क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग की बात जोर पकड़ रही है। वैसे - वैसे इस पद्धति के अध्ययन में गति आ रही है। वर्तमान समय में विभिन्न विद्वानों की भाषा-विशेषताओं को जानने के लिए भी प्रयोगात्मक पद्धति अपनायी जाती है। आधुनिक भाषा विज्ञान में प्रयोगात्मक पद्धति के अध्ययन का विशेष महत्त्व है।

5. संरचनात्मक पद्धति

(Structural Linguistics)

जिस पद्धति में भाषा की संरचना के आधार पर अध्ययन किया जाए उसे भाषा - अध्ययन की संरचनात्मक पद्धति कहते हैं। भाषा - अध्ययन की यह पद्धति भाषा की विभिन्न इकाइयों के सूक्ष्म चिन्तन पर आधारित है। इसमें भाषा का विवेचन और विश्लेषण संगठनात्मक द ष्टिकोण से करते हैं। भाषा के संरचनात्मक अध्ययन में पारस्परिक सम्बद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है, वर्णनात्मक भाषा - अध्ययन में भी यत्र - तत्र संरचनात्मक रूप उभर आता है। वर्णनात्मक पद्धति और संरचनात्मक पद्धति के अध्ययन में विशिष्ट अन्तर यह है कि वर्णनात्मक पद्धति में भाषा की इकायों का अध्ययन एकाकी रूप में किया जाता है, जबकि संरचनात्मक अध्ययन में विभिन्न इकाइयों के पारम्परिक सम्बन्ध पर भी विचार किया जाता है, यथा - ''काम'' शब्द के संरचनात्मक अध्ययन में इसके विभिन्न ध्वनि - चिह्नों - क् + आ + म् + अ के लिखित तथा विभिन्न ध्वनियों क् + आ + म् के उच्चरित रूप पर चिन्तन करते हैं। इस प्रकार शब्द-संरचना के अध्ययन में उससे सम्बन्धित ध्वनियों के साथ वाक्यों में प्रयोग की स्थिति पर भी विचार करते हैं। इससे उक्त शब्द के लिखित तथा उच्चरित रूपों का सुस्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। वर्तमान समय में भाषा-अध्ययन की संरचनात्मक पद्धति पर विशेष बल दिया जा रहा है।

अध्याय - 2
स्वनविज्ञान

2.1 स्वनविज्ञानः स्वरूप और शाखाएँ

भाषा की लघुत्तम इकाई स्वन है। इसे ध्वनि नाम भी दिया जाता है। ध्वनि के अभाव में भाषा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भाषा विज्ञान में स्वन के अध्ययन संदर्भ को 'स्वनविज्ञान' की संज्ञा दी जाती है। ध्वनि शब्द ध्वन् धातु में इण् (इ) प्रत्यय के योग से बना है। भाषा विज्ञान के गंभीर अध्ययन में ध्वनिविज्ञान एक महत्त्वपूर्ण शाखा बन गई है। इसके लिए ध्वनिशास्त्र, ध्वन्यालोचन, स्वनविज्ञान, स्वनिति आदि नाम दिए गए हैं। अंग्रेजी में उसके लिए Phonetics और Phonology शब्दों का प्रयोग होता है। इन दोनों शब्दों की निर्मिति ग्रीक के 'Phone' से है।

स्वन (ध्वनि) के अध्ययन में तीन पक्ष सामने आते हैं

1. उत्पादक 2. संवाहक 3. संग्राहक

स्वन उत्पन्न करनेवाले व्यक्ति या वक्ता को स्वनउत्पादक की संज्ञा देते है। संग्राहक या ग्रहणकर्ता श्रोता होता है, जो ध्वनि को ग्रहण करता है। संवाहक या संवहन करनेवाला माध्यम जो मुख्यतः वायु की तरंगों के रूप में होता है। स्वन प्रक्रिया में तीनों अंगों की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है। जब मुख के विभिन्न अंगों में से किन्हीं दो या दों से अधिक अव्यवयों के सहयोग से ध्वनि उन्पन्न होगी तभी स्वन (ध्वनि) का अस्तित्व सम्भव है। ध्वनि-उत्पादक अवयवों की भूमिका के अभाव में स्वन का अस्तित्व असंभव है।

ध्वनि-उत्पादक अवयवों की उपयोगी भूमिका के बाद यदि संवाहक या संवहन माध्यम का अभाव होगा, तो स्वन का आभास असम्भव है। माना एक व्यक्ति एक वायु-अवरोधी (Airtight) कक्ष में बैठ कर ध्वनि करता है, तो वायु तरंग कक्ष से बाहर नहीं आ पाती और बाहर का व्यक्ति ध्वनि-ग्रहण नहीं कर सकता है। इस प्रकार स्वन प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है।

त तीय अंग संग्राहक या श्रोता के अभाव में ध्वनि-उत्पादन का अस्तित्व स्वतः ही शून्य हो जाता है। इस प्रकार स्वन प्रक्रिया में वक्ता (उत्पादक), माध्यम (संग्राहक) तीनों का होना अनिवार्य होता है।

ध्वनि के सार्थक और निरर्थक दो स्वरूप हैं। भाषा विज्ञान में केवल सार्थक ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। ध्वनि उत्पादन प्रक्रिया में वायु मुख या नाक दोनों ही भागों से निकलती है। इस प्रकार ध्वनि को अनुनासिक तथा निरनुनासिक दो वर्गो में विभक्त कर सकते हैं। ध्वनियों के उच्चारण में वायु मुख-विवर के साथ नासिका-विवर से भी निकलती है। उसे अनुनासिक ध्वनि कहते हैं। जिन ध्वनियों के उच्चारण में वायु केवल मुख-विवर से निकले उसे निरनुनासिक या मौखिक ध्वनि कहते हैं। ध्वनि की तीव्रता और मंदता के आधार पर उसे नाद, श्वास तथा जपित, तीन वर्गो में विभक्त कर सकते हैं। जब ध्वनि उत्पादन में स्वर तंत्रियाँ एक दूसरे से मिली होती हैं, तो वायु उन्हें धक्का देकर बीच से बाहर आती है, ऐसी ध्वनि को नाद ध्वनि कहते हैं, यथा-ग्, घ्, ज् आदि। इसे सघोष ध्वनि भी कहते हैं। जब स्वर तंत्रियाँ एक दूसरे से दूर होती हैं तो निश्वास की वायु बिना

घर्षण के सरलता से बाहर आती है। ऐसी ध्वनि को 'श्वास' या अघोष कहते हैं; यथा क्, त्, प् आदि। जब बहुत मंद ध्वनि होती है तो दोनों स्वर तंत्रियों के किसी कोने से वायु बाहर आती है। ऐसी ध्वनि को जपित ध्वनि कहते हैं।

भाषा-अध्ययन में स्वनविज्ञान का विशेष महत्त्व है क्योंकि अन्य व हत्तर इकाइयों का ज्ञान इसके ही आधार पर होती है। इसके ही अन्तर्गत विभिन्न ध्वनि उत्पादक अवयवों का अध्ययन किया जाता है। स्वनों के शुद्ध ज्ञान के पश्चात शुद्ध लेखन को सबल आधार मिल जाता है। उच्चारण में होनेवाले विविध संदर्भों के परिवर्तनों का ज्ञान भी सम्भव होता है।

स्वनविज्ञान में विभिन्न ध्वनियों के अध्ययन के साथ उनके उत्पादन की प्रक्रिया का विस्त त विश्लेषण किया जाता है। इसी अध्ययन क्रम में ध्वनि उत्पादक विभिन्न अंगों की रचना और उनकी भूमिका का भी अध्ययन किया जाता है। ध्वनिगुण और उसकी सार्थकता का निरूपण भी किया जाता है। स्वन के साथ 'स्वनिम' का भी विवेचन-विश्लेषण किया जाता है। भाषा की उच्चारणात्मक लघुत्तम इकाई अक्षर के स्वरूप और उनके वर्गीकरण पर भी विचार किया जाता है। समय, परिस्थिति और प्रयोगानुसार विभिन्न ध्वनियों में परिवर्तन होता रहता है। ध्वनि-परिवर्तन के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने कुछ ध्वनि नियम निर्धारित किए हैं। इन नियमों के अध्ययन के साथ ध्वनि-परिवर्तन की दिशाओं और ध्वनि-परिवर्तन के कारणों पर विचार किया जाता है।

2.2 वाग्यंत्र (Vocal apparatus) और ध्वनि-उत्पादन में भूमिका

शरीर के जिन अवयवों के सहयोग से ध्वनि का उत्पादन सम्भव होता है उनके समूह को वाग्यंत्र कहते हैं। यह परिभाषा आंशिक रूप से ही तर्कसंगत लगती है क्योंकि मनुष्य अपनी विभिन्न अंगुलियों के माध्यम से तबले, हारमोनियम और सितार आदि से ध्वनि उत्पादन करता है।

यहाँ ज्ञातव्य है कि ध्वनि-उत्पादन में शरीर के श्वसन तंत्र और पाचन-तंत्र के अनेक भाग विशेष सहयोगी होते हैं। ध्वनि-उत्पादन के संदर्भ में इन अंगों की अपरिहार्य रूप से चर्चा की जाती है। श्वसन नलिका और भोजन नलिका ध्वनि-उत्पादन में विशेष भूमिका निभाती हैं। ये दोनों नलिकाएँ ऊपर और नीचे अलग अवश्य हैं, किन्तु कंठ-स्थल पर दोनों एक-दूसरे से मिली हुई हैं। भोजन नलिका मुख से भेजे गए भोजन को आमाशय की ओर ले जाती है। कंठ के कुछ ऊपर तक ध्वनि उत्पादक निश्वास का मार्ग और भोजन मार्ग एक ही होता है। उसके पश्चात् अलग होता हैं। श्वास नलिका नाक से चलकर फेफड़े तक जाती है। श्वसन मार्ग ध्वनि-उत्पादक प्रक्रिया में सर्वाधिक सहयोगी होता है। ध्वनि-उत्पादन में फेफड़े से चली वायु कभी मुख मार्ग से बाहर आती तो कभी नासिका के मार्ग से।

इस प्रकार विभिन्न ध्वनियों का उत्पादन होता है। ध्वनि उत्पादन में सहयोगी अंग निम्नलिखित हैं -

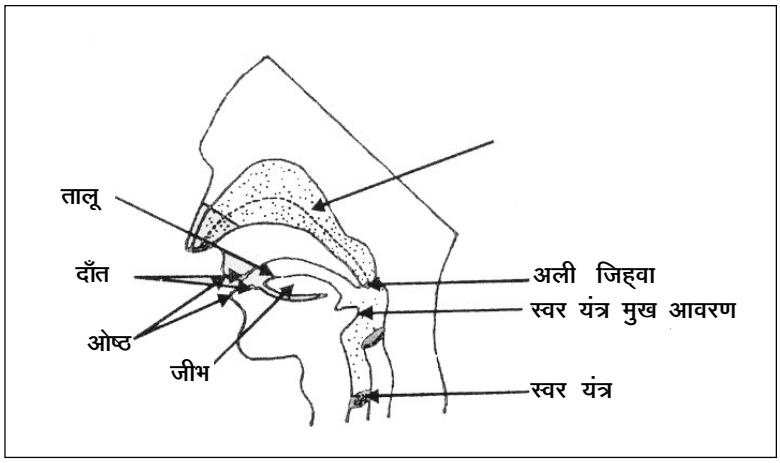

ध्वनि-यंत्र

1. **फेफड़े (Lungs) :** प्राणियों की श्वसन प्रक्रिया के मूलाधार फेफड़े हैं। मनुष्य के जीवन पर्यन्त श्वसन प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। निद्रावस्था में शरीर के अधिकांश भाग शिथिल हो जाते हैं, किन्तु श्वसन प्रक्रिया फेफड़े के सहारे चलती रहती है। इस प्रक्रिया के अवरोध होने पर जीवन का अन्त संभावित होती है। श्वसन में शुद्ध वायु अर्थात् ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं। और निःश्वास में दूषित वायु अर्थात् कार्बन डाईऑक्साइड निकलती है। इस प्रक्रिया में जीवन के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की उपलब्धि होती रहती है। यह भी नितान्त सत्य है कि यदि मनुष्य को कुछ देर ऑक्सीजन न मिले तो म त्यु निश्चित है।

   मनुष्य की ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया में निःश्वास का ही उपयोग होता है। इसके विपरीत श्वास लेते हुए एक मात्र ध्वनि का उत्पादन होती है जिसे 'क्लिक' ध्वनि कहते हैं। इसमें दोनों ओठों को मिलाकर वायु अन्दर खींचते हुए ध्वनि उत्पन्न की जाती है। माँ जब अपनी संतान को प्यार से चुम्बन लेती है तो ऐसी ही ध्वनि का उत्पादन होता है। श्वसन प्रक्रिया में बाहर निकलनेवाली दूषित वायु से ही ध्वनि की उत्पत्ति होती है। यह निरर्थक वायु मनुष्य जाति के लिए परम उपयोगी सिद्ध हुई है। मनुष्य की भाषा का अस्तित्व ही श्वसन के निरर्थक तत्त्व (बाइ-प्रोडक्ट) पर आधारित है। भाषा निश्चय ही मनुष्य की उन्नति एवं विकास का परम आधार है। फेफड़े से श्वास-निःश्वास की प्रक्रिया चलती रहती है जिससे ध्वनि-उत्पादन का भी क्रम चलता रहता है। माना की फेफड़े का कार्य रक्त शुद्धिकरण के लिए ऑक्सीजन ग्रहण करना तथा कार्बनडाईआक्साइड बाहर निकालना है, किन्तु इसी क्रम में ध्वनि उत्पत्ति भी सम्भव है। इस प्रकार फेफड़े ध्वनि-उत्पादन के प्रमुख अंग हैं।

2. **स्वर-यंत्र (Laryns) :** फेफड़े के कुछ ऊपर श्वास नलिका में स्वर-यंत्र नामक विशेष वागयंत्र होता है। फेफड़े से निकली वायु स्वर-यंत्र से होकर ही बाहर आती है। स्वर यंत्र में दो मांसल झिल्लियाँ होती हैं जिन्हें स्वर-तंत्री कहते हैं। स्वर-तंत्रियाँ आवश्यकतानुसार आगे या पीछे खिसक कर स्वर-तंत्र के मुख को छोटा या बड़ा आकार प्रदान करती हैं। इन झिल्लियों के माध्यम से स्वर-तंत्र के मुख की अनेक आकृतियाँ बनती हैं। किन्तु इन्हें मुख्यतः तीन रूपों में विभक्त करते हैं।

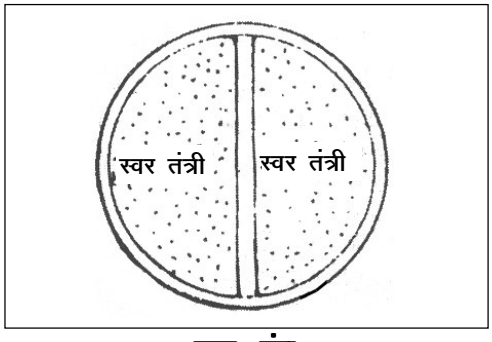

स्वर यंत्र

(क) स्वर यंत्र की प्रथम स्थिति जिसमें स्वर तंत्रियाँ शिथिल रूप में अर्थात् यथावत् पड़ी रहती हैं दोनों झिल्लियों के मध्य पर्याप्त स्थान होता है। श्वास और निःश्वास की वायु अनवनत चलती रहती है। झिल्लियाँ खुली रहने के कारण निःश्वास की वायु स्वर यंत्र में बिना घर्षण के बाहर आ जाती है अतः अघोष ध्वनियों का उत्पादन होता है।

(ख) जब स्वर-यंत्र की तंत्रियाँ आपस में निकट आकर लगभग सट जाती हैं तो फेफड़े से चली वायु तंत्री से घर्षण कर बाहर निकलती है, जिससे तंत्रियों में कम्पन होता है। इस स्थिति में घोष या संघर्ष ध्वनियों का उत्पादन होता है।

(ग) स्वर-यंत्र की दोनों तंत्रियाँ एक-दूसरे से सटी हुई हों और कोई एक कोना खुला हुआ हो तो निःश्वास की वायु फुस्-फुस् की हल्की ध्वनि के साथ आहर आती है। इसलिए इसे फुस्-फुस् ध्वनि कहते हैं। जब एक व्यक्ति किसी के कान के निकट मुँह कर धीरे-धीरे ऐसे कहने का प्रयत्न करता है

कि दूसरे अन्य को सुनाई न दे, तो ऐसी ध्वनि का उत्पादन होता है। स्वर-यंत्र निश्चय ही ध्वनि उत्पादन प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। दो कोमल तंत्रियों से थोड़ा और बहुत और बहुत विस्त त आकार धारण कर विविध ध्वनियों की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार वंशी के कुछ एक सीमित छिद्र को बन्द-खोलकर विविध ध्वनियों का उत्पादन किया जाता है।

स्वर-यंत्र ध्वनि-उत्पादन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके साथ ही जीवन रक्षक अंग भी है। स्वर-यंत्र से ऊपर लगभग कंठ-स्थल पर श्वास नलिका और भोजन नलिका का चौराहा है। यहाँ से श्वास नलिका, भोजन नालिका, मुख-विवर, नासिका-विवर चार मार्ग चारों दिशाओं में जाते हैं। श्वास नलिका और भोजन नलिका का चौराहा है। श्वास-निःश्वास और भोजन के समुचित मार्ग क्रमशः नलिका और भोजन नलिका में पहुँचाने का कार्य स्वर यंत्र मुख आवरण करता रहता है। ध्वनि उत्पादन के समय सिमट कर श्वास मार्ग खोलना और भोजन ग्रहण के समय इस मार्ग को बंद करते रहने का दायित्व इस अंग पर रहता है। जब हम भोजन करते समय बात करते जाते हैं, तो इस अंग के लिए कठिन परीक्षा की घड़ी होती है। यदि स्वर यंत्र मुख आवरण थोड़ा भी चूक जाए और भोजन का एक भी कण इस आवरण से आगे बढ़ जाय तो संकट की घड़ी आ जाती है। ऐसे में मस्तिष्क के निर्देश पर स्वर यंत्र की दोनों झिल्लियाँ तुरंत ही एक दूसरे से मिलकर फेफड़े का मार्ग बंद कर देती है। अगले ही पल मस्तिष्क के निर्देश पर दोनों फेफड़ों पर तेज दबाव पड़ता है। फेफड़े से वायु का तेज प्रवाह स्वर यंत्र को खोलता हुआ बाहर जाता है। इस वायु के तेज प्रवाह में भोजन का कण स्वर यंत्र के ऊपर से ही ऊपर उठकर बाहर आ जाता है। वायु का प्रवाह इतना तेज होता है कि भोजन-कण प्रश्वास के साथ नाक से बाहर आता है। इस प्रक्रिया से जीवन-रक्षा होती है।

3. **स्वर-यंत्र मुख आवरण** (Epiglottis) : स्वर-यंत्र की सुरक्षा हेतु इसके मुख के ऊपर एक मांसल भाग है। ध्वनि-उत्पादन के समय यह भाग सिमट कर वायु को बाहर निकलने के लिए समुचित मार्ग प्रदान करता है। किन्तु जब भोजन या पेय पदार्थ ग्रहण करते हैं तब यह मांसल आवरण बढ़कर श्वसन मार्ग को ढँक लेते हैं। इससे ग्रहण किया गया खाद्य या पेय पदार्थ सीधे भोजन नलिका में जाता है। यह निर्विवाद सत्य है कि यदि स्वर यंत्र आवरण की चूक के पश्चात् स्वर-यंत्र से भी चूक हो जाए और खाद्य पदार्थ का टुकड़ा भी फेफड़े में पहुँच जाए तो प्राणांत संभावित है इस प्रकार स्वर-यंत्र मुख आवरण जहाँ ध्वनि-उत्पादन का एक सहयोगी अंग है वहीं महत्त्वपूर्ण जीवन रक्षक अंग है।

4. **अलिजिह्वा** (Iwala) : मुख विवर, नासिका विवर, श्वास नलिका और भोजन नलिका के ठीक ऊपर लटकता हुआ एक मांसल अंग होता है, जिसे अलिजिह्वा, कौवा या घंटी कहते हैं। यह मांसल अंश ध्वनि उत्पादन के समय आवश्यकतानुसार मुख-विवर के मार्ग और नासिका विवर के मार्ग को खोलता व बंद करता है। दोनों मार्गों के अवरोध में अलिजिह्वा अपने स्वरूप को घटाता बढ़ाता है। अलिजिह्वा की अवरोधक प्रक्रिया में तीन स्थितियाँ सामने आती हैं -

प्रथम स्वाभाविक अवस्था है जिसका संबंध जीवन-यापन के लिए श्वास-निःश्वास की प्रक्रिया से होता है। ऐसे में अलिजिह्वा शिथिल होकर नीचे लटककर मुख मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। मुँह भी बंद होता है। सहज श्वसन प्रक्रिया इसी अवस्था में होती है।

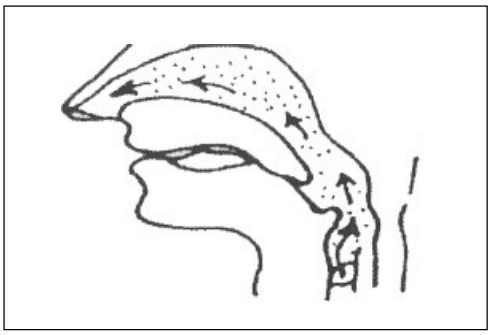

प्रथम अवस्था

द्वितीय अवस्था में अलिजिह्वा आगे बढ़कर नासिका मार्ग कोपूर्ण रूप से अवरुद्ध कर देती है। इस प्रकार श्वास-निःश्वास की वायु मुख विवर से फेफड़े की ओर और फेफड़े से चली निःश्वास की वायु मुख विवर से होती हुई बाहर की ओर आती है। ऐसे में मौखिक ध्वनियों (स्वर-व्यंजन) का उच्चारण होता है।

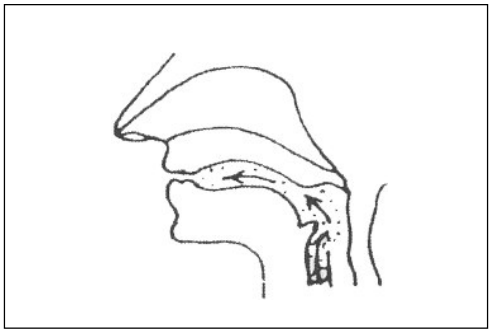

द्वितीय-अवस्था

त तीय अवस्था में अलिजिह्वा सामान्य से बढ़कर नासिका मार्ग को कुछ अवरुद्ध कर देती है। किन्तु कुछ भाग खुला भी रहता है। इसी स्थिति में निःश्वास की कुछ वायु नासिका मार्ग से निकलती है, तो कुछ मुख मार्ग से। अनुनासिक स्वरों का उच्चारण अलिजिह्वा की इसी स्थिति में होती है।

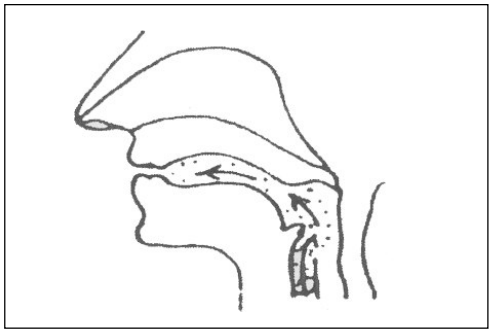

त तीय अवस्था

उर्दू की संघर्षो ध्वनि क़्, ख़्, ग़् के उच्चारण में अलिजिह्वा, जिह्वापश्च या जिह्वा मूल को स्पर्श करती है या फिर उसके निकट आ जाती है।

5. **नासिका-विवर** (Nasal Cavity) : श्वसन प्रक्रिया में वायु का फेफड़े से आवागमन नासिका-विवर से चलता रहता है। श्वसन नलिका बाहर की ओर से दो भागों में विभक्त होती है और आगे चलकर एक हो जाती है। अलिजिह्वा के पश्चात् भोजन नलिका से जुड़कर आगे बढ़ती है। स्वर यंत्र मुख आवरण के पश्चात् श्वास नलिका के पीछे भोजन नलिका होती है जो आमाश्य तक जाती है। मुख मार्ग के अवरुद्ध होने के पश्चात् वायु जब नासिका मार्ग से निकलती है तो नासिक्य ध्वनियों - ङ् ञ्, ण्, न, म् का उत्पादन होता है। जब नासिका मार्ग से कुछ वायु और मुख मार्ग से कुछ वायु साथ-साथ बाहर आती है तो अनुनासिक ध्वनियों अँ, आँ, एँ, ओं आदि का उत्पादन होता है।

6. **तालु** (Palate) : मुख विवर के ऊपरी भाग को तालु कहते हैं। इसका विस्तार आगें की ओर दाँत से पीछे अलिजिह्वा के मध्य भाग में है। तालु के अन्तर्गत पीछे की ओर से क्रमशः कोमल तालु, गूर्द्धा, कठोर तालु और वर्त्स्य की स्थिति होती है। ये सभी स्थिर अंग हैं। निःश्वास की वायु और जीभ के विभिन्न भागों का स्पर्श विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में सहयोगी होती है।

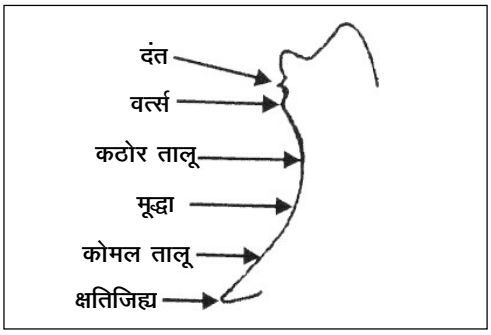

7. **जिह्वा (Tongue) :** मुख विवर के निचले भाग जिह्वा की स्थिति होती है। यह मांसल अंग ध्वनि उत्पादन में विशेष सहयोगी होता है। संस्कृत में जीभ का पर्यायवाची शब्द वाणी है। वाणी का एक अर्थ भाषा भी है। इस प्रकार जिह्वा का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है। जीभ के विभिन्न भाग ध्वनि उत्पादन में अपनी विशेष भूमिका में सामने आते हैं। इसलिए इसको जिह्वा नोक, जिह्वा अग्र, जिह्वा मध्य, जिह्वा पश्च और जिह्वा मूल पाँच भागों में विभक्त करते हैं। जीभ की गतिशीलता ध्वनि उत्पादन में विशेष सहयोगी सिद्ध होती है।

8. **दाँत (Teeth) :** मुख के आगे के भाग के दानों जबड़ों में दंत-पंक्तियाँ होती हैं। दाँतों का मुख्य कार्य भोजन को अनुकूल रूप में ग्रहण करने के साथ ध्वनि-उत्पादन में सहयोग करना है।

9. **ओष्ठ (Lips) :** मुख का सबसे आगे का मांसल भाग ओष्ठ एक ओर भोजन ग्रहण करने में सहयोगी होता है तो दूसरी ओर ध्वनि-उत्पादन में भी सहयोगी सिद्ध होता है। इन दोनों प्रक्रियाओं में ऊपरी ओष्ठ एवं निचले ओष्ठ दोनों की भूमिका समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। दोनों ओष्ठ मिलकर ही ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया पूरी करते हैं।

ध्वनि उत्पादन में फेफड़ों से लेकर ओष्ठ तक के सभी अंगों की अपनी-अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सभी अंगों की समन्वित भूमिका से ही भाषा की विभिन्न ध्वनियों का अनुकूल उत्पादन संभव होता है।

2.3 ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया

जब दो वस्तुओं के आपस में टकराने से वातावरण में कम्पन हो और कर्ण पट्ट तक पहुँचने से इनका अनुभव हो, तो उसे ध्वनि कहते हैं। प्रत्येक ध्वनि में कम्पन होती है और प्रत्येक कम्पन में ध्वनि होती है। कभी-कभी हाथ, पैर, डाली या पत्ती हिलने पर ध्वनि का आभास नहीं होता है। इसका कारण है - ध्वनि में तीव्रता का अभाव। विशेष यंत्र के माध्यम से ऐसी कम्पन में भी ध्वनि सुन सकते हैं। हमारे कान सामान्यतः कम से कम बीस आव त्ति प्रति सेकेण्ड वाली कम्पन से ध्वनि सुन सकते हैं। हमारे कान सामान्यतः कम से कम बीस आव त्ति प्रति सेकेण्ड वाली कम्पन से ध्वनि सुन सकते हैं। यदि यह आव त्ति लगभग बीस हजार प्रति सेकण्ड से अधिक हो जाती है, तब भी ध्वनि का आभास नहीं होता है। स्पष्ट ध्वनि की प्रति सेकण्ड आव त्ति 200 से 2000 के बीच मानी गई है।

भाषा विज्ञान के अन्तर्गत मुख्यतः मानव-मुख उच्चरित ध्वनि का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया में वाक् इन्द्रिय का सहयोग लिया जाता है। यहाँ वाक् शब्द मुख के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मुख के संदर्भ में यह ज्ञातव्य है कि यह शरीरांग जीवन-यापन के लिए, खाने-पीने तथा यदा-कदा साँस लेने का भी आधार है। मुख के द्वारा उक्त मुख्य कार्यो के साथ बोलने का गौण कार्य भी सम्भव होता है। इस प्रकार मुख एक ऐसा शरीरांग है जो जीवन-यापन के साथ ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया की भूमिका अदा करता है। कुछ ध्वनियों के उत्पादन में मुख के साथ नासिका की भी सहयोगी तथा महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अनुनासिक ध्वनियां इसी प्रकार हैं।

ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया दो चरणों में होती है। प्रथम चरण-प्रेरणात्मक प्रक्रिया, द्वितीय चरण-गतिशील प्रक्रिया।

1. **प्रथम चरण : प्रेरणात्मक प्रक्रिया** - ध्वनि उत्पादन प्रक्रिया में सर्वप्रथम प्राणि-चेतना बुद्धि का सहारा लेकर किसी वस्तु, व्यक्ति या भाव के संदर्भ में इच्छानुसार अभिव्यक्ति के लिए मन को प्रेरित करती है। प्राणी की चेतन्यता तथा बुद्धि की प्रखरता के ही अनुरूप मन गति पाने के लिये चंचल हो उठता है। एक ही प्राणी में विभिन्न भाव-संदर्भो की प्रेरणात्मक प्रक्रिया तथा मन की गति में भिन्नता होती है। जब किसी आश्चर्यजनक स्थिति को देखकर एकाएक मुख से 'वाह-वाह' निकलता है, तो यह प्रक्रिया बहुत ही तीव्र गति से होती है। जब किसी को पहली बार कुछ लोगों के सामने बोलना पड़ता है, तो उस समय चेतना और बुद्धि का उपयोगी समन्वय न होने के कारण स्पष्ट रूप से बोल पाना कठिन हो जाता है। ऐसे में प्रेरणात्मक प्रक्रिया अत्यन्त शिथिल होती है। इस प्रक्रिया में मन की प्रबल भूमिका होती है। मन शारीरिक शक्ति को प्रेरित करता है। मन की प्रेरणा के अनुरुप है। शरीरिक शक्ति का सहयोग प्रेरणा प्रक्रिया में मिल पाता है। प्रेरणात्मक प्रक्रिया में अन्तिम भूमिका शारीरिक शक्ति की होती है। शारीरिक शक्ति शरीरस्थ फेफड़े की वायु को प्रभावित करती है।

   संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य पाणिनि ने ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया के सन्दर्भ में इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है -

   ''आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान् मनो युड्.क्ते विवक्षया।
   मनः कायाग्नि माहन्ति स प्रेरयति मारुतम॥
   पाणिनीय शिक्षा॥6॥

   अर्थात् आत्मा बुद्धि के साथ संयुक्त होकर अपने अभीष्ट भाव की अभिव्यक्ति के लिए मन को प्रेरित करती है। मन शारीरिक शक्ति को प्रेरित करता है तथा शारीरिक शक्ति से फेफड़े की वायु प्रेरणा प्राप्त कर गतिशील होती है। इस प्रकार ध्वनि (भाषा) उद्भव का आधार चेतना के द्वारा बुद्धि सहयोग पर ही ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया सम्भव है। बुद्धि के अभाव में यह प्रक्रिया सम्भव नहीं है।

2. **द्वितीय चरण : गतिशील प्रक्रिया** - ध्वनि-उत्पादन के द्वितीय चरण में वायु की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। वायु के माध्यम से बजने वाले वाद्य यंत्रों हारमोनियम, आर्गन-पाइप आदि की भाँति ही मनुष्य वायु के सहारे ध्वनि करता है। मनुष्य की श्वसन प्रक्रिया में दो भिन्न-भिन्न प्रव त्तियों की वायु आपस में एक-दूसरे के विपरीत दिशागामी होती है। एक प्रकार की वायु मानव नाक या मुख के माध्यम से अन्दर की ओर प्रवेश कर फेफड़े तक पहुँचती है। दूसरे प्रकार की वायु फेफड़े में स्थित अनुपयोगी दूषण को लेकर फेफड़े से वापस होकर मुख या नाक के माध्यम से बाहर आती है। श्वसन की इस प्रक्रिया में फेफड़े की ओर गतिशील वायु सम्बन्धी प्रक्रिया को श्वास और निःश्वास कहते हैं। श्वास में शुद्ध वायु अर्थात ऑक्सीजन अन्दर जाती है और निःश्वास में अन्दर की दूषित वायु अर्थात् कार्बन डाईऑक्साइड बाहर आती है। श्वास-निःश्वास की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त लगातार चलती रहती है। श्वास प्रक्रिया वायु के माध्यम से विरल भाषा का विरल ध्वनि-उच्चारण सम्भव है। इसे क्लिक ध्वनि कहते हैं। निःश्वास की वायु ही मुख्यतः ध्वनि-उच्चारण में सहयोंगी होती है। हिन्दी की ध्वनियाँ भी निःश्वास प्रक्रिया के माध्यम से ही सम्भव है।

   फेफड़े में प्रतिपल धौकनी की भाँति गति होती रहती है। ध्वनि-उत्पादन के द्वितीय चरण में फेफड़े ही प्रारम्भिक आधार हैं। निःश्वास में वायु फेफड़े से श्वास नलिका द्वारा बाहर की दिशा में वापस चल पड़ती है।

   श्वास नलिका - श्वास नलिका के माध्यम से ही श्वास-निःश्वास प्रक्रिया सम्भव है। श्वास नली के ही साथ भोजन-नलिका आगे बढ़ती है। श्वास नलिका की ओर झुका हुआ अभिकाल या स्वर यन्त्र मुख आवरण है। जब खाद्य या पेय पदार्थ भोजन नलिका के मुख के पास आता है तो यह आवरण श्वास नलिका को बन्दकर देता है। यह आवरण भोजन और पानी को श्वास नलिका में जाने से बचा लेता है। ऐसा होने पर प्राणघातक स्थिति हो सकती है। जब कभी किसी भांती भोजन के कण या पानी की बूँदे इस नलिका में बढ़े तो फेफड़े से हवा तीव्र गति से चलकर उसे बाहर कर देती है। जब वायु मुख मार्ग के साथ-साथ नासिका मार्ग से भी निकलती है, तो अनुनासिक ध्वनियों का उच्चारण होता है।

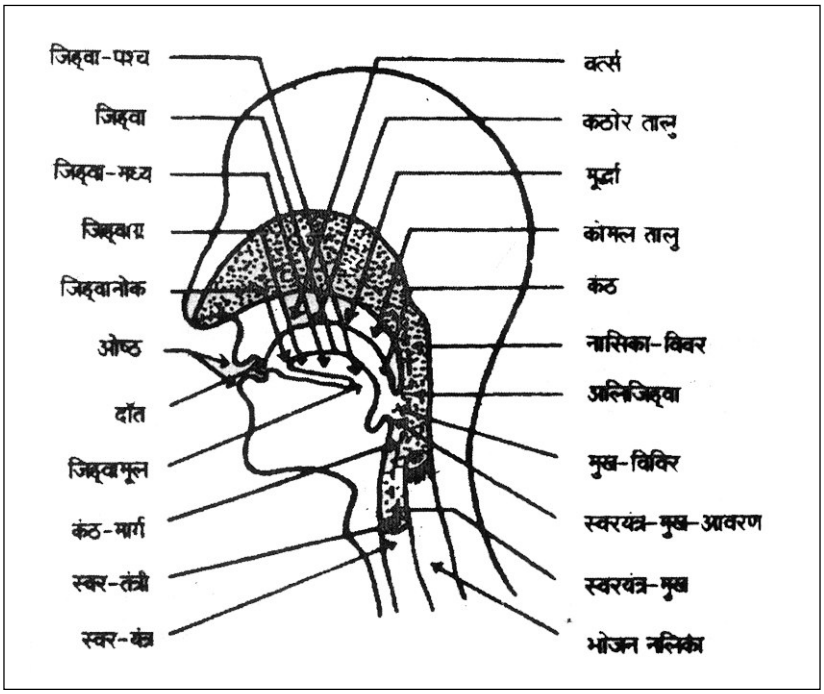

ध्वनि यंत्र

स्वर-यन्त्र - श्वास नलिका के ऊपरी भाग में स्वर-यंत्र नाम की एक रचना होती है। यह ध्वनि उन्पन्न करने वाला प्रधान अवयव है। फेफड़े से आने वाली वायु स्वर-यन्त्र से होकर बाहर आती है। स्वर-यन्त्र की रचना दो पतली झिल्लियों से होती है। इन्हीं दो लचीली झिल्लियों के माध्यम से आवश्यकतानुसार सामान्य अथवा सीमित कपाट बनता है। इन झिल्लियों की स्वरतंत्री भी कहते हैं।

स्वर-यन्त्र के माध्यम से विभिन्न प्रकार को ध्वनियों का उत्पादन सम्भव है। कभी दोनों स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे के निकट आती हैं तो कभी एक-दूसरे से दूर रहती हैं। स्वर-तन्त्रियों को उच्चारण के अनुसार कम या अधिक खोलते हैं। किसी काम में शक्ति लगाने के लिए साँस खींचकर उसे रोकने की प्रक्रिया इसी के आधार पर होती है। स्वर-तन्त्रियों के पास-दूर होने से कई स्थितियाँ सामने आती हैं। इनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं -

1. **प्रथम अवस्था में स्वर** – तन्त्रियाँ सामान्य अवस्था में होने से शिथिल पड़ी होती हैं। इसी सामान्य अवस्था में श्वास-निःश्वास की प्रक्रिया चलती रहती है। निःश्वास में स्वर-तन्त्रियाँ श्वास अवस्था की अपेक्षा कुछ अधिक निकट आ जाती हैं। स्वर तन्त्रियों की इसी अवस्था में अघोष ध्वनियों का उच्चारण सम्भव है।

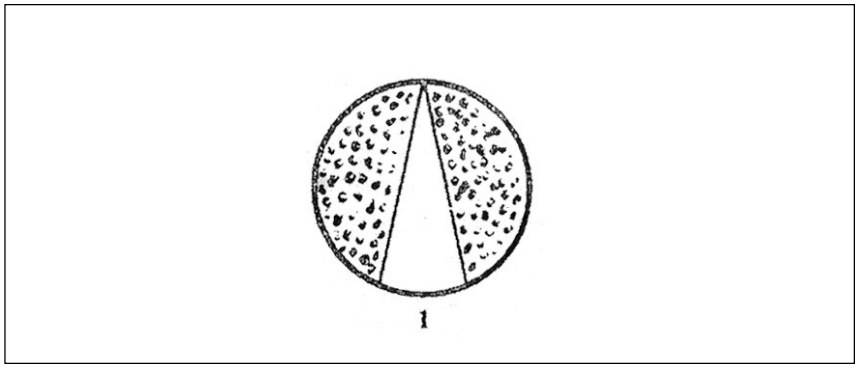

चित्र 1

2. **द्वितीय अवस्था में स्वर –** तन्त्रियाँ एक-दूसरे के निकट आकर सट जाती है। निःश्वास की इस प्रक्रिया में वायु स्वर-तन्त्रियों को धक्का देकर बाहर आती है। इसीलिए घर्षण होने से उसमें कम्पन्न होता है। इस अवस्था में घोष ध्वनियों का उच्चारण होता है।

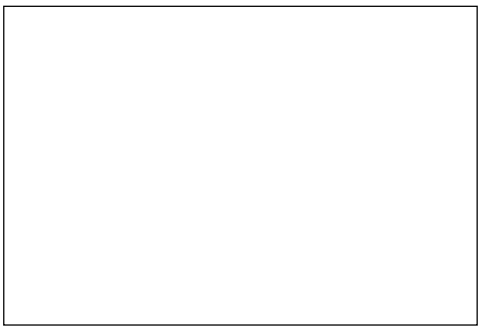

चित्र 2

3. **त तीय अवस्था में स्वर –** तन्त्रियाँ लगभग तीन-चौथाई भाग एक-दूसरे से मिलकर निःश्वास मार्ग अवरुद्ध कर देती हैं और लगभग एक चौथाई भाग, सीमित मुख रूप में खुला रहता है।

चित्र 3

इस स्थिति में फुसफुसाहट की ध्वनियों का उत्पादन सम्भव होता है। कान के निकट मुख करके की जाने वाली मंद ध्वनियाँ इसी अवस्था में निकलती हैं। फुसफुसाहट में उत्पन्न सभी ध्वनियाँ अघोष होती हैं।

कण्ठ :- इसे गसनिका, गलबिल आदि नाम भी दिए जाते हैं। यह स्वर-यंत्र के ऊपर का स्थान है। यहाँ श्वास नलिका तथा भोजन नलिका दानों एक-दूसरे को काटती हैं। इसलिए इसे श्वास और भोजन नालिका चौराहा (Crossing) भी कह सकते हैं। इस स्थान के विभिन्न रूप धारण करने से ध्वनियों के तान में भिन्नता आती है। इस स्थान से कंठ्य वर्ग व्यंजन - क्, ख्, ग्, घ्, ङ ध्वनियों का उत्पाद होता है।

मुख-विवर, नासिका-विवर, कोवा :– ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया में मुख की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। श्वास नलिका और भोजन नलिका चौराहे पर ऊपर की ओर जीभ के समान एक मांसल भाग होता है। जिसे कोवा या अलिजिह्वा कहते हैं। यह भी कोमल तालु के साथ मिल कर कभी-कभी मार्ग अवरुद्ध करने के लिए अवरोधक का कार्य करता है। जब कौवा सीधा होकर नासिका मार्ग को बंद कर देता है तो वायु मात्र मुख मार्ग से निकलती है। ऐसी अवस्था में मौखिक स्वर तथा व्यंजनों का उच्चारण होता होता है। जब कौवा ढ़ीला होकर नीचे लटक जाता है, तो मुख मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे में वायु नासिक-विवर से होकर बाहर निकलती है। इस स्थिति में ङ्, ञ्, ण्, न् और म् नासिक्य ध्वनियों का उच्चारण होता है। जब कौवा सामान्य स्थिति में होता है, तब श्वास प्रक्रिया मुख तथा नाक दोनों भागों के साथ-साथ होती है। इस स्थिति में अनुनासिक

स्वरों-व्यंजनों का उच्चारण होता है। नासिक-विवर कण्ठ से नाक तक फैला होता है, किन्तु इसमें ऐसा कोई विशेष अंग नहीं है, जो ध्वनि उत्पादन में सहयोगी होता हो।

मुख-विवर अंग :- मुख-विवर में कई ध्वनि उत्पादक अंग है। इसमें ऊपर की ओर तालु का भाग है जो कण्ठ से दाँतों के मध्य तक स्थित होता है। तालु को कण्ठ की ओर से क्रमशः कोमल, मूर्द्धा, कठोर तालु तथा वर्त्स चार भागों में विभक्त करते हैं। इन्हीं स्थानों पर जीभ विभिन्न रूप से, अल्पाधिक रूप में स्पर्श कर विभिन्न ध्वनियों का उत्पादन करती है।

मुख-विवर के निचले भाग में प्रमुख ध्वनि उत्पादक अंग जिह्वा है। प्रायः सभी भाषाओं की सभी ध्वनियों के उच्चारण में जीभ की अत्यन्त उपयोगी भूमिका होती है। जीभ ध्वनि उत्पादन में विविध आकृति धारण करती है। यह कभी वायु (श्वास-निःश्वास) को रोकने का कार्य करती है, तो कभी बाहर निकलने की प्रक्रिया अपनाती है। कंठ की ओर से जीभ को क्रमशः जिह्वामूल, जिह्वामध्य, जिह्वाअग्र तथा जिह्वानाक पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं। जीभ के विभिन्न भाग ध्वनि-उत्पादन में अपने-अपने ढ़ंग से सहयोगी होते हैं। जीभ मुख के विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण करती है; यथा-जीभ के द्वारा मूर्द्धा-स्पर्श से ट वर्ग ध्वनियों का उच्चारण होता है। तो जीभ जब दाँत का स्पर्श करती है, तो दन्त्य अर्थात् त वर्ग व्यंजनों का उच्चारण संम्भव होता है।

मुख-विवर के अन्तिम भाग में अर्थात् बाहर की ओर स्थित दाँतों और होठों का ध्वनि उत्पादन से पर्याप्त सहयोग होता है। कभी जीभ की नोक दाँतो का स्पर्श कर-उच्चारण प्रक्रिया में सहयोग देती है; यथा-तवर्ग व्यंजन ध्वनियों, तो कभी दोनों होठों के मिलने से उच्चारण प्रक्रिया सम्भव होती है; यथा-पवर्ग व्यंजन ध्वनियाँ।

इस प्रकार ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया में जब चेतना को बुद्धि-शक्ति से प्रेरणा मिलती है तो फेफड़े में गति आती है और फिर निःश्वास प्रक्रिया में स्तर तंत्री और मुख के विभिन्न भागों से विभिन्न ध्वनियों का उत्पादन सम्भव होता है।

2.4 स्वन अवधारणा-वर्गीकरण

मनुष्य वाग्यंत्रों के द्वारा विविध ध्वनियों का उत्पादन पूरी सफलता से करता है। ध्वनि उत्पादन की श्रेष्ठता वाग्यंत्रों की अनुकूलता के साथ अभ्यास पर निर्भर होती है। जिस प्रकार श्रेष्ठ वाद्य-कलाकार या संगीतकार बाद्य-यंत्रों से विभिन्न ध्वनियों की आकर्षक और मनोहारी प्रस्तुती करता है, उसी प्रकार गीतकार ध्वनियों में भंगिमा भरकर मनमोहक रूप प्रदान करता है। संगीत की भाषा और अभिव्यक्ति सामान्य भाषा से पर्याप्त भिन्न होती है।

भावाभिव्यक्ति में अनेक ध्वनियों की भूमिका होती है। ध्वनियों की विविधता को देखकर उन्हें व्यवस्थित करने के लिए वर्गीकृत किया जाता है। वर्गीकरण के प्रमुख निम्नलिखित तीन आधार हैं।

(अ) स्थान-आधार

ध्वनि-उत्पादन में अनेक स्थान की भूमिका होती है। सामान्यतः ध्वनि उत्पादक अचल अंग को स्थान कहते हैं। ध्वनि-उत्पत्ति के संदर्भ में निःश्वास की वायु जहाँ पर बाधित या विकृत हो जाए, उसे स्थान की संज्ञा देते हैं। फेफड़े से चली हुई वायु स्वर यंत्र से लेकर ओष्ठ तक के विभिन्न स्थानों का पार करती है। श्वास लेते समय वायु को इसके विपरीत ओष्ठ से स्वर-यंत्र तक के विभिन्न स्थानों से होकर गुजरना होता है। ध्वनि-उत्पादन में निःश्वास की वायु निम्नलिखित स्थानों पर बाधित होकर सहयोग कर सकती है -

1. **स्वर-यंत्र मुख** (Glottis) - इसे काकल भी कहते हैं यह स्वर यंत्र का ऊपरी भाग है जो दो झिल्लियों से निर्मित होता है। स्वर-यंत्र मुख खुला रहने पर निःश्वास की वायु तेजी से बाहर आती है। ऐसी ध्वनि को स्वर यंत्र या काकल ध्वनि कहते हैं।
2. **कंठ** (Pharynx) - इसे कंठ मार्ग भी कहते हैं जब निःश्वास की वायु कंठ तक आकर कुछ पल के लिए बाधित हो और जिह्वा पश्च कोमल तालु के स्पर्श करने के पश्चात् वायु बाहर निकले तो कंठ ध्वनि का उत्पादन होता है।

3. **तालु** (Palate) - मुख विवर के ऊपर के भाग को तालु कहते हैं। जब निःश्वास की वायु तालु तक आकर अवरुद्ध हो और जिह्वा अग्र द्वारा कठोर तालु के स्पर्श के बाद वायु बाहर निकले तो तालव्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

4. **मूर्द्धा** (Cerebrum) - तालु का सर्वोच्च स्थान मूर्द्धा होता है। जब निःश्वास की वायु मूर्द्धा तक आकर अवरुद्ध हो और जिह्वा नोक के मूर्द्धा को स्पर्श करने के बाद वायु बाहर आए तो मूर्द्धन्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

5. **वर्त्स** (Alveala) - संस्कृत में इसे 'वर्स्व' कहते हैं। दंत पंक्तियों के उपरि भाग को वर्त्स की संज्ञा दी जाती है। जब निःश्वास की वायु वर्त्स तक पहुँचकर कुछ क्षण के लिए अवरुद्ध हो और जिह्वा नोक द्वारा वर्त्स के स्पर्श के पश्चात् वायु बाहर जाए तो वर्त्स्र्स ध्वनि का उत्पादन होता है।

6. **दंत** (Teeth) - निःश्वास की वायु जब दाँत तक पहुँचकर बाधित हो, जिह्वा नोक ऊपर की दंत पंक्ति का स्पर्श करे और फिर वायु मुख से बाहर जाए तो दन्त्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

7. **ओष्ठ** (Lip) - मुख का बाह्य अंग ओष्ठ ध्वनि उत्पत्ति में विशेष सहयोगी होता है। ओष्ठ की दोहरी भूमिका होती है। कभी तो ओष्ठ दांत का स्पर्श कर ध्वनि उत्पन्न करते हैं, कभी दोनों ओष्ठ आपस में छूकर ध्वनि उत्पादक की भूमिका में सामने आते हैं। इस प्रकार ध्वनियों को दो वर्गा में विभक्त करते हैं -

   (क) द्वयोष्ठ्य - जब दोनों ओष्ठ एक-दूसरे को स्पर्श करें, निःश्वास की वायु ओष्ठ तक पहुँचकर क्षणभर अवरुद्ध होकर बाहर आए तो द्वयोष्ठ्य ध्वनि का उत्पादन होता है।

   (ख) दन्त्योष्ठ्म - जब निःश्वास की वायु ओष्ठ तक पहुँच कर क्षणभर अवरुद्ध हो और नीचे का ओष्ठ ऊपर की दंत-पंक्ति का स्पर्श करे तो दन्त्योष्ठ्म ध्वनि का उत्पादन होता है।

(आ) प्रयत्न-आधार

ध्वनि-उत्पादन में फेफड़े से चली हुई निःश्वास की वायु विभिन्न स्थानों पर अवरुद्ध होती रहती है। वायु के अवरोध, रुाकवट या विकार में जो प्रक्रिया सहयोगी होती है उसे प्रयत्न कहते हैं। फेफड़े से निर्गत निःश्वास की वायु मुख-विवर अथवा मुख-विवर के पूर्व कहीं भी अवरुद्ध होकर ध्वनि-उत्पादन प्रक्रिया का अंश बन सकती हैं। इस प्रकार ध्वनि- उत्पादन का सहयोगी प्रयत्न भी मुख-विवर के अन्तर्गत या पूर्व हो सकता है। इस आधार पर प्रयत्न को तीने भागों में विभक्त करते हैं - (अ) आभ्यंतर, (आ) बाह्य प्रयत्न, (इ) करण।

(अ) **आभ्यंतर प्रयत्न** - ध्वनि-उत्पादन में जो प्रयत्न मुख-विवर के अन्तर्गत किए जाते हैं, उन्हें आभ्यंतर प्रयत्न कहते हैं। ओष्ठ से कंठ तक के भाग को मुख-विवर कहते हैं। आभ्यंतर के अर्न्तगत चार प्रकार के प्रयत्नों से ध्वनि-उत्पत्ति होती है -

   1. **स्पष्ट** - स्प ष्ट का शाब्दिक अर्थ है स्पर्श। हिन्दी की कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग की पच्चीस ध्वनियाँ इस वर्ग में आती हैं, क्योंकि इनके उच्चारण में कोई न कोई भाग एक-दूसरे से स्पर्श करता है।

   2. **ईषत्स्पष्ट** - इसका शाब्दिक अर्थ है - थोड़ा स्पर्श। कुछ ध्वनियों के उच्चारण में दो अंगों का पूरा स्पर्श न होकर थोड़ा-सा स्पर्श होता है। हिन्दी के अर्द्ध-स्वर य, व के उच्चारण में ऐसा ही प्रयत्न होता है। इसलिए अर्द्ध-स्वर या अंतस्थ को ईषत्स्प ष्ठ ध्वनि कहते हैं।

   3. **विवृत** - विव त का अर्थ है - खुला हुआ। जिन ध्वनियों के उच्चारण में ऐसा प्रयत्न हो कि मुख-विवर पूरी तरह से खुला रहे, उन्हें विव त ध्वनि कहते हैं। इसमें किसी अंग का किसी से स्पर्श नहीं होता है। वायु अबाध गति से बाहर आती है।

   4. **संवृत** - इसका अर्थ है - बंद हुआ। यह विव त का ठीक विपरीत प्रयत्न है। इसमें संव त का व्यावहारिक अर्थ लिया जाता है क्योंकि यदि संव त का अर्थ बंद लें तो मुख-विवर के बंद रहने पर ध्वनि-उत्पादन

संभव ही नहीं है। यहाँ व्यावहारिक अर्थ है कि जब मुख-विवर अपेक्षाकृत बहुत कम खुला हो तो संव त ध्वनियों का उत्पादन होता है। इ, उ आदि ध्वनियाँ ऐसे प्रयत्न से ही उन्पन्न होने के आधार पर संव त हैं।

(आ) **बाह्य प्रयत्न** - ध्वनि-उत्पादन में जब प्रयत्न मुख-विवर के बाहर अर्थात पूर्व अलिजिह्वा के मध्य से होता है तो उसे बाह्य प्रयत्न कहते हैं। मुख-विवर को आधार बनाने के कारण ही इसे बाह्य प्रयत्न नाम दिया गया है। बाह्य प्रयत्न को ग्यारह भागों में विभक्त कर अध्ययन कर सकते हैं –

1. **विवार** - विवार का शाब्दिक अर्थ है - खुला हुआ। जब स्वर यंत्र की स्वर-तंत्रियाँ पूर्णरूपेण खुली होती हैं, तो विवार प्रयत्न (प्रयत्न) होता है।
2. **संवार** - संवार का अर्थ है - बंद होना। जब स्वर यंत्र की स्वर-तंत्रियाँ लगभग बंद हों अर्थात् बहुत कम खुली हों, तो संवार प्रयत्न होता है।
3. **श्वास** - जब स्वर-तंत्रियाँ पर्याप्त रूप में खुली होती हैं और श्वास-निःश्वास की वायु का निरंतर आवागमन होता रहता है, तब श्वास प्रयत्न मानते हैं।
4. **नाद** - जब स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे के निकट हों और निकलती वायु के कारण उसमें कम्पन हो तो नाद प्रयत्न होता है।
5. **अघोष** - यह श्वास की स्थिति है। ध्वनि-उत्पादन के समय जब स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे से दूर होती हैं और वायु बिना घर्षण के बाहर निकलती है, तो अघोष ध्वनियों का उत्पादन होता है; यथा-प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो व्यंजन ध्वनियाँ - क् ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, ल्, त्, थ्, प्, फ् अघोष हैं।
6. **घोष** - नाद की स्थिति ही घोष या अघोष है। ऐसी ध्वनियों के उत्पादन में स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे के निकट हेाने से उनमें कंपन होता है; यथा प्रत्येक वर्ग की अंतिप तीत ध्वनियाँ – ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ्, ड्, ढ्, ण्, द्, ध्, न्, ब्, भ्, म् घोष हैं।
7. **अल्पप्राण** – प्राण का अर्थ है - वायु और अल्प का अर्थ है - थोड़ा। ध्वनि-उत्पादन में जब अपेक्षाकृत थोड़ा वायु का प्रयोग होता है तो अल्पप्राण ध्वनियाँ होती हैं; यथा - प्रत्येक वर्ग की प्रथम त तीय और पंचम ध्वनियाँ ख्, ग्, ङ्, च्, ज्, ञ्, ट्, ड्, ण्, त्, द्, न्, प्, ब्, म् अल्प प्राण हैं।
8. **महाप्राण** – महा का अर्थ है - अधिक, प्राण का अर्थ है - वायु। जिन ध्वनियों के उच्चारण में अपेक्षाकृत अधिक ध्वनि का प्रयोग होता है, उन्हें महाप्राण ध्वनि कहते हैं। उदाहरणार्थ - प्रत्येक वर्ग की द्वितीय और चतुर्थ ध्वनियाँ - ख्, घ्, छ्, झ्, ठ्, द्, थ्, ध्, फ्, भ् महाप्राण हैं। भाषाओं में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं हैं। उनमें 'H' के अतिरिक्त प्रयोग से मूल्यांकन किया जाता है; यथा –

अल्पप्राण	महाप्राण
क - K	ख - Kh
ग - G	घ - Gh
त - T	थ - Th
द - D	ध - Dh

9. **उदात्त** – उदात्त का अर्थ है - ऊपर की ओर उठा हुआ अर्थात् आरोही। उदात्त प्रयत्न मात्र स्वर में सम्भव है।
10. **अनुदान** – उदात्त का विपरीत प्रयत्न अनुदान है। यह प्रयत्न नीचे की ओर अर्थात् अवरोही होता है। अनुदान प्रयत्न भी मात्र स्वर में सम्भव है।
11. **स्वरित** – इसका अर्थ है - समभावी अर्थात् जिसमें आरोह और अवरोह से रहित समभावी प्रयत्न हो। यह प्रयत्न भी मात्र स्वर संदर्भ में संभव है।

(इ) **करण आधार –** ध्वनि उत्पादन के उन सहयोगी अंगों को करण कहते हैं जिनमें गतिशीलता या तरंग होती है। ध्वनि-उत्पत्ति में निम्नलिखित करण गतिशील अंग सहयोगी होते हैं –

1. **अधरोष्ठ** – ऊपर का ओष्ठ लगभग अचल रहता है वैसे हल्की गतिशीलता का अनुभव कर कसते हैं। नीचे का ओष्ठ विविध ध्वनियों के उत्पादन में अनेक रूप धारण करता है। यह कभी ऊपर के ओष्ठ को छूता है तो कभी ऊपर के दाँत को छूता है।
2. **जिह्वा** – विभिन्न कारणों में जिह्वा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिह्वा के विभिन्न भाग-जिह्वानोक, जिह्वा अग्र, जिह्वा मध्य, जिह्वा पश्च और जिह्वा मूल विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में गतिशील सहयोगी होते हैं। जिह्वा आवश्यकतानुसार आगे-पीछे, ऊपर-नीचे विविध आकृतियों में बढ़कर ध्वनि-उत्पादन में सहयोग करती है। उदाहरणार्थ 'ल्' ध्वनि के उच्चारण में जीभ ऊपर उठकर तालु से चिपक जाती है और वायु मार्ग का मध्य भाग अवरुद्ध कर देती है। वायु जिह्वा के दोनों किनारों से निकलती है। इसी प्रक्रिया के कारण 'ल्' को पार्श्विक व्यंजन कहते हैं।
3. **कोमल तालु** – कोमल तालु को स्थान और करण दोनों वर्गो में रखा जाता है। अन्य करणों की तुलना में स्थान है, किन्तु कोमल भाग लेने के कारण इसमें ऊपर-नीचे होने की गतिशीलता है। जब जीभ के स्पर्श करने से ध्वनि-उत्पन्न हो तब यह स्थान है, किन्तु जब यह ऊपर-नीचे आकर अनुनासिक ध्वनियों के उत्पादन में सहयोगी हो जब करण है।
4. **स्वर तंत्री** – ध्वनि उत्पादन प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग स्वर तंत्री है। स्वर-यंत्र की स्वर-तंत्रियाँ विभिन्न प्रकार के छिद्र बनाने हेतु आगे पीछे होती रहती है। निःश्वास की वायु के निकालते समय भी विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में स्वर-तंत्रियों में कंपन भी होता है। स्वर-तंत्रियों की इसी गतिशीलता और कंपन में विभिन्न ध्वनियों का उत्पादन सम्भव होता है।

   विभिन्न स्वर-व्यंजन ध्वनियों का विश्लेषण स्थान-प्रयत्न और करण के आधार पर सरलता पर से कर सकते हैं। इनके आधार पर विभिन्न ध्वनियों के व्यवस्थित रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं।

2.5 स्वनगुण और उसकी सार्थकता

भाषा की लघुत्तम, स्वतंत्र और मूलाधार इकाई ध्वनि है। ध्वनियों को मुख्यतः स्वर और व्यंजन दो वर्गों में विभक्त करते हैं। इन ध्वनियों के साथ कुछ अन्य तत्त्व भी प्रयुक्त होते हैं। जिनका अपना अलग-अलग अस्तित्व नहीं होता है। ये स्वर और व्यंजन ध्वनियों पर आधारित होते हैं। इसे ध्वनि–गुण (Sound Quality) कहते हैं। इसके लिए ध्वनि-लक्षण (Sound Attributes) और खंडेतर ध्वनियाँ (Supra Segmental Sounds) नाम दिए गए हैं। स्वर और व्यंजन ध्वनियों के साथ उनके प्रयोग से उच्चारण में विविधता आ जाती है। शब्दों की एक अथवा एकाधिक ध्वनियों के ध्वनि-गुण परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन हो जाता है।

ध्वनि-गुण को मुख्यतः चार संदर्भों में विभक्त कर सकत हैं– मात्रा, बलाघात, सुराघात और व त्ति।

1. **मात्रा** – ध्वनिविज्ञान में मात्रा का अर्थ है – किसी ध्वनि के उच्चारण में लगने वाले समय की मात्रा। इसे 'मात्रा काल' से ही अभिहित किया जाता है। भाषा की विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण की विविधता सर्वविदित है। किसी ध्वनि के उच्चारण में अपेक्षाकृत कम समय लगता है। इस प्रकार हिन्दी ध्वनि की मात्राओं को मुख्यतः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। इन उच्चारित ध्वनियों को अंकित करने के लिये लिपि-चिन्हों की व्यवस्था हैः यथा –

   ह्रस्व – ऊ इ ;

   दीर्घ – आ (ा), ई (ि), उ (ु)

प्लुत – ओउ (ओउम्)

हिन्दी में 'अ' के लिए मात्रा-चिह्न नहीं हैं यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ह्रस्व स्वर है। 'अ' स्वर सभी व्यंजन ध्वनियों के साथ मिलकर वर्ण बनता है; यथा – क् + अ = क, च् + अ + अ = च

सामान्यतः माना गया है कि ह्रस्व ध्वनि के उच्चारण में उतना समय लगता है जितना आँख झपकने की त्वरित प्रक्रिया में या चुटकी बजाने में समय लगता है। दीर्घ ध्वनि में कौवे की बोली के बराबर और प्लुत में मोर की बोली के बराबर समय लगता है। तुलनात्मक द ष्टि मात्रा पर विचार करें, तो दीर्घ और प्लुत में ह्रस्व का क्रमशः दुना और तिगुना समय लगता है। इन ध्वनियों का आनुपातिक रूप सदा समान नहीं होता है। इतना अवश्य है कि ह्रस्व से अधिक समय दीर्घ से अधिक समय प्लुत में लगता है।

लेखन में ह्रस्व तथा दीर्घ ध्वनियों की लिपिबद्धता सर्वत्र देख सकते हैं, जबकि प्लुत का प्रयोग मुख्यतः "ओउम्" में होता है। दूर स्थित व्यक्ति या अन्य प्राणी को जब बुलाते हैं, तो प्लुत ध्वनि का प्रयोग करते हैं। ऐसी ध्वनियों के उच्चारण में ह्रस्व ध्वनि से मात्र तीन गुना ही समय नहीं लगता, वरन् कई गुना समय लग सकता है; यथा –

रामा , रामा , रामा

इसे इस प्रकार भी लिख सकते हैं –

रामा 3, रामा 4, रामा 5, रामा 6

सूक्ष्म वैज्ञानिक अध्ययन में ध्वनि-यंत्रों के आधार पर ध्वनि मात्रा के कई वर्ग बना सकते हैं।

व्यंजन का समान्य उच्चारण ह्रस्व होता है; तथा– क्, ग्, प्, ह् आदि। ध्वन्यात्मक द ष्टि से व्यंजन का द्वित्व रूप दो व्यंजन न होकर उसका दीर्घ रूप होता है; यथा –

पक्का - क्क

पत्ता - त्त

सभी ध्वनियों के उच्चारण समय में भिन्नता होना स्वाभाविक है। हिन्दी व्यंजनों में सबसे कम समय दन्त्य ध्वनियों में और सबसे अधिक ओष्ठ्य ध्वनियों में लगता है।

अर्न्तराष्ट्रीय लिपि चिन्ह्-समूह में ह्रस्व के लिये और दीर्घ के लिए `a' चिन्हों का प्रयोग करते हैं; यथा – राम = Rama.

2. **बलाघात –** बलाघात शब्द 'बल' और 'आधात' दो शब्दों के योग से बना है। ध्वनि विज्ञान में बलाघात का अर्थ है – विभिन्न ध्वनियों में से किसी ध्वनि पर पड़ने वाली अपेक्षाकृत अधिक शक्ति। एक शब्द की विभिन्न ध्वनियों पर कभी समान बल नहीं पड़ता, उनमें अल्पाधिक भिन्नता स्वाभाविक है। इसी प्रकार कभी वाक्य के एक शब्द पर अधिक बल लगता है, तो कभी दूसरे शब्द पर। बलाघात के विषय में निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

- शब्द में जितने अक्षर होंगे, बलाघात के रूप उतने ही होंगे
- एक बलाघात से दूसरे बलाघात का तुलनात्मक रूप कम या अधिक होता है।
- एक शब्द में कम से कम एक अक्षर और एक बलाघात करते हैं।

शब्द के जिस अक्षर पर बलाघात हो उसके पूर्व (,) का प्रयोग करते हैं।

बालाघात का सम्बन्ध मनोव त्ति से होता है। मनोव त्ति के अनुसार भाषा की विशेष इकाई के विशेष अंश पर बलाघात होता है। हिन्दी की बलाघात-प्रक्रिया से अर्थ में परिवत्रन होकर उसकी दिशा में परिवर्तन आ जाता है। हिन्दी बलाघात के कुछ रेखांकन योग्य बिन्दु इस प्रकार है –

1. बलाघात मुख्यतः अक्षर-दीर्घ पर होता है। एकाधिक ध्वनियों वाले अक्षर में बलाघात शिखर ध्वनि पर

होगा; यथा – श्याम, स्वास्थ्य।

2. शब्द-संदर्भ में केवल एक अक्षर पर बलाघात होता है।
3. वाक्य संदर्भ में केवल एक शब्द पर बलाघात होता है।
4. यदि शब्द में एक मात्र दीर्घाक्षर हो, तो बलाघात निश्चय उसी अक्षर पर होगा; यथा– बहार, मिलना।
5. यदि किसी शब्द में दीर्घाक्षर न हो, सभी ह्रस्वाक्षर हों, तो उपान्त्य ह्रस्वाक्षर पर ही बलाघात होगा; यथा – पवन, जलज।
6. यदि शब्द में एकाधिक दीर्घाक्षर हों तो उपान्त्य दीर्घाक्षर पर ही बलाघात होगा; यथा–घुमाना, पढ़ाया।
7. यदि किसी शब्द में दो अक्षर हों, दोनों दीर्घ हों, दूसरा अक्षर व्यंजनान्त हो, तो बलाघात दूसरे पर होगा; यथा - आसान > आसान।

बालाघात के भेद – बालाघात के स्वरूप को द ष्टिगत कर इसको चार प्रमुख वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

(क) **ध्वनि बलाघात –** जब एक शब्द की किसी ध्वनि-विशेष पर बल होता है, तो उसे ध्वनि-बालाघात कहते हैं। यह बालाघात स्वर या व्यंजन किसी ध्वनि पर सम्भव होता है; यथा– 'रस', मान 'आप', 'लॉन' आदि। एकाक्षरी शब्दों में जब दो या दो से अधिक ध्वनियाँ हों तो आघात शिखर ध्वनि पर ही होता है। शेष ध्वनियाँ गहरी होती हों; यथा –

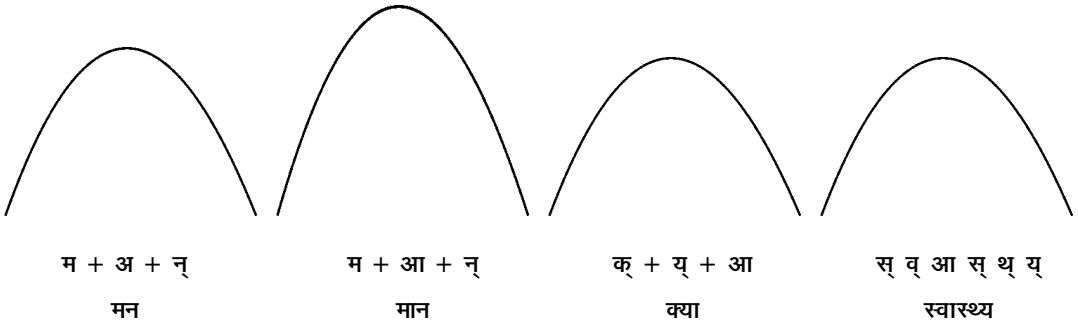

(ख) **अक्षर बलाघात –** जिन शब्दों में एकाधिक अक्षर होते हैं, उनमें से एक अक्षर पर बलाघात होता है ओर शेष बलाघातविहीन अक्षर होते हैं। ऐसे शब्दों में बलाघात की स्थिति अपेक्षाकृत कम या अधिक होती है। शब्द में बलाघातविहीन अक्षर का अर्थ है – अपेक्षाकृत कम बलाघात वाले अक्षर। सभी अक्षरों पर अल्पाधिक बलाघात होना निश्चित है। यदि शब्द के सभी अक्षर ह्रस्व स्वर आधारित हों, तो उपान्त्य अक्षर पर बलाघात होगा; यथा – क, लम, मि, लन, कुशल आदि।

यदि शब्द संरचना में एक दीर्घ स्वर आधारित अक्षर हों, शेष अक्षर ह्रस्व स्वर आधारित हों, तो बलाघात दीर्घ स्वर आधारित अक्षर पर होगा; यथा - स; मान, पालन, सफलता, म, कान आदि।

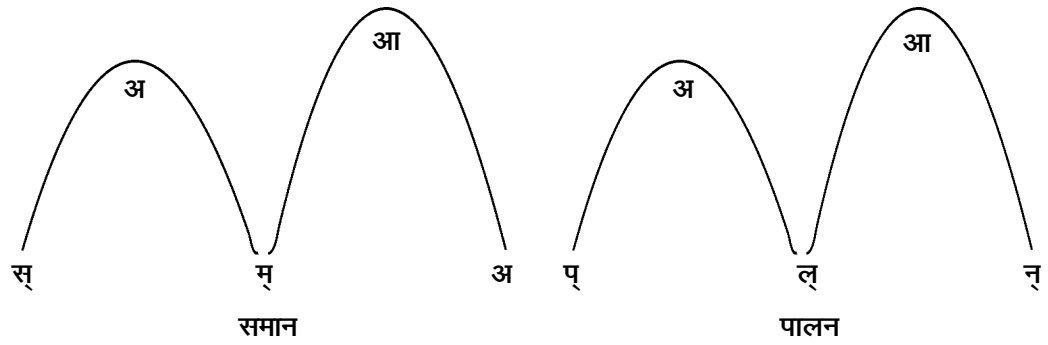

(ग) **शब्द बलाघात –** जब वाक्य के किसी पद विशेष पर बल दिया जाता है, तो शब्द या पद बलाघात होगा। सामान्य वाक्य के विभिन्न पद पर आघात प्रायः लगभग बराबर होता है; राकेश ने तुम्हारे लिए कलम खरीदी। शब्द – बलाघात से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् जब किसी वाक्य में बलाघात एक पद से दूसरे पद पर आ जाता है, तो अर्थ परिवर्तन हो जाता है; यथा –

(क) राकेश ने तुम्हारे लिए एक कलम खरीदी। (सामान्य वाक्य सभी शब्दों पर बराबर बलाघात)

(ख) राकेश ने तुम्हारे लिए एक कलम खरीदी। ('राकेश' शब्द पर बलाघात – राकेश ने कलम खरीदी, अन्य ने नहीं)

(ग) राकेश ने **तुम्हारे** लिए एक कलम खरीदी। ('तुम्हारे' शब्द पर बलाघात– तुम्हारे लिये खरीदी, अन्य के लिये नहीं)

(घ) राकेश ने तुम्हारे लिए **एक** कलम खरीदी। ('एक' शब्द पर बलाघात – एक कलम खरीदी, अधिक नहीं)

(ङ) राकेश ने तुम्हारे लिए एक **कलम** खरीदी। (कलम शब्द पर बलाघात – कलम खरीदी है, और कुछ नहीं)

(च) राकेश ने तुम्हारे लिए एक कलम **खरीदी**। ('खरीदी' शब्द पर बलाघात – कलम खरीदी है, देखी या सुनी नहीं है)

वाक्य में प्रयुक्त होने के कारण इसे बलाघात भी कह सकते हैं। किन्तु मेरे विचार से इसे शब्द बलाघात कहना अधिक उपयोगी है।

(घ) **वाक्य बलाघात –** जब किसी अनुच्छेद के एक वाक्य विशेष पर या कुछ वाक्यों के मध्य किसी वाक्य विशेष पर अधिक बल दिया जाए, तो वाक्य बलाघात होगा। वाक्य बलाघात प्रायः आश्चर्य, क्रोध, भावावेश आदि संदर्भों में होता है। बलाघात वाला वाक्य अन्य वाक्यों की अपेक्षा भावात्मक गम्भीरता प्रस्तुत करता है; यथा –

साइकिल चालक – मैंने जा कर टक्कर नहीं मारी।

स्कूटर चालक - अच्छा। गलत ढंग से मोड़ नहीं रहा था? हाथ दिया था, मुड़ने के पहले? क्या कहा? भाग जा (तू)।

यहाँ 'भाग जा' पर बलाघात हैं यह क्रोध में कहा गया वाक्य हैं यही कारण है इस पर इसके साथ आए वाक्यों से अधिक बलाघात है। 3 - सुराघात - सुर के विभिन्न स्वरूप स्वर तन्त्रियों की कम्पन्नाव त्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है, उसी प्रकार–तंत्रियों के ढीले और कसे होने पर क्रमशः सुर की निम्नता और उच्चता होती है।

जिनको उच्चारण में स्वर-तन्त्रियाँ अधिक आव त्ति करती हैं, सुर की उच्चता होती है या सुराघात तीक्ष्ण होता है, उनकी आवाज पतली होगी। बच्चों और महिलाओं की आवाज प्रायः ऐसे सुराघात से युक्त होती है। इसके विपरीत सुर की निम्नता पर आवाज अपेक्षाकृत मोटी होती है।

सुराघात को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं – उच्च, निम्न और मध्य सुराघात।

उच्च सुराघात –

जब स्वर-तंत्रियों के तनाव-आधार पर सुर उच्चता की ओर गतिशील होती है, तो सुरारोही होता है। ऐसे उच्चारण में स्वर तंत्रियों का तनाव क्रमशः बढ़ता है। अरोही सुर को (↑) चिन्ह से अंकित करते हैं। आरोही सुर के शीर्ष को उच्च सुराघात कहते हैं।

निम्न सुराघात –

जब स्वर-तन्त्रियों का तनाव क्रमशः कम हो रहा हो, तो सुर के कम होते रहने के कारण इसे सुरावोही कहते हैं। अवरोही सुर का संकेत चिन्ह है (↓)। इसका निम्नतम रूप निम्न सुराघात है।

मध्य सुराघात –

जब उच्चारण प्रक्रिया में स्वर-तंत्रियों का तनाव लगभग समान बना रहता है, तो मध्य सुराघात होता है। मध्य सुराघात को (→) से चिन्हित करते हैं।

जब सुर शब्द-सीमा में प्रभावी हो, तो उसके अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। इसे तान कहते हैं। अर्थ-परिवर्तन शब्द की ध्वनियों के तान-परितर्वन के आधार पर होता है। अफ्रीका की चुआना; बांटू ओर जुलू आदि तान प्रधान भाषाएँ हैं। जब सुर वाक्य स्तर पर प्रभावी होता है, जो उसका अर्थ सीमित रूप से प्रभावित होता है। इसे अनुतान कहते हैं। अनुतान में शब्द नहीं वाक्यार्थ परिवर्तित होता है; यथा –

वह पंजाब जा रहा है (↓) (सामान्य कथन)

वह पंजाब जा रहा है (↑) (प्रश्न वाचक)

वह पंजाब जा रहा है (↑) (विस्मय बोधक)

अनुतान के माध्यम से हम अपने मनोभाव तथा स्वभाव को व्यक्त करते हैं।

3. **वत्ति –** व त्ति का शाब्दिक अर्थ है – भाषा का सहज व्यवहार। प्रत्येक व्यक्ति को अपने ढंग से बोलने में सहजता होती हैं। कोई तो पूरी त्वरा के साथ अर्थात् तेजी से बोलता है, तो कोई मन्द गति सें। भाषा-प्रयोग के इस सहज रूप को ही व त्ति की संज्ञा देते हैं। विभिन्न संदर्भों के भाषा-प्रयोग को द ष्टिगत कर आचार्य पाणिनि ने व त्ति के तीन वर्ग इस प्रकार किये हैं –

"अभ्यासार्थे द्रुतां वत्ति प्रयोगार्थे च मध्यमाम्।
शिष्याणमुपदेशार्थे कुर्याद वत्ति विलम्बिताम"॥

अर्थात् जीवन में अभ्यास के लिए द्रुत, वार्तालाप में मध्यम ओर शिष्य को उपदेश देते समय विलम्बित व त्ति अपनानी चाहिए।

(क) **द्रुत –** जब भाषा का प्रयोग त्सरित गति से होता है, तो द्रुत व ति होती है। पूजा, संध्या वंदन में द्रुत व त्ति का प्रयोग किया जाता है। दैनिक जीवन में जहाँ भाषा का प्रयोग अभ्यास के लिये होता है, वहाँ ऐसी ही व त्ति का प्रयोग होता है; यथा किसी पाठ, व्याख्यान आदि का रटना। आँखों देखे गतिशील खेल-विवरण प्रस्तुति में ऐसी व त्ति होती है।

(ख) **मध्यम –** जब भाषा उच्चारण की गति सामान्य होती है, तो मध्यम व त्ति होती है। सहज व्यवहार में मध्यम व त्ति का प्रयोग होता है। ऐसी व त्ति में सहजता तथा बोधगम्यता बनी रहती है।

(ग) **विलम्बित –** भाषा-प्रयोग की मन्दगति को विलम्बित व त्ति कहते हैं उपदेशक अपने विचार को श्रोता तक स्पष्ट रूप से पहुंचाने के लिए प्र्याप्त मंद गति से बोलता है। उत्तम अध्यापन में भी विलम्बित व त्ति अपनायी जाती है।

ध्वनिगुण की सार्थकता

भाषा ही भावाभिव्यक्ति का मुख्य साधन है। भाषा की विभिन्न इकाईयाँ इस कार्य में सहयोगी सिद्ध होती हैं। यदा-कदा ऐसी स्थिति आती है कि सामान्य रूप में भी भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं होती है। ऐसी व्यवस्था में ध्वनियों के माध्यम से भाव-प्रकट करने में सरलता, स्पष्टता और गम्भीरता होती हैः यथा– RAMANA रमन, रमना, रमान, रामन, रामना, रमाना, रामान, रामाना।

यहाँ अंग्रेजी के सामान्य लेखन में यह गुण नहीं है। हिन्दी के आठों रूप स्पष्ट हैं। इनका उच्चारण इनकी प्रयोग-स्थिति पर आधारित है। जोर से आवाज़ देने पर प्लुत मात्रा का उपयोगी प्रयोग होता है।

बलाघात से शब्द में अक्षर की पहचान होती है और उनका उच्चारण सम्भव होता है। वाक्य में शब्द विशेष के बलाघात के अर्थ-परिवर्तन का बोध होता है। सुराघात से कोमल-पुरुष, मधुर और सामान्य उच्चारण का ज्ञात होता है। व त्ति के माध्यम से उपदेश, वार्तालाप, अभ्यास आदि संदर्भों में भाषा-प्रयोग की अनुकूलता-प्रतिकूलता का अनुभव होता है। इस प्रकार ध्वनि-गुणों से विभिन्न भावों अभिव्यक्ति को दिशा और गति मिलती है।

2.6 स्वन परिवर्तन की दिशाएँ

इसे ध्वनि–विकार या ध्वनि-विकास भी कहते हैं। भाषा सतत् परिवर्तनशील है। परिवर्तन के इस क्रम में कभी ध्वनियाँ पूर्णतः बदल जाती हैं, कभी कुछ परिवर्तित होती हैं। कभी ध्वनि का लोप होता है, तो कभी आगम होता है। इस प्रकार ध्वनियों में होने वाले विविध विकारों को ध्वनि-परिवर्तन या विकास कहते हैं। इसमें मुख्यतः निम्नलिखित दिखाएँ दिखाई देती है –

1. **आगम –** जब किसी शब्द में किसी ध्वनि का नया प्रयोग होता है, तो उसे आगम कहते हैं। शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त स्थिति में स्वर तथा व्यंजन दोनों के ही आगम सम्भव हैं।

   (क) **स्वरागम –** जब शब्द में किसी नए स्वर का प्रयोग आदि, मध्य या अन्त स्थिति में हो तो, स्वरागम कहते हैं; यथा –

   आदि स्वरागम– स्कूल > इस्कूल, स्नान > अस्नान;

   मध्यस्वरागम – पूर्व > पूरब, मर्म > मरम,

   अन्तस्वरागम – दवा > दवाई, प्रिय > प्रिया।

   (ख) **व्यंजनागम–** जब शब्द में आदि, मध्य या अनत स्थिति में किसी व्यंजन ध्वनि का आगम हो; यथा–

   आदि व्यंजनागम– उल्लास > हुलास, ओष्ठ > होंठ;

   मध्य व्यंजनागम – वानर > बन्दर, शार्प > श्राप।

   अन्तव्यंजनागम– भौं > भौंह, परवा > परवाह।

2. **लोप (Elision)** – आगम का विपरीत लोप है भाषा प्रवाह में तीव्रता मुख-सुख के कारण यदा-कदा शब्द के आदि, मध्य अथवा अन्त में स्वर या व्यंजन ध्वनि का लोप हो जाता है। ध्वनिलोप को स्वर लोप, व्यंजन, लोप, अक्षर लोप और सम ध्वनि लोप के रूप में विभाजित कर सकते हैं।

   (क) **स्वरलोप –** जब शब्द में से किसी स्वर का लोप होता है; यथा-आदि स्वर लोप-अगर > गर, अनाज > नाज; मध्य स्वर लोप-•कृप्या, हरदम > हर्दम; अन्त्यस्वरलोप-निद्रा > नींद; चल > चल्।

   (ख) **व्यंजन लोप –** जब शब्द के आदि, मध्य या अन्त से व्यंजन का लोप होता है; यथा– आदि व्यंजन लोप-स्थान > थान, स्थाली > थाली; मध्य व्यंजन लोप-कोकिल-आम्र > आम; उष्ट्र > ऊँट।

   (ग) **अक्षरलोप –** शब्द के आदि, मध्य या अन्त से यदा-कदा अक्षर का लोप हो जाता है; यथा-आदि अक्षर लोप-शहतूत > तूतः; त्रिशुल > शूल; मध्य अक्षर लोप-भंडागार > भंडार; चतुष्क > चौक; अन्त्य अक्षर लोप-मर्कटिका > मकड़ी, भ्रात जाया > भ्रात जा।

   (घ) **समध्वनि लोप –** जब एक शब्द में कोई ध्वनि दो या दो से अधिक बार एक साथ प्रयुक्त होती है और उनमें से एक लुप्त हो जाये; यथा– संवाददाता > संवादाता, खरीदार > खरीदार, नाककटा > नकटा।

3. **विपर्यय** (Metathesis) :– जब किसी शब्द के स्वर-व्यंजन या व्यंजन-स्वर या विभिन्न अक्षर एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं तो उसे ध्वनि-विपर्यय कहते हैं। विपर्य स्वर, व्यंजन तथा अक्षर तीनों ही संदर्भों में हो सकता है; यथा स्वर विपर्यय - कुछ > कछु, इक्षु > नखनऊ; ईख; व्यंजन विपर्यय, चाकू > काचू, लखनऊ अक्षर विपर्यय- चावल-दाल > दावल-चाल, कोलतार–तारकोल।

4. **समीकरण** (Assimilation) : – जब कोई ध्वनि अपने समीप की या निकटवर्ती ध्वनि को अपने समान बनाती है तो उसे समीकरण कहते हैं। समीकरण दो प्रकार के होते हैं

   (क) **पुरोगामी समीकरण –** जब पूर्ववर्ती स्वर या व्यंजन ध्वनि, परवर्ती ध्वनि को अपने समान बनाती है; यथा–स्वर समीकरण-हुक्म > हुकुम, जुल्म > जुलुम; व्यंजन समीकरण-चद्र > चक्का, पत्र > पत्ता।

   (ख) **पश्चगामी समीकरण –** जब परवर्ती, ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि को प्रभावित करती है; जैसे -स्वर समीकरण-अंगुली > उंगुली, श्वसुर > सुसुर; व्यंजन समीकरण - कर्म > कम्प; शर्करा > शक्कर।

5. **विषमीकरण** (Dissimilation) :– यह समीकरण की उल्टी प्रक्रिया है। इसमें निकट की दो समान ध्वनियों में से एक ध्वनि परिवर्तित होकर भिन्न रूप धारण कर लेती है। ऐसे परिवर्ततन से ध्वनि-श्रवण सरल हो जाता है। विषमीकरण भी पुरोगामी तथा पश्चगामी होते हैं।

   (क) **पुरोगामी विषमीकरण –** जब निकट की दो समान ध्वनियों में से एक ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि ज्यों की त्यों रहती है, किन्तु परवर्ती बदल जाती है; यथा- काक काग, कंकण > कंगन।

   (ख) **पश्चगामी विषमीकरण** – जब समीपपवर्ती दो समान ध्वनियों में से परवर्ती ध्वनि ज्यों की त्यों रहती है और पूर्ववर्ती ध्वनि बदल जाती है; यथा-मुकुट > मउर, नूपुर > नेउर।

6. **मात्रा-भेद** (Difference of Length) :– यदा-कदा शब्द में प्रयुक्त कोई मात्रा ह्रस्व से दीर्घ या दीर्घ से ह्रस्व हो जाती है, इसे मात्रा भेद कहते हैं।

   (क) **ह्रस्वीकरण –** जब दीर्घ मात्रा ह्रस्व हो जाती है; यथा; शून्य > सुन्न, आषाढ़ > अषाढ़।

   (ख) **दीर्घीकरण –** जब ह्रस्व मात्रा दीर्घ हो जाती है; यथा-पुत्र > पूत, जिह्वा > जीभ, दुग्ध > दूध।

7. **घोषीकरण** (Vocalization) :– जब कोई घोषी ध्वनि कुछ समय बाद घोष ध्वनि के रूप में प्रयुक्त होने लगे, तो उसे घोषीकरण कहते है; यथा मकर > मगर
   (क > ग), काक > काग (क > ग), शती > सदी (त > द)।

8. **अघोषी करण** (Devocalization) :– इसमें घोष ध्वनियाँ अघोष बन जाती है; यथा-अदद > (अ > त), मदद > मदत (द > त)।

9. **महप्राणीकरण** (Aspiration) :– इस परिवर्तन में अल्प महाप्राण ध्वनियाँ महाप्राण बन जाती है यथा - ग्रह > घर > (ग > घ), हस्त > हाथ (त > थ), धष्ट > ढीत (ट > ड)।

10. **अल्पप्राणीकरण** (Deaspiration) :– किसी शब्द में महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण बन जाती है, उसे अल्पप्राणीकरण कहते हैं; यथा– भागिनी > बहिन (भ > ब) सिन्धु > हिन्दु (घ > च)

11. **अनुनासिकीकरण** (Nasalization) :– जब सामान्य मौखिक ध्वनियाँ कालान्तर में अनुनासिक रूप में प्रयुक्त होती हैं, तो उसे अनुनासिकीकरण कहते हैं; यथा-सर्प > साँप, सत्य > साँच, श्वास > साँस।

12. **सन्धि :–** कुछ शब्दों में मध्यगत व्यंजनों के लोप होने से कुछ स्वर संधि रूप में प्रयुक्त होते हैं; यथा-शत > सठ (अ और उ का संधि रूप) सौ, नयन > नइन (अ और इन का संधि रूप)।

2.7 स्वनिमः परिभाषाः अवधारणा और भेद

स्वनिम के लिए ध्वनिग्राम, स्वनग्राम आदि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। अंग्रेजी में इसका पर्यायी शब्द फोनीम (Phoneme) है। Phoneme के लिए प्रयुक्त होने वाला 'स्वनिम' शब्द 'ध्वनिग्राम' की अपेक्षा कहीं अधिक नया है, किन्तु आजकल इसका ही प्रयोग चल रहा है।

स्वनिम के स्वरूप के संदर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इसे भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित माना है। ब्लूमफील्ड और डैनियल जोन्स से इसे भौतिक इकाई के रूप में स्वीकार किया है। एडवर्ड सापीर इसे मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं। डब्ल्यू. एफ. ट्वोडल स्वनिम को अमूत काल्पनि इकाई मानते हैं।

स्वन या ध्वनि-परिवर्तन से सदा अर्थ- परिवर्तन नहीं होता है, जब कि स्वनिम-परिवर्तन से अर्थ- परिवर्तन निश्चित है।

स्वनिम उच्चारित भाषा की ऐसी लघुत्तम इकाई है, जिससे दो ध्वनियों का अन्तर स्पष्ट होता है। इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि स्वनिम का सम्बन्ध ध्वनि से है। ध्वनि का सम्बन्ध यदि उच्चारण से होता है, तो श्रवण से भी इसका अटूट सम्बन्ध होता है। यदि ध्वनि सुनी नहीं जाएगी तो उसका अस्तित्व भी संदिग्ध होगा। ध्वनि के उच्चारण तथा श्रवण-सम्बन्धों के ही कारण स्वनिम को शरीर-विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित कहा गया है, क्योंकि उच्चारण और श्रवण-प्रक्रिया यदि शरीर विज्ञान से सम्बन्धित होती है, तो संवहन-प्रक्रिया पूर्णतः भौतिक विज्ञान से।

किसी भी भाषा की मूलभूत ध्वनियाँ लगभग पन्द्रह से पचास तक होती हैं। इन्हीं ध्वनियों के निर्धारण पर स्वनिम का निर्धारण होता है। स्वनिम के ही माध्यम से ध्वनियों के मध्य अन्तर प्रदर्शित होता है। ज, न, प भिन्न-भिन्न स्वनिम हैं। इसलिए इनमें भिन्नता है। जान तथा पान का अन्तर स्वनिम की भिन्नता के ही आधार पर होता है। यहाँ 'ज' तथा 'प' दो भिन्न सार्थक ध्वनियाँ हैं। इन्हीं भिन्न सार्थक ध्वनियों के आधार पर 'ज्ञान' तथा 'पान' में अर्थ भिन्नता भी है। इन्हीं सार्थक ध्वनियां को ध्वनि विज्ञान में स्वनिम कहते हैं। उन दो शब्दो की 'न' ध्वनियों में सूक्ष्म अन्तर है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति यदि एक ध्वनि को दो बार उच्चारण करेगा, तो उनमें सूक्ष्म अन्तर होना स्वाभाविक है; यथा-पान, जान, पानी, मनु, मीनू, माने, मानो आदि शब्दों की विभिन्न 'न' ध्वनियों में सामान्य रूप से कोई अन्तर नहीं लगता है, किन्तु सूक्ष्म चिन्तन पर इन ध्वनियों में सूक्ष्म भिन्नता का ज्ञान होता है। स्वनिक रूप से यदि इनमें भिन्नता है, तो उच्चारण के स्थान, प्रयत्न तथा कारण आदि आधारों पर इनमें पर्याप्त समानता ही स्वनिम की अवधारणा का आधार है।

स्वनिम रेखांकन के लिए इस प्रकार का आधार अपनाते हैं –

कमल को / क / म / ल

मुक्त वितरण (Free Distribution)

जब ध्वनि में अन्तर होने पर भी अर्थ-परिवर्तन न हो, तो उसे मुक्त वितरण कहते हैं। हिन्दी में स्वनिम के ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं; यथा-दीवार > दीवान, ग़म > गम।

यहाँ प्रथम शब्द में / र / - / ल और द्वितीय में / ग / - / ग / ध्वनियों के अतिरिक्त पूरा परिवेश समान है। इसके लिए ~ चिन्ह का प्रयोग करते हैं; यथा– दीवार > दीवाल / र / ~ / ल।

किसी शब्द के आदि, मध्य और अन्त में प्रयुक्त होने पर यदि अर्थ- परिवर्तन हो, तो स्वनिम रूप निश्चित हो जाता है; यथा – आप शब्द के आदि और अन्त में 'ज' प्रयोग से अर्थ- परिवर्तित रूप इस प्रकार मिलते हैं –

ज > आज, जाप

इस प्रकार 'ज' स्वनिम है।

"ल" स्वनिम को इस प्रकार दिखा सकते हैं –

आदि	मध्य	अन्त्य
ल -	- ल -	- ल
लखन	कलम	कमल

विशेषताएँ

1. स्वनिम भाषा की लघुत्तम इकाई है; यथा – अ, त, क, प आदि।
2. स्वनिम विभिन्न समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि एक ध्वनि का एक से अधिक या अनेक तरह से उच्चारण किया जाए, तो उसके लिए एक ही स्वनिम होगा; यथा- 'क' ध्वनि को दस व्यक्ति बोले या एक ही व्यक्ति दस बार बोले तो इसके दस रूप होंगे, किन्तु इन दसों ध्वनि-रूपों के लिए एक ही स्वनिम होगा।
3. स्वनिम अर्थ– भेदक इकाई है; यथा– तन और मन शब्दों में अर्थ-भिन्नता त और म स्वनिमों की भिन्नता के कारण है। तन के न और मन के न के उच्चारण में सूक्ष्म भिन्नता अवश्य है, किन्तु दोनों एक ही स्वनिम से सम्बन्धित है; इसलिये इनसे अर्थ-भिन्नता नहीं होती है।
4. स्वनिम उच्चारित भाषा से सम्बन्धित है। लिखित भाषा से इसका सम्बन्ध नहीं होता। लिखित भाषा में इसी प्रकार की इकाई लेखिम होती है। हिन्दी में क एक स्वनिम है जिसके लिये अंग्रेजी में कई लेखिमों का प्रयोग होता है; यथा– C > कैमल (camel), K > काइट (kite) > केमेस्ट्र (chemistry), Que > चैक (cheque) ck > बैक (Back) आदि।
5. प्रत्येक भाषा के अपने स्वनिम होते हैं, जो अन्य किसी भी भाषा के स्वनिम से भिन्न होते हैं। अर्थात् स्वनिम भाषा विशेष पर आधारित होते हैं; यथा – प, फ हिन्दी के स्वनिम हैं, जब कि अन्य भाषा में ये ध्वनियाँ भी हो सकती हैं जब कोई व्यक्ति अपनी भाषा के स्वनिमों से भिन्न किसी अन्य भाषा के स्वनिमों का प्रयोग करता है, तो उनके उच्चारण में कठिनाई आती है। ऐसे समय वह न स्वनिमों की भिन्नता के आधार पर विभिन्न भाषा-भाषियों की पहचान सम्भव है यदि हिन्दी में जल है तो बंगला में जॉल।
6. स्वनिम समपवर्ती ध्वनियों से प्रभावित होते हैं; त अघोष, अल्पप्राण, दन्त्य ध्वनि जब न के साथ प्रयुक्त होती है तो नासिक्य ध्वनि 'न' का प्रभाव उस पर पड़ जाता है - तन > तँन।
7. सभी भाषाओं में ध्वनियों की एक निश्चित व्यवस्था होती है जिसके आधार पर उनमें ध्वन्यात्मक संतुलन बना रहता है; यथा – हिन्दी के क, घ, छ, झ, ठ, ढ आदि स्वनिमों का ज्ञान हो तो स्वनिम-व्यवस्था के अनुसार अल्पप्राण - महाप्राण के क्रम के अनुसार 'क' वर्ग में 'घ' के अतिरिक्त 'ख' एक अन्य महाप्राण ध्वनि की सम्भावना स्पष्ट हो जाएगी। इस प्रकार स्वनिम-व्यवस्था पूरी हो जाती है।
8. कभी-कभी दो ध्वनियाँ बिना अर्थ-परिवर्तन के एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होती हैं। यह प्रायः बोलियों की सहजीकरण की स्थिति में होता है, किन्तु यदा-कदा मानक उच्चारण में भी ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं; यथा– क > क > ख़ > ख, ज़ > ज (इल्जाम) प्रथम शब्द का अर्थ दोष है और द्वितीय का अर्थ है– घोड़े के मुख में लगाम देना यहाँ दोनों ही शब्द समान 'दोष' अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं।
9. प्रत्येक भाषा के स्वनिमों की संख्या भिन्न होती है।
10. "Once phoneme ever phoneme" यदि कोई ध्वनि एक बार निश्चित हो जाए कि स्वनिम है, तो वह सदा प्रत्येक स्थिति में स्वनिम होगी।

11. यदि कोई ध्वनि आदि; मध्य और अन्त में से किसी एक में मिले तो स्वनिम स्थिति विचारणीय है। हिन्दी में ऐसी स्थिति नहीं दिखाई देती अंग्रेजी ध्वनियाँ p + k की आदि स्थिति में क्रमशः P^h, T^h, K^h हो जाती हैं, किन्तु मध्य और अन्त में पूर्ववत P.T.K रहती हैं।

आदि	मध्य	अन्य
P^h	-p-	-p
t^h	-t-	-t
k^h	-k-	-k

प्रवर्तित ध्वनि केवल आदि में है, इसके अर्थ में परिवर्तन भी नहीं होता। अन्त में स्वनिम नहीं है। मध्य तथा अन्त स्थिति में अधिक परिवेश में प्रयुक्त होने से p.t.k. स्वनिम हैं। ये ध्वनियाँ आपस में संस्वन हैं।

उपयोगिता

1. स्वनिम ज्ञान से भाषा के शुद्ध उच्चारण में सरलता होती है। स्वनिम के माध्यम से ही किसी भाषा की मूल ध्वनियों का ज्ञान होता है। इस प्रकार भाषा-शिक्षण में स्वनिम ज्ञान का विशेष महत्त्व है।

2. स्वनिम उच्चरित भाषा से सम्बन्धित है। इनके माध्यम से भाषा की ध्वनियों की संख्या का नियन्त्रण होता है। इस प्रकार के नियन्त्रण से भाषा उच्चारण में समुचित व्यवस्था बनी रहती है। स्वनिम व्यवस्था से नई ध्वनियों के आगम पर उनका सीखना सम्भव और सरल होता है।

3. स्वनिम भाषा की अर्थ भेदक इकाई है। भाषा की अन्य इकाइयाँ – शब्द, पद, वाक्य आदि का ज्ञान तब तक सम्भव नहीं होता जब तक स्वनिम का ज्ञान न हो, क्योंकि भाषा ही परवर्ती व हत्तर इकाइयाँ स्वनिम पर आधारित हैं।

4. लिपि-निर्माण में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भाषा के स्वनिमों के निश्चयन के पश्चात् ही लिपि का निर्माण होता है। इस प्रकार स्वनिम को लिपि का मूलाधार कह सकते हैं।

5. आदर्श लिपि का निश्चय ही स्वनिम के माध्यम से होता है। जिस लिपि में एक स्वनिम के लिए एक लिपि चिन्ह हो, उसे आदर्श लिपि कहते हैं।

6 स्वनिम के माध्यम से ही अन्तर्राष्ट्रीय लिपि (I.N.P.A) का रूप सामने आया है।
सभी भाषाओं के विभिन्न स्वनिमों के लिए इसमें समुचित रूप से एक-एक चिन्ह की व्यवस्था होती है। इस प्रकार भाषा के शुद्ध उच्चारण, आदर्श लिपि और अन्तर्राष्ट्रीय लिपि निर्माण आदि में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

अध्याय - 3
रूप एवं वाक्य विज्ञान

3.1 रूपिम की अवधारणा और भेद
(Morpheme)

रूपिम को रूपग्राम और पदग्राम भी कहते हैं। जिस प्रकार स्वन-प्रक्रिया की आधारभूत इकाई स्वनिम है, उसी प्रकार रूप प्रक्रिया की आधारभूत इकाई रूपिम है। रूपिम वाक्य-रचना और अर्थ-अभिव्यक्ति की सहायक इकाई है।

स्वनिम भाषा की अर्थहीन इकाई है, किन्तु इसमें अर्थभेदक क्षमता होती है। रूपिम लघुतम अर्थवान इकाई है, किन्तु रूपिम को अर्थिम का पर्याय नहीं मान सकते हैं; यथा-परमेश्वर एक अर्थिम है, जबकि इसमें 'परम' और 'ईश्वर' दो रूपिम हैं।

परिभाषा – विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों ने रूपिम को भिन्न-भिन्न रूपों में परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाएँ द्रष्टव्य हैं-

डॉ. उदयनारायण तिवारी ने रूपिम की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''पदग्राम (रूपिम) वस्तुतः परिपूरक वितरण या मुक्त वितरण मे आये हुए सहपदों (संख्यों) का समूह है।''

डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल के अनुसार, ''रूप भाषा की लघुतम अर्थपूर्ण इकाई होती है जिसमें एक अथवा अनेक ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है।''

डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार, ''भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई रूपग्राम है।''

डॉ. जगदेव सिंह ने लिखा है, ''रूप-अर्थ से संश्लिष्ट भाषा की लघुतम इकाई को रूपिम कहते हैं।''

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रदत्त परिभाषाएँ

ब्लाक का रूपिम के विषय में विचार है-''कोई भी भाषिक रूप, चाहे मुक्त अथवा आबद्ध हो और जिसे अल्पतम या न्यूनतम अर्थमुक्त (सार्थक) रूप में खण्डित न किया जा सके, रूपिम होता है।''

ग्लीसन का विचार है-''रूपिम न्यूनतम उपयुक्त व्याकरणिक अर्थवान रूप है।''

आर. एच. रोबिन्स ने व्याकरणिक संदर्भ में रूपिम को इस प्रकार परिभाषित किया है-''न्यूनतम व्याकरणिक इकाईयों को रूपिम कहा जाता है।''

स्वरूप – रूपिम के स्वरूप को उसकी अर्थ-भेदक संरचना के आधार पर निर्धारित कर सकते हैं। प्रत्येक भाषा में रूपिम व्यवस्था उसकी अर्थ-प्रवति के आधार पर होती है। इसलिए भिन्न-भिन्न भाषाओं के रूपिमों में भिन्नता होना स्वभाविक है।

मानक हिन्दी में प्रयुक्त 'पढ़वाऊँगा' शब्द या पद पर विचार किया जाए तो इसमें निम्नलिखित लघुतम अर्थवान इकाइयाँ द ष्टिगोचर होती हैं -

पढ़ (धातु-रूपिम)

वा (प्रेरणार्थक रूपिम)

ऊँ (उत्तम पुरुष एकवचन सूचक रूपिम)

ग (भविष्यत् कालसूचक रूपिम)

आ (पुल्लिंग सूचक रूपिम)

इस प्रकार 'पढ़वाऊँगा' शब्द में पाँच रूपिमों का अस्तित्व है, इन्हीं रूपिमों के माध्यम से अन्य शब्दों की रचना होती है; यथा-

पढ़ > पढ़ना, पढ़ा, पढ़ता आदि।

वा > चलवाता, मरवाना, लिखवाएगा आदि।

ऊँ > मिलवाऊँ, पढ़ाऊँ, आऊँ आदि।

ग > जाएगी, हँसेगा, दौड़ाएगा आदि।

आ > पढ़ता, पढ़ा, पढ़ेगा आदि।

इन अर्थपूर्ण खण्डों के विवेचन से यह तथ्य सुस्पष्ट होता है। रूपिम-विवेचन के लघुतम खण्डों में अर्थ सुरक्षित होना अनिवार्य है और खण्डों में अन्य शब्द-रचना की शक्ति होती है।

'फूलों की सुन्दरता किसका मन हर नहीं लेती'' वाक्य का रूपिम विश्लेषण होगा-

(1) /फूल/ (2) / ों (ओं) बहुवचन प्रत्यय

(3) /की/कारण प्रत्यय (4) /सुन्दर/

(5) /ता/भाववाचक प्रत्यय (6) /किस/

(7) /का/कारक प्रत्यय (8) /मन/

(9) /हर/ (10) /नहीं/

(11) /लेत्/ (12) / ी (ई) /स्त्री प्रत्यय

उक्त वाक्य में रूपिमों की संख्या बारह है।

रूपिम की संरचना एक अथवा एक से अधिक स्वनिम के आधार पर होती है; यथा-''तू आ'' वाक्य में ''तू'' और ''आ'' दो रूपिम हैं। जिनमें ''तू'' की संरचना ''तू'' और ''ऊ'' स्वनिम से हुई है, तो ''आ'' एक स्वनिम आधारित रूपिम है।

रूपिम में विभिन्न स्वनिमों का प्रयोग पूर्ण व्यवस्थित रूप में होता है; यथा - ''नहर'' रूपिम में ''न'', ''ह'' और ''र'' तीनों स्वनिमों की क्रमिक व्यवस्था है। इसके विपरीत कोई भी व्यवस्था अनुपयोगी सिद्ध होगी। ''हरन'', ''नहर'', ''रहन'' आदि संरचनाओं में वह क्रमिक व्यवस्था नहीं है।

रूपिम भाषा की लघुतम अर्थवान इकाई है। अतः इसके अर्थयुक्त खण्ड सम्भव नहीं है; यथा-''नहर'' रूपिम का न + हर अथवा न + ह + र में कोई खण्ड सम्भव नहीं है।

एक रूपिम में एक अथवा एक से अधिक अक्षर हो सकते हैं; यथा - एक अक्षरीय रूपिम-मन्, राम, आ आदि। एकाधिक अक्षरीय रूपिम-मकान्, ताला, काला आदि।

इस प्रकार रूपिम भाषा के अर्थ - संदर्भ की लघुतम इकाई है। इसके खण्ड कर देने पर अर्थ अभिव्यक्ति की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

वर्गीकरण – भाषा अथवा वाक्य में प्रयुक्त रूपिमों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उनको कई आधारों पर वर्गीकृत कर सकते हैं -

प्रयोग आधार – वाक्य में रूपिम कभी स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त होते हैं, तो कभी किसी वाक्यांश के साथ प्रयुक्त होते हैं। कुछ रूपिम ऐसे भी होते हैं जो कभी तो स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त होते हैं, तो कभी वाक्यांश के साथ। रूपिम की इन प्रयोग प्रव तियों के आधार पर इन्हें मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) **मुक्त रूपिम** – वाक्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होने वाले रूपिम को मुक्त रूपिम संज्ञा दी जाती है। ऐसे रूपिम में एक मूल शब्द-संरचना की शक्ति होती है। हिन्दी में ऐसे रूपिमों का बहुल प्रयोग होता है; यथा-/मन/और/बात/मुक्त रूपिम हैं। इनके द्वारा एकरूपिमिक शब्द ''मन'' और ''बात'' की संरचना होती है। वाक्य में इनका स्वतंत्र (मुक्त) रूप में प्रयोग संभव है।

मन बात (>) मन की बात कहूँगा।

भाषा की लघुतम अर्थवान इकाई रूपिम के विभिन्न रूपों में मुक्त रूपिम का सर्वाधिक महत्त्व है क्योंकि अन्य रूपिम भी इसी पर आधारित होकर प्रयुक्त होते हैं।

बहुरूपिमिक शब्दों के सभी रूपिम मुक्त वर्ग के हो सकते हैं; यथा-डाकघर, /डाक/घर, जलपान /जल/पान हिन्दी में मुक्त रूपिम का प्रयोग स्वतंत्र शिरोरेखा में भी होता है; यथा-राजीव घर जा रहा है। उस ने कहा है। भाषा के अर्थ तत्त्व प्रायः मुक्त रूपिम होते हैं।

(ख) **बद्ध रूपिम** – ऐसे रूपिम जो शब्द में किसी अन्य रूपिम के साथ प्रयुक्त होते हैं, इन्हें बद्ध रूपिम कहते हैं। इनके सहयोग से भावभिव्यक्ति को दिशा मिलती है। इनका प्रयोग स्वतंत्र रूप में नहीं होता है। विभिन्न प्रकार के प्रत्यय बद्ध रूपिम हैं; यथा -

वचन प्रत्यय आधारित बद्ध रूपिम -	ए -	लड़का	लड़के
		घोड़ा	घोड़े
	ओं -	बालक	बालकों
		वक्ष	वक्षों
	इयाँ	लड़की	लड़कियाँ
		धोती	धोतियाँ
लिङ्.ग प्रत्यय आधारित बद्ध रूपिम-	ई -	काला	काली
		लड़का	लड़की
	आ -	बाल	बाला
		अनुज	अनुजा
	इन -	धोबी	धोबिन
		नाई	नाइन
भाववाचक प्रत्यय आधारित बद्ध रूपिम–	पा -	बूढ़ा	बुढ़ापा
	पन -	बाल	बालपन
	ता -	मनुष्य	मनुष्यता

ऊपर संकेत किए गए, ओं, इयाँ, ई, आ, इन, ने, को, से, पा, पन, ता आदि विभिन्न कारक प्रत्यय आधारित बद्ध रूपिमों का एकाकी प्रयोग सम्भव नहीं है। ऐसे रूपिम सदा ही किसी अन्य रूपिम के साथ प्रयुक्त होते हैं।

(ग) **मुक्तबद्ध रूपिम** – इसे अर्द्धमुक्त, अर्द्धबद्ध और बद्धमुक्त रूपिम भी कहते है। इस वर्ग में ऐसे रूपिम को रखते हैं, जो प्रायः देखने में स्वतंत्र लगते हैं; किन्तु वे किसी न किसी वाक्यांश से जुड़े होते हैं। ऐसे रूपिम को सम्बन्ध तत्त्व के रूप में भी देख सकते हैं, जिनका प्रयोग अर्थ तत्त्व सम्बन्धित रूपिम के साथ होता है; यथा - उस ने/उसने

	मनु	>	मनु ने
का-	उन	>	उन को/उनको
	नीलम	>	नीलम को
	राजीव	>	राजीव से
	मैं	>	मुझसे/मुझसे

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि सर्वनाम रूपिमों के साथ ऐसे रूपिम मुक्त और बद्ध दोनों ही रूपों में प्रयुक्त होते हैं, यथा - उसने-उसे ने, उनको-उन को आदि।

2. **संरचना - आधार** – रूपिमों को अर्थ संरचना की द ष्टि से मुख्यतः चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

(क) **मूल रूपिम** – रूपिमों की रचना मात्र अर्थतत्त्व के माध्यम से होती है, उसे मूल रूपिम कहते हैं। ऐसे रूपिमों में सम्बन्ध तत्त्व की कोई भूमिका नहीं होती है; यथा-गाय, दिन, घड़ी आदि। ऐसे रूपिम के साथ उपसर्ग या प्रत्यय का भी योग नहीं होता है।

(ख) **संयुक्त रूपिम** – जब दो या दो से अधिक रूपिम एक साथ प्रयुक्त हों और उनमें एक अर्थतत्त्व आधारित हो शेष रूपिम उपसर्ग या प्रत्यय आधारित हों, तो उसे संयुक्त रूपिम कहते हैं। ऐसे रूपिमों की संरचना व्याकरणिक कोटियाँ पर आधारित होती है; यथा-लड़कियाँ और गाएँगी। इन दोनों की संरचना को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं;

लड़कियाँ	>	लड़की (मूल रूपिम) + इयाँ (बहुवचन सूचन प्रत्यय आधारित रूपिम)
गाएँगी	>	गा (मूल, अर्थतत्त्व आधारित रूपिम) + एँ (बहुवचन सूचन प्रत्यय आधारित रूपिम) + (स्त्रीलिंग प्रत्यय आधारित रूपिम)

(ग) **मिश्रित रूपम** – जब दो या दो से अधिक मूल अथवा अर्थ तत्त्व आधारित रूपिम एक साथ प्रयुक्त हों, तो मिश्रित रूपिम की संज्ञा दी जाती है; यथा - मालगाड़ी, वायुसेनाध्यक्ष आदि। इन रूपिमों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है -

मालगाड़ी	>	माल (अर्थतत्त्व आधारित रूपिम) + गाड़ी (अर्थतत्त्व आधारित रूपिम)
वायुसेनाध्यक्ष	>	वायु (अर्थतत्त्व आधारित रूपिम) + सेना (अर्थतत्त्व आधारित रूपिम) + अध्यक्ष (अर्थतत्त्व आधारित रूपिम)

3. **अर्थ एवं कार्य व्यापार-आधार** – जब रूपिम में अर्थतत्त्व अथवा सम्बन्धपरक के माध्यम से भावाभिव्यक्ति सम्भव हो, तो उक्त आधार पर रूपिमों को मुख्य दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

(क) **अर्थदर्शी रूपिम** – जब वाक्य में रूपिम मात्र अर्थतत्त्व पर आधारित होता है, तो उसे अर्थदर्शी रूपिम कहते हैं। भाषा-भवन की संरचना में ऐसे रूपिम का सर्वाधिक महत्त्व है। ऐसे रूपिमों की विविधता और उनकी संख्या भावाभिव्यक्ति में विशेष भूमिका निभाती है।

संख्या रूपिम	-	सीता, मनु, कलम।
विशेषण रूपिम	-	मधुर, अच्छा, काला।
क्रिया रूपिम	-	जाना, हँसना, चलना।

(ख) **सम्बन्धदर्शी रूपिम** – जब वाक्य में रूपिम मात्र सम्बन्ध-तत्त्व पर आधारित होता है, तो उसे सम्बन्धदर्शी रूपिम कहते हैं। इन रूपिमों को भाषा का प्रकार्यात्मक पक्ष कह सकते हैं। सम्बन्धदर्शी रूपिमों से भाषा में व्याकरणिक कोटियों का बोध होता है। इसके अन्तर्गत वचन, लिंग, काल, पुरुष और कारण आदि से सम्बोधित रूपिम आते हैं।

वचन आधारित रूपिम :	ए	-	लड़के, घोड़े, मोटे।
	ओं	-	लड़कों, घोड़ों, मोटों।
	इयाँ	-	लड़कियाँ, धोतियाँ, रोटियाँ।
लिंग आधारित रूपिम :	आ	-	बाला, अनुजा, आत्मजा।
	ई	-	लड़की, भोली, काली।
कारक आधारित रूपिम :	ने	-	गुलशन ने, उसने, आपने।
	को	-	भोला का, मुझको, किसको।
	का	-	गाँधी का, आपका, जिसका।
काल आधारित रूपिम :	गा	-	जाएगा, मारेगा, गिरेगा।
	या	-	गया, खाया, पाया।

4. **खण्ड आधार** – कुछ रूपिमों के खण्ड किए जा सकते हैं तो कुछ अखण्ड्य होते हैं। इस आधार पर रूपिम को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

(क) **खण्ड्य रूपिम** – जिन रूपिमों के दो या दो से अधिक खण्ड किये जा सकते हैं, उन्हें खण्ड्य रूपिम कहते हैं; यथा - डाकघर> /डाक/घर/, जाएगी/जा/,/ए/,गी/ आदि।

(ख) **अखण्ड्य रूपिम** – जिन रूपिमों के सार्थक खण्ड न किए जा सकें; यथा-बलाघात (stress), सुर (tone), सुरलहरी (intonation)।

3.2 वाक्य की अवधारणा

भाषा विज्ञान में वाकय की परिभाषा, वाक्यों की संरचना, वाक्य के मूलाधार, वाक्यों के प्रकार, वाक्यों के निकटस्थ अवयव और वाक्यों के रचनान्तरण आदि पर विचार किया जाता है।

भाषा का मुख्य कार्य अभिव्यक्ति है। भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य के माध्यम से होती हैं। वाक्य के अभाव में भाव या विचार की स्थिति संदिग्ध हो जाएगी। वास्तव में भाव मन में अव्यक्त वाक्य के रूप में विद्यमान होते हैं, ध्वनि-प्रतीकों या लिपि-चिह्नों का आधार पाने पर वाक्य का व्यक्त रूप सामने आता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि मनुष्य जो भी सोचता या अभिव्यक्त करता है, वह सब वाक्य के ही माध्यम से होता है। भावाभिव्यक्ति सन्दर्भ में वाक्य भाषा की सहज तथा प्रथम इकाई है।

1. वाक्य

परिभाषा – समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने वाक्य की परिभाषा की है। कुछ प्रमुख भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ उद्धत हैं -

(क) **पंतजली** ने महाभाष्य में वाक्य की परिभाषा इस प्रकार की है - ''आख्यात साव्यकारक विशेषण वाक्यम्।'' अर्थात् जहाँ क्रिया अव्यय, कारक तथा विशेषण पद एकत्र हों, उसे वाक्य कहते हैं।

(ख) **आचार्य विश्वनाथ** ने साहित्य-दर्पण में लिखा है- ''वाक्यं स्याद् योग्य ताकांक्षासक्तियुक्तः पदोच्चयः।'' अर्थात् पदों का वह समूह जो योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति से युक्त हो, उसे वाक्य कहते हैं।

(ग) **डॉ. भोलानाथ तिवारी** ने भाषा विज्ञान में वाक्य की परिभाषा इस प्रकार की है ''वाक्य भाषा की सहज इकाई है, जिसमें एक या अधिक शब्द हों, जो अर्थ की द ष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण व्याकरणिक द ष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है, साथ ही परोक्ष रूप से कम से कम एक क्रिया का भाव अवश्य होता है।''

(घ) हिन्दी के प्रसिद्ध वैयाकरण **पं. कामताप्रसाद गुरू** ने 'हिन्दी व्याकरण' में वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दी है- ''प्रत्येक पूर्ण विचार को वाक्य और प्रत्येक भावना को शब्द कहते हैं।''

(ङ) **आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा** के अनुसार, ''भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है।''

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने ध्वनि, पद और वाक्य के आपसी सम्बन्धों को रेखांकित करते हुए कहा है- ''वाक्य पूर्णतः मानसिक या मनोवैज्ञनिक तत्त्व है। उसमें पदों का प्रयोग भाव या विचार के अनुसार होता है। पद, ध्वनि और वाक्य के बीच की संयोजन कड़ी है, क्योंकि उसमें उच्चारण और सार्थकता दोनों का योग रहता है किन्तु न तो ध्वनि की तरह वह केवल उच्चारण है और न वाक्य की तरह पूर्णतः सार्थक।

डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने ध्वनि, पद वाक्य और वाक्य के सत्, चित् और आनन्द रूपों में स्वीकार करते हुए कहा है- ध्वनि, भाषा का शारीरिक तत्त्व, प्राकृतिक तत्त्व की प्रधानता के कारण प्रकृति के तुल्य 'सत्' है। पद में शारीरिक और मानसिक दोनों तत्त्व हैं, सत् के साथ चित् भी है, अतः आनन्द या 'सच्चिदानन्द' रूप है की पूर्ण प्रधानता के कारण अभिव्यक्ति रूप है, अतः आनन्द या 'सच्चिदानन्द' रूप है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी वाक्य की परिभाषा की है। ऐसी कुछ परिभाषाएँ उद्ध त हैं।

डॉ. जाल्मन दीमशित्स ने 'हिन्दी व्याकरण' में कहा है-''वाक्य वाक्-क्रिया की एक समग्र इकाई के नाते वाक्य के लिए लाक्षणिक है, विधेयता, प्रकारता तथा अनुतान में पूणता।''

अरस्तु के अनुसार "A sentence is a composite significant sound, of which certain parts of themselves signify themselves, for every sentence is composed from nouns and verbs, but there may be a sentence without verb." ''वाक्य सार्थक ध्वनियों का समूह है, जिससे किसी भाव की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक वाक्य संज्ञा और क्रिया से बनता है, किन्तु क्रिया के बिना भी वाक्य रचना हो सकती है।

भाषा की इकाई के रूप में वाक्य

भाषा की विभिन्न इकाइयों में वाक्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है। इसकी प्रमुखता को रेखांकित करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों पर विचार किया जा सकता है-

(क) भाषा की प्रथम इकाई

प्राचीन भारतीय भाषा-चिन्तन के आधार पर ध्वनि भाषा की लघुतम इकाई थी। आधुनिक भाषा-चिन्तन में भावाभिव्यक्ति को सर्वाधिक महत्त्व देने के कारण वाक्य भाषा की प्रथम इकाई सिद्ध हुआ है। भाषा को भावभिव्यक्ति का साधन कहते हैं, अतः उक्त विचार तर्कसंगत लगता है। बच्चा भाषा-प्रयोग के प्रारम्भिक चरण में वाक्य का ही प्रयोग करता है। ऐसे क्षण बच्चे के मन में विचार-प्रवाह चलता रहता है। प्रारम्भ में इस विचार-प्रवाह का वाक्यात्मक रूप मात्र एक ध्वनि के रूप में प्रकट होता है। बच्चा अपने परिवेश के निकटस्थ व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त भाषा की बहु प्रयुक्त सरल ध्वनि को अपनाता है। हिन्दी भाषी क्षेत्र का बच्चा आ, इ आदि स्वरों के पश्चात् प्रायः अल्पप्राण अघोष ओष्ठ्य या दन्त्य ''प'' और ''त'' का प्रयोग करता है। इन ध्वनियों का वाक्यात्मक रूप या अर्थ-ज्ञान प्रसंग के आधार पर जान सकते हैं; यथा-

बच्चे द्वारा प्रयुक्त ध्वनि	संदर्भ-विचार	वाक्यात्मक रूप
''आ'	भूख लगने पर	आओ, भूख लगी है, दूध दे दो।
''त''	आग के पास	यह बहुत गर्म है।
''प''	बिस्तर गीला करने पर	बिस्तर गीला हो गया है।

यहाँ बच्चे की ध्वनि का वाक्यात्मक स्वरूप श्रोता की मानसिक परिकल्पना पर आधारित होता है। जो श्रोता ''ध्वनि'' के संदर्भ से पूरी तरह विज्ञ होता है। वह उसका वाक्यात्मक रूप पूरी तरह समझ जाता है। संदर्भ-ज्ञान के अभाव में बच्चे के मन का विचार या ध्वनि का वाक्यात्मक रूप समझना असम्भव हो सकता है। इस प्रकार वाक्य का यह रूप अस्पष्ट होता है, किन्तु संदर्भ से जुड़ जाने पर सहज ज्ञान हो सकता है।

बुद्धि-विकास क्रम में बच्चा भाषा-अर्जन के माध्यम से शब्दों का प्रयोग करने लगता है। उसके उच्चारण की विशेष प्रक्रिया में भी वाक्यात्मक रूप छिपा होता है, जो संदर्भ से पता लग जाता है; यथा-

बच्चे का वाक्य	संदर्भ-विशेष	सामान्य वाक्य-रूप
''पा''	प्यास की स्थिति	पापा मुझे प्यास लगी है।
हप्पा	भूख की स्थिति	मुझे भूख लगी/मुझे खाना दे दो।
लोटी (रोटी)	भूख की स्थिति	मैं लोटी (रोटी) खाऊँगा।
आती	सामने हाथी होने पर	आती (हाथी) है।

जब बालक एक-एक शब्द का शुद्ध उच्चारण करने लग जाता है, तो वाक्य का एकपदीप रूप सामने आ जाता है; यथा -

बालक का वाक्य	संदर्भ-विशेष	सामान्य वाक्य-रूप
पानी	प्यास, लगने पर	मैं पानी पीऊँगा।
चाँद	लेने की इच्छा पर	मैं चाँद लूँगा।
पापा	साथ जाने की इच्छा पर	मैं पापा के साथ जाऊँगा।

(ख) भाषा की सहज इकाई

वाक्य भाषा की मूल और महत्त्वपूर्ण इकाई है। वाक्य के सहज रूप को इसके ध्वनि से शब्द, पद और वाक्य तक के विस्त त प्रयोग में देख सकते हैं। ''आ'' एक ध्वनि है, इसका प्रयोग शब्द और वाक्य के रूप में होता है; यथा-

ध्वनि	शब्द रूप	वाक्य रूप
आ	आ (जाना)	(तू) आ

बच्चा प्रायः ''आ'' के प्रयोग से भाषा सीखना शुरू करता है। बोलचाल की भाषा में एकपदीय वाक्यों-आ, जा, खा आदि का बहुल प्रयोग सहजता से किया जाता है। मानव अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाना चाहता है। भाषा की इकाई जो भाव को पूर्णता से प्रकट कर दे, वह ही मनुष्य के लिए सहज होगी। इस प्रकार पूर्ण अर्थ या भाव की अभिव्यक्ति के आधार पर वाक्य भाषा की सहज इकाई है। चॉम्स्की ने मन में स्थित वाक्य के मौन रूप को आदर्श वाक्य की संज्ञा दी है।

(ग) सार्थकता

भाषा का मुख्य उद्देश्य भावाभिव्यक्ति है। वाक्य के अतिरिक्त भाषा की किसी भी इकाई-ध्वनि (स्वन) शब्द या पद में पूर्ण और निश्चित अर्थ अभिव्यक्ति की शक्ति नहीं है। क्, च्, त् आदि स्वतंत्र स्वनों में किसी

पूर्ण भाव का ग्रहण सम्भव नहीं है। ''मधुर'' शब्द से उसके संज्ञा (मधुर गया) या विशेषण (मधुर फल) होने का ज्ञान नहीं होता है। संज्ञा होने पर मधुर क्या खाता है, कहीं जाता है, पढ़ता है या अन्य काई कार्य करता है, इसका ज्ञान नहीं होता है। इस प्रकार किसी भी शब्द से पूर्ण भाव प्रकट होना असम्भव है। पद में वाक्य रचना की व्याकरणिक योग्यता अवश्य होती है, किन्तु पूर्ण भावाभिव्यक्ति की शक्ति नहीं होती; यथा-विजय ने, सुरेन्द्र को, जा रहा है आदि से अर्थज्ञान सम्भव नहीं है।

विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य द्वारा ही सम्भव है, अतः वाक्य भाषा की स्वतंत्र और सार्थक इकाई है; यथा-

1. सदा सत्य बोलो
2. जयशंकर प्रसाद महान कवि थे।

इन वाक्यों से पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति होती है।

(घ) व्याकरणिक पूर्णता

वाक्य की व्याकरणिक पूर्णता अर्थ है-वाक्य में सभी शब्दों या पदों का अपेक्षित विधान-आधार पर प्रयोग होना; यथा-''सुनीता आम खा रही है'' वाक्य में कर्त्ता, कर्म और क्रिया पद प्रयुक्त है और सभी पद हिन्दी व्याकरण के वाक्य-सिद्धान्तानुसार व्यवस्थित हैं।

व्याकरणिक पूर्णता कभी-कभी विशेष संदर्भ से होती है। सामान्य बातचीत में और संवादात्मक शैली के लेखन में प्रायः एकपदीय वाक्यों का प्रयोग होता है। ऐसे वाक्यों का कुछ अंश लुप्त होता है। वाक्य का पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती, कोई भी लुप्तांश हो सकता है; यथा -

रमेश - जाओ
मनोज - कौन यहाँ रहेगा।
रमेश - मैं।

यहाँ बातचीत में प्रयुक्त ''जाओ'' और ''मैं'' वाक्य है। श्रोता संदर्भ के अनुसार व्याकरणिक पूर्णता प्राप्त कर लेता है -

बातचीत का वाक्य	**व्याकरणिक अनुभूत वाक्य**
जाओ	(तुम) जाओ
मैं	मैं (यहाँ रहूँगा)।

बातचीत के संदर्भ में कभी-कभी पर्याप्त विस्त त वाक्य एकपदीय रूप में प्रयुक्त होते हैं। संदर्भानुसार उनकी व्याकरणिक पूर्णता हो जाती है; यथा -

प्रभात - तुम कल सबेरे कहाँ जा रहे हो?
विभूति - हिसार और तुम कहाँ जा रहे हो?
प्रभात - कनराल।
विभूति - आशु तो दस दिन पूर्व करनाल पहुँच गया होगा?
प्रभात - हाँ।

यहाँ ''हिसार'', ''करनाल'' और ''हाँ'' एकपदीय वाक्य हैं। श्रोता इन एकपदीय वाक्यों को संदभानुसार इस प्रकार पूर्ण कर लेता है-

एकपदीय वाक्य	**व्याकरणिक अनुभूत वाक्य**
हिसार	मैं कल सबेरे हिसार जा रहा हूँ।

करनाल मैं कल सबेरे करनाल जा रहा हूँ।

हाँ हाँ! आशु दस दिन पूर्व ही करनाल पहुँच गया है।

(ङ) **वाक्य में प्रयुक्त या अप्रत्यक्ष रूप में एक क्रिया की अनिवार्यता**

पूर्ण भावाभिव्यक्ति के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कम से कम एक क्रिया का होना अनिवार्य है। भाषा की विभिन्न इकाइयों में वाक्य एकमात्र ऐसी इकाई है जिसमें उक्त विशेषता निश्चित रूप से मिलती है।

प्रत्यक्ष प्रयोग – वाक्य में क्रिया पदों का प्रयोग प्रायः प्रत्यक्ष रूप में होता है; यथा-एक क्रिया-प्रयोग-तुम जाओ। वह खाती है।

एकाधिक क्रियाओं का प्रयोग - उसने कहा कि तुम गाओ।

जब तुम आओग तब मैं चलूँगा।

अप्रत्यक्ष प्रयोग – संवादात्मक शैली के प्रयोग पर प्रायः क्रिया का अप्रत्यक्षर प्रयोग मिलता है। इस प्रकार के वाक्यों से भावाभिव्यक्ति या भाव-ग्रहण में कोई कठिनाई नहीं होती है, क्योंकि श्रोता या पाठक संदर्भानुसार वाक्य-पूर्ति कर लेता है; यथा -

प्रवीण - कौन गाएगा?

गुलशन - मैं।

यहाँ ''मैं'' के साथ ''गाऊँगा'' क्रिया का अप्रत्यक्ष प्रयोग है, जो प्रसंगानुसार ''मैं गाऊँगा'' पूरा कर लिया जाता है।

(च) **वाक्य उच्चारण एवं ग्रहण**

भावाभिव्यक्ति की सहज किन्तु विस्त त प्रक्रिया में वाक्य का ही सर्वाधिक महत्त्व है। वक्ता से श्रोता तक विचार पहुँचाने में वाक्य सेतु का कार्य करता है। मनुष्य के मन में विभिन्न विचार वाक्य के रूप में स्थित होते हैं। मनुष्य भाव प्रकट करने के लिए क्रमशः भाषा, शब्द, पद और वाक्य का चयन करता है। उपयुक्त चयन के पश्चात् उच्चारण प्रक्रिया के साथ श्रोता क्रमशः ध्वनि, शब्द, पद और वाक्य को ग्रहण करता है। श्रोता के द्वारा वाक्य-चिन्तन के पश्चात् अर्थ-ग्रहण होता है। इस पूरी प्रक्रिया में वक्ता के विचार श्रोता द्वारा ग्रहण किए गए अर्थ तक वाक्य की बलवती भूमिका होती है। इस तथ्य को इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं -

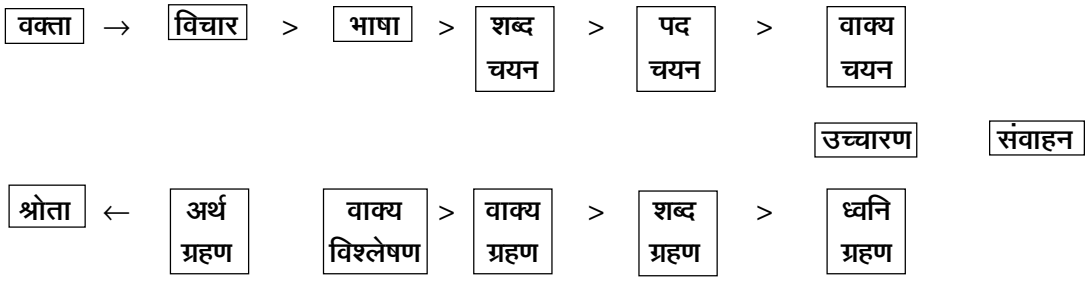

3.3 अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद

वाक्य अध्ययन में मुख्यतः उसमें व्यवस्थित विभिन्न पदों के परस्पर संबंधों का अध्ययन किया जाता है। भाषा का ध्वन्यात्मक रूप उच्चारण प्रक्रिया में सामने आता है। इसमें ध्वनि उत्पादक अंगों की भूमिका होती है। जब विभिन्न ध्वनियों के समूह में सार्थकता का विकास होता है, तो शब्द की रचना होती है। शब्द भाषा की स्वतन्त्र, लघुत्तम महत्त्वपूर्ण सार्थक इकाई है। यह सार्थकता मानसिक आधार पर विकसित होती है।शब्द जब व्याकरणिक

योग्यता पा लेता है, तो उसे पद की संज्ञा दी जाती है। व्याकरणिक योग्यता का अर्थ है-वाक्य बनाने की क्षमता। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जब शब्द वाक्य में स्थान पा लेता है, तो उसे पद कहते हैं। जिस प्रकार अकेला व्यक्ति या भीड़ में अकेला व्यक्ति आम आदमी होता है, वह स्वतंत्र, विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न होते हुए भी अकेला होता है। किन्तु किसी सम्बन्धी या परिचित से मिलते ही पद पा लेता है; यथा-मनोज भीड़ में अकेला था, जैसे ही उसका बेटा मिला, वैसे ही वह 'पिता' के पद पर प्रतिष्ठित हो गया। इसी प्रकार शब्द को जैसे ही वाक्य में स्थान मिलता है वैसे ही पद बन जाता है।

पद-रचना में शारीरिक और मानसिक दोनों पक्ष काम करते हैं। पद का उच्चारणात्मक या लिखित रूप शारीरिक है, क्योंकि इसे सुन या देख सकते हैं। सार्थकता मानसिक पक्ष है, क्योंकि इन्हें इन्द्रियों से ग्रहन न करके मानसिक रूप से अनुभव किया जाता है।

पद यदि भाषा की व्याकरणिक योग्यता प्राप्त इकाई है, तो वाक्य भाषा की पूर्ण सार्थक इकाई है। पद-अध्ययन में पदों की रचना के अन्तर्गत इनमें विभिन्न व्याकरणिक कोटियाँ-लिंग, वचन, पुरुष, कारक और काल आदि के प्रयोग-पद्धति का अध्ययन किया जाता है, तो वाक्य में विभिन्न पदों की स्थिति, स्वरूप और योग का अध्ययन किया जाता है।

यह पूर्ण स्पष्ट तथ्य है कि वाक्य की पूर्णता पर ही पूर्ण अर्थ का ज्ञान संभव होता है। यथा-'वह अपने घर जा रहा है' में 'व' ध्वनि, 'व' वर्ण 'वह' शब्द या वह (वाक्य-प्रयुक्त) पद, 'वह अपने घर जा रहा है' विभिन्न पद-पद्यांशों के प्रयोग से स्पष्ट अर्थ का बोध नहीं होता है। यदि इस रचना के अन्त में 'था' का प्रयोग कर दें 'वह अपने घर जा रहा था' तो भूतकालिक भाव प्रकट होगा; यदि 'होगा' का प्रयोग कर दें, तो रचना-'वह अपने घर जा रहा होगा' भविष्यत् काल का भावबोध होगा। इस प्रकार 'है' के प्रयोग से 'वह अपने घर जा रहा है' वर्तमान काल का स्पष्ट भावबोध होता है।

वाक्य और पद दोनों भाषा की महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ हैं। दोनों के स्वरूप और उपयोगिता से महत्त्व प्रतिपादित किया जा सकता है। दोनों इकाइयों के महत्त्व को तुलनात्मक द ष्टि से परखने के संदर्भ से दो सिद्धान्त सामने आये हैं। (क) अभिहितान्वयवाद, (ख) अन्विताभिधानवाद।

(क) अभिहितान्वयवाद

भावाभिव्यक्ति संदर्भ में पद को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व देने के आधार पर अभिहितान्वयवाद सिद्धान्त का विकास हुआ है। पद को महत्त्व देने के आधार पर इसे पदवाद भी कह सकते हैं। इस वर्ग के विद्वानों की मान्यता है कि पदों के अन्वित प्रयोग में स्पष्ट अभिव्यक्ति और भाषा का भास्वर स्वरूप होता है। विभिन्न पदों में अन्विति और उसका प्रयोग-शक्ति विभक्तियुक्त शब्दों या पदों में होती है। पाणिनि ने 'सुप्तिउड़न पदम्' सूम से इस तथ्य को स्पष्ट किया है। सुप् (संज्ञा-विभक्ति) और विड्. (क्रिया विभक्ति) के योग से पद की रचना होती है। बिना पद बने शब्द का प्रयोग भाषा में संभव नहीं है।

वाक्य-रचना में दो या दो से अधिक पदों की भूमिका होती है। इनमें पदों के आपस में जुड़ने या अन्विति का महत्त्व होता है; यथा -

(अ) वह गया।

(ब) वह जा रहा है।

प्रथम वाक्य में 'वह' सर्वनाम, एकवचन, अन्य पुरुष और पुल्लिंग (वैसे उभयलिंगी) व्याकरणिक योग्यता प्राप्त पद है। दूसरा एकवचन सर्वपुरुष, पुल्लिंग और भूतकालिक व्याकरणिक योग्यता प्राप्त पद है। इन दोनों पदों की अन्विति से पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति और वाक्य-रचना हुई है।

इसी प्रकार दूसरे वाक्य में 'वह' पद के साथ 'जा' मूल क्रिया के साथ रहा (रहना) है। (होना) सहायक

क्रियाओं से रचित 'जा रहा है' एक वचन है, अन्य पुरुष, पुल्लिंग और वर्तमान कालिक पद का प्रयोग हुआ है।

वाक्य से अधिक पद का महत्त्व स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि वाक्य चाहे एकपदीय हो या बहुपदीय, उसमें अन्विति अनिवार्य है। यह अन्वति पद की विशेषता है और यह ही भावाभिव्यक्ति का आधार है। उदाहरणार्थ -

(अ) विनोद - ''तुम अपने पिताजी के साथ कल कहाँ जा रहे थे।''

(ब) रमेश - ''दिल्ली।''

यहाँ प्रथम वाक्य कई पदों के योग से बने होने पर भी सभी में नियमानुसार अन्वति है, अर्थात् सभी पदों में ''अनुकूल व्याकरणिक योग्यता है।

द्वितीय वाक्य एकपदीय है। इसमें भी परोक्ष रूप से व्याकरणिक योग्यता का आभास होना स्वाभाविक है। यदि एकपदीय वाक्य में व्याकरणिक योग्यता का अभाव हो जाए अर्थाभिव्यक्ति असंभव होगी। यहाँ 'दिल्ली' एकपदीय वाक्य संवादात्मक स्थिति में सामने आया है। इसी आधार पर एक पद से पूरा वाक्य (प्रयत्नलाघव आधार पर) प्रस्तुत किया जाता है-

(अ) विनोद - ''तुम अपने पिताजी के साथ कल कहाँ जा रहे थे?''

(ब) रमेश - ''दिल्ली'' (मैं अपने पिताजी के साथ कल दिल्ली जा रहा था।)

इस प्रकार पद के महत्त्व का स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि बह्म के रूप में महत्ता प्राप्त इकाई शब्द जब तक व्याकरणिक योग्यता प्राप्त कर पद नहीं बनता तब तक पूर्ण भावाभिव्यक्ति में प्रयुक्त नहीं हो पाता है।

पद के विविध रूपों में व्याकरणिक योग्यता और अन्य पदों से अन्विति से इसका महत्त्व स्पष्ट होता है। पद की संरचना को देखकर ज्ञात होता है। कि कुछ पद शून्य प्रत्यय आधार पर निर्मित होते हैं, यथा - 'विनोद जा रहा है' में 'विनोद' पद शून्य प्रत्यय आधारित है। अर्थात् शब्द के मूल रूप में ही वाक्य में प्रयुक्त है। ऊपर एकपदीय वाक्य 'दिल्ली' भी इसी प्रकार का है।

दूसरे प्रकार के पदों में इत्यादि का प्रयोग होता है; यथा- 'वह कार से जा रहा है' में 'कार से' में 'से' कारक चिह्न का प्रयोग है, तो 'जा रहा है' में 'जा' (जाना) मूल क्रिया के साथ 'रहा' और 'है' सहायक क्रियाओं का प्रयोग है।

इस प्रकार विभिन्न पदों के योग से ही वाक्य-रचना संभव होने के आधार पर पद को अधिक महत्त्व दिया गया है।

(ख) अन्वितामिधानवाद

भाषा में वाक्य को सर्वाधिक महत्त्व देने के आधार पर अन्वितामिधानवाद सामने आया है। इसी आधार पर इसे 'वाक्यवाद' की भी संज्ञा दे सकते हैं। इस मान्यता के समर्थक भावाभिव्यक्ति में पद की अलग सत्ता ही नहीं मानते हैं। आधुनिक भाषाविद् वाक्यवाद के ही समर्थक हैं संस्कृत के चर्चित भाषाविद् 'भत हरि' ने वाक्य को महत्त्व देते हुए लिखा है-

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्वयवा न च।
वाक्यात् पदानामत्यन्त प्रविवेका न कश्चन।
-वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड-73)

अर्थात् जिस प्रकार वर्णों में अवयव नहीं होते हैं, पदों में वर्ण नहीं होते हैं, उसी प्रकार वाक्य में पद नहीं होते हैं। इस आधार पर यह स्पष्ट किया गया है कि वाक्य की ही सत्ता वास्तविक है, शेष वर्ण और पद काल्पनिक या अवास्तविक हैं।

इस सिद्धान्त की उत्पत्ति भाषा के उद्देश्य, पूर्ण भावाभिव्यक्ति के आधार पर हुई है। यह निर्विवाद सत्य है कि पूर्ण भावभिव्यक्ति वाक्य के आधार पर संभव है, भाषा की अन्य किसी इकाई से पूर्ण भाव प्रकट होना असंभव है; यथा -

'ग' (ध्वनि)

'ग' (वर्ण या अक्षर)

'गोपाल' (शब्द)

'गोपाल घर' (दो पद)

'गोपाल घर जा' (अधूरा वाक्य)

'गोपाल घर जा रहा' (वाक्य)

वाक्य रचना की सामान्य प्रक्रिया में ध्वनि, वर्ण, शब्द, पद और पदों के समूह से पूर्ण अर्थ तब तक नहीं प्रकट होता जब तक 'जा रहा है' क्रिया पद की समामिका क्रिया 'है' का प्रयोग नहीं होता है। समापिका क्रिया 'है' प्रयोग से वाक्य पूरा हुआ और पूर्ण अर्थ प्रकट होता है।

वाक्य के विभाजन से पद का स्वरूप सामने आता है, किन्तु पूर्ण सार्थकता का भाव पद से प्रकट होना असंभव है। वाक्य में विभिन्न पदों की अनुकूल अन्विति होती है। यह वाक्य की एक प्रमुख विशेषता है।

अन्वितामिधानवाद के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कह सकते हैं कि भाषा की प्रथम इकाई वाक्य है। भाषा की विभिन्न इकाइयों ध्वनि, वर्ण, अक्षर, शब्द, पद और वाक्य में प्रथम इकाई वाक्य ही है। इसका सबल प्रमाण यह है कि बच्चा जब प्रारंभ में भाषा का प्रयोग करता है तो वाक्य का ही प्रयोग करता है। प्रथम द ष्टि में उसका उच्चारण ध्वनि होता है, किन्तु चिन्तन करने पर पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य के रूप में सामने आता है।

बच्चे द्वारा उच्चारण	**संदर्भ**	**पूर्ण रूप**
प्	गुब्बारे देख हाथ उठाकर	(पूर्ण सार्थक अभिव्यक्ति गुब्बारा दो)
आती (अशुद्ध शब्द)	हाथी पर कुछ लोगों को बैठा देखकर हाथ उठाकर बोलने पर	(हाथी पर बैठूँगा।)
टॉफी (शब्द)	टॉफी को ललचाई आँखों से देखकर	(मुझे टॉफी दे दो।)
घोड़े पर (पद)	घोड़े पर बच्चा बैठा देखकर	(घोड़े पर बैठा दो।)

एक पदीय वाक्य को भ्रमवंश पद वर्ग में चर्चा करना उचित नहीं है। संवादात्मक संदर्भों में एकपदीय वाक्य पूर्ण सार्थक होते हैं। पूर्ण प्रसंगानुसार श्रोता या पाठक को स्वतः पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है; यथा-

मनोहर - ''तुम कल लखनऊ जा रही हो?''

शीला - ''हाँ।''

यहाँ 'हाँ' एकपदीय वाक्य की प्रसंग आधार पर अभिव्यक्ति होती है-''हाँ ! मैं लखनऊ जा रही हूँ।''

आधुनिक भाषा-विज्ञान में पूर्ण सार्थक इकाई के रूप में वाक्य को मान्यता मिलने का कारण इसे अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व प्राप्त है। यह सच है कि भाषा की उद्देश्यपूर्ण भावाभिव्यक्ति है। इसलिए वाक्य का महत्त्व स्वतः स्पष्ट है।

भाषा की समस्त इकाइयों का अपना-अपना महत्त्व है। इनमें से किसी भी इकाई की अपेक्षा नहीं कर सकते हैं। ध्वनि यदि भाषा की लघुत्तम इकाई है, तो शब्द की सार्थकता उसकी पहचान है। इसी प्रकार यदि पद व्याकरणिक योग्यता प्रापत भाषा की प्रमुख इकाई, तो पूर्ण सार्थकता वाक्य की अपनी पहचान है। वाक्य-रचना में पद की बलवती भूमिका है तो पूर्ण सार्थकता की द ष्टि से वाक्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है।

3.4 निकटस्थ अवयव

निकटस्थ अवयक के लिए ''सन्निहित अवयव'' नाम भी प्रयुक्त होता है। वाक्य की रचना एक या एकाधिक पदों में होती है। वाक्य में एकाधिक पद प्रयुक्त हों, तो अर्थज्ञान के लिए उनसे सम्बन्धित दो बातों पर ध्यान देते हैं।

(क) वाक्य में प्रयुक्त शब्द किन वर्गों के हैं।

(ख) वाक्य में शब्दों के क्रमों का विवेचन।

शब्द या पद के निकटस्थ अवयय जानने के लिए उसके यथासम्भव खण्ड करते हैं। यदि शब्द के दो खण्ड हों, तो निकटस्थ अवयव की पहचान सरल होती है। इसमें एक दूसरे की निकटता स्वयं सिद्ध है; यथा - सफलता = सफल + ता। यदि पद के तीन खण्ड हो सकते हैं, तो उनकी आपसी निकटता विचारणीय है; यथा-अभारतीय = अ + भारत + ईय। यहाँ भारत के साथ उपसर्ग 'अ' और प्रत्यय 'ईय' प्रयुक्त है। इनके क्रमिक प्रयोग से इनकी निकटता का ज्ञान होगा। 'भारत' के साथ 'ईय' प्रत्यय का प्रारम्भिक प्रयोग सम्भव है- भारत + ईय = भारतीय, किन्तु ''भारत'' के साथ उपसर्ग 'अ' का प्रारम्भिक प्रयोग सम्भव नहीं है। 'भारतीय' संरचना के बाद 'अ' का प्रयोग सम्भव है। इस प्रकार भारत और ईय निकटस्थ अवयव हैं -

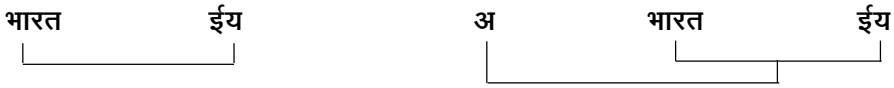

वाक्य के संदर्भ में विभिन्न पदों की निकटता विशेष महत्त्वपूर्ण होती है। उदाहरणार्थ-

उसने **भागते हुए** चोर को पकड़ लिया।

इस वाक्य में 'भागते हुए' पद की भिन्न-भिन्न स्थितियों के कारण अर्थ भिन्नता आ गई है। यदि 'भागते हुए' पद विशेषण के रूप में प्रयुक्त है, तो 'चोर' पद का निकटस्थ अवयव होगा। इससे अर्थबोध होगा कि 'चोर भाग रहा था'। यदि 'भागते हुए' क्रिया विशेषण है (पकड़ लिया की विशेषता प्रकट कर रहा है), तो उसने का निकटस्थ अवयव होगा। इसका अर्थ होगा - ''उसने भागकर पकड़ लिया।'' निकटस्थ अवयव विशेषण करते समय मुख्यतः दो बातों का ध्यान रखना चाहिए -

(i) निकटस्थ अवयव - विश्लेषण अर्थ के अनुकूल हो।

(ii) निकटस्थ अवयव - विश्लेषण भाषा की व्यवस्था के अनुकूल हो।

वाक्य के निकटस्थ अवयव को रेखांकन से भी प्रकट कर सकते हैं; यथा-''मेरा पत्र तुम्हें मिल गया होगा'' का रेखांकन इस प्रकार होगा-

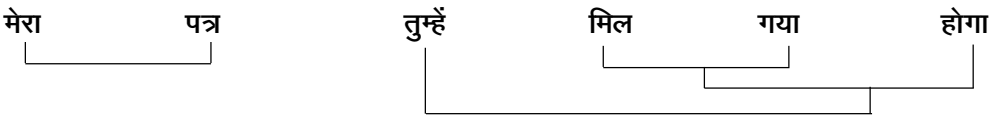

अर्थ – बोध की द ष्टि से वाक्य के निकटस्थ अवयवों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इनकी उन्नति से ही उपयुक्त अर्थ का बोध सम्भव है। वाक्य में निकटस्थ अवयवों की व्यवस्था मुख्यतः पदक्रम, विशेषण-विशेष्य, योग्यता और बलाघात आदि के आधार पर की जाती है। वाक्य के ''निकटस्थ अवयव'' को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं।

''अर्थ की द ष्टि से वाक्य में प्रयुक्त जो पद एक-दूसरे के निकट होते हैं, उन्हें वाक्य के निकटस्थ अवयव कहते हैं।''

1. **पद क्रम** – वाक्य की सार्थकता पदक्रम पर आधारित होती है। वाक्य के पदक्रम को उपयुक्त रूप में रखने पर वाक्य के निकटस्थ अवयवों की व्यवस्था बिगड़ जाती है; यथा-रूमा पत्र ने रजनीश को लिखा। यहाँ हिन्दी पदक्रम के अनुसार कर्ता, कर्म क्रिया का क्रमशः प्रयोग होना चाहिए। उक्त वाक्य में 'रूमा ने' कर्ता, 'पत्र' कर्म और 'लिखा' क्रिया पद का क्रमशः प्रयोग न होने से अशुद्ध वाक्य-रूप हुआ। इसका शुद्ध पद क्रम है-''रूमा ने रजनीश को पत्र लिखा'' इसमें 'पत्र' और 'लिखा' दोनों निकटस्थ अवयव हैं, जो शुद्ध पदक्रम में एक-दूसरे के निकट आ गए।

2. **विशेषण-विशेष्य** – भाषा में विशेष्य का एक साथ प्रयोग होता है। इस प्रकार दोनों शब्दों के वाक्य में एक साथ प्रयोग से उनकी निकटता और उनके निकटस्थ अवयव होने की बात भी सिद्ध होती है; यथा-यह सुन्दर फूल है। यहाँ 'सुन्दर' विशेषण और 'फूल' वाक्य में निकटस्थ अवयव हैं। हिन्दी में कभी एक विशेष्य के साथ एक विशेषण प्रयुक्त होता है, तो कभी दो विशेष्य के साथ एक ही विशेषण शब्द प्रयुक्त होता है; यथा-''सुन्दर फूल है'', ''सुन्दर फूल और फल है।'' यहाँ विशेषण-विशेष्य के अनुसार निकटस्थ अवयव इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं-

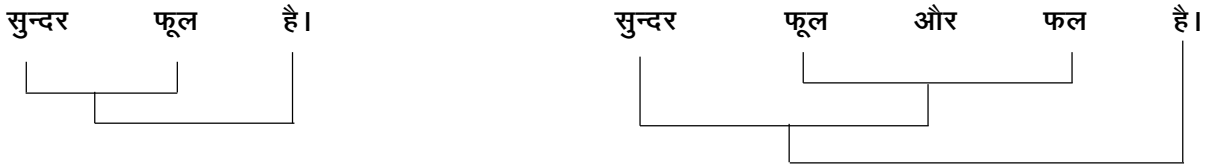

3. **योग्यता** – वाक्य के पदों में परस्पर अन्वय की योग्यता होनी चाहिए। जब वाक्य के अवयव अर्थ की द ष्टि से ऐसी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, तब वाक्य के निकटस्थ अवयव अपने सही रूप में व्यवस्थित होते हैं। यदि वाक्य में यह योग्यता न होगी, तो उसके निकटस्थ अवयव भी बिखरे हुए होंगे; यथा - ''सफाई कर्मचारी को दस पैसे देकर जरूर जाएँ।'' इस वाक्य में अन्वय की योग्यता न होने के कारण 'जरूर' और 'देकर' निकटस्थ अवयव बिखर गए, इससे विपरीत अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। मूल अर्थ का सम्बन्ध पैसे जरूर देने से था, योग्यता अभाव से निकटस्थ अवयव के अनुसार वाक्य होगा-सफाई कर्मचारी को दस पैसे देकर जाएँ। इसी प्रकार ''उसने एक दोहे की पुस्तक दी'' में निकटस्थ अवयव ठीक नहीं हैं। एक दोहे की पुस्तक नहीं हो सकती। पुस्तक का निकटस्थ अवयव एक है-उसने दोहे की एक पुस्तक दी।

4. **बलाघात** – वाक्य के किसी पद विशेष पर पड़ने वाले बलाघात के आधार पर भी वाक्य के निकटस्थ अवयव का निर्धारण सम्भव है। निकटस्थ अवयव के निर्धारण से सही अर्थ की अभिव्यक्ति होती है; यथा -

निश्चित और सीमित पदों में इस वाक्य में निकटस्थ अवयव के बदलने पर अर्थ भिन्न हो जाता है। प्रथम वाक्य में 'जाओ' और 'मत' निकटस्थ अवयव हैं, जिससे 'न जाने' और बैठने की बात प्रकट होती है, जब

'मत' और 'बैठो' निकटस्थ अवयव होते हैं, तो 'न बैठने' और 'चले जाने' का भाव प्रकट होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बलाघात के आधार पर निकटस्थ अवयव का निर्धारण सम्भव होता है।

5. **अनुवाद –** एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने के लिए दोनों भाषाओं की वाक्य संरचना और उनके निकटस्थ अवयव का ज्ञान अनिवार्य होता है। यदि हिन्दी वाक्य ''मैं आम खा रहा हूँ'' का अंग्रेजी अनुवाद करना हो, तो अंग्रेजी वाक्य के निकटस्थ अवयवों का ज्ञान अनिवार्य है। ऐसा न होने पर वाक्य का अनुवाद अशुद्ध हो सकता है -

I mango eating am - **इसका शुद्ध रूप होगा** - I am eating mango.

मुहावरे, कहावतो के प्रयोग तथा भावानुवाद में निकटस्थ अवयव का ज्ञान अनिवार्य है; यथा-

हिन्दी	अंग्रेजी
उसको बुखार चढ़ा है -	He is laid up with fever.
मैं कोई कसर बाकी नहीं रखूँगी -	I will leave no stone unturned.

निकटस्थ अवयव अध्ययन की उपयोगिता

निकटस्थ अवयव के ज्ञान से वाक्य का शुद्ध उच्चारण सम्भव होता है। इसके ज्ञान के अभाव में वाक्य का शुद्ध अर्थ ग्रहण भी असम्भव हो सकता है; यथा- ''रोको मत जाने दो'' वाक्य के उच्चारण में यदि उपयुक्त निकटस्थ अवयव का आधार नहीं होगा तो सुनने वाले को ''रोको मत जाने दो'' का ''रोको मत'', ''जाने दो'' का आभास हो सकता है, और ''रोको मत, जाने दो का ''रोको, मत जाने दो'' का आभास हो सकता है। निकटस्थ अवयव के ज्ञान से वाक्य के शुद्ध पदक्रम-प्रयोग का मार्ग खुलता है; यथा-मैं घर जा रहा हूँ वाक्य में यदि क्रिया को आधार बनाकर निकटस्थ अवयव विश्लेषण करें, तो दाहिने से बाएँ रेखांकन करते हैं-

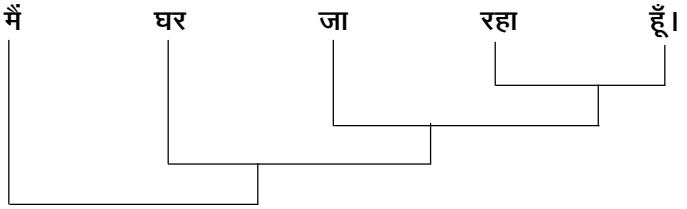

निकटस्थ अवयव के अध्ययन से वाक्य के विभिन्न पदों के सम्बन्धों की गहराई का ज्ञान होता है; यथा -

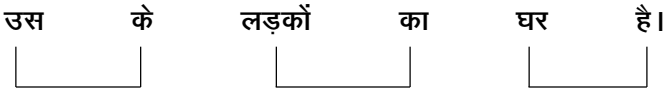

इस वाक्य में 'उस' और 'के', 'लड़कों' और 'का' के स्थिति के अनुसार निकट सम्बन्ध है अतः इसे सन्निहित घटक कहते हैं। जो स्थिति की द ष्टि से एक-दूसरे से अलग, किन्तु आपस में सम्बन्धित हों, उन्हें **असन्नत घटक** कहते हैं; यथा - 'उस' और 'लड़कों'।

सीमाएँ – जब एक वाक्य के स्थान पर अन्य वाक्य स्थापना कर दें, तो निकटस्थ अवयव समान होंगे, कहा नहीं जा सकता है; यथा -

(i) अशोक प्रदीप को मूर्ख लगता है।

(ii) अशोक प्रदीप को मूर्ख समझता है।

दोनों वाक्य समान लगते हैं, किन्तु पहले वाक्य में अशोक मूर्ख है, तो दूसरे वाक्य में प्रदीप। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण -

(i) मैंने तुम्हें काम करने का आदेश दिया।

(ii) मैंने तुम्हें काम करने का वचन दिया।

एक से अधिक अर्थ देने वाले वाक्यों का विश्लेषण भी कई प्रकार से होता है; यथा-

(i)

(ii)

इन दोनों वाक्यों में पूर्व रेखांकन 'शुद्ध दूध' और 'प्राचीन दुकान' का बोध होता है, तो उत्तरवर्ती रेखांकन से 'शुद्ध गाय' और 'प्राचीन रेवड़ी' का।

3.5 वाक्य की गहन संरचना और बाह्य संरचना

वाक्य भाषा की सहज इकाई है। वाक्य में शब्द किसी न किसी रूप में अवश्य जुड़े होते हैं। वाक्य की इस व्यवस्था को केन्द्रिक रूप कहते हैं। पदों के आधार पर हुई वाक्य की समस्त रचनाओं को गहन और बाह्य दो संरचना-भागों में विभक्त करते हैं। ये व्यवस्थाएँ सभी भाषाओं में मिलती हैं।

गहन और बाह्य कल्पना नई नहीं है। संस्कृत व्याकरण के सामाजिक संदर्भ में ऐसी रचनाएँ स्पष्ट रूप से मिलती हैं। इनसे सम्बन्धित रचना-प्रक्रिया को समास-विग्रह से समझ सकते हैं। 'पीताम्बर' शब्द के दो विग्रह सम्भव हैं। प्रथम, पीत अम्बर (पीला कपड़ा) कर्मधारण समास। यह गहन संरचना है। द्वितीय, वह जो पीत अम्बर (पीला कपड़ा) धारण करता है। अर्थात् कृष्ण-बहुब्रीहि समास। इसमें दोनों पदों से भिन्न (बाहर से) अर्थ लगाया गया है। अतः बाह्य रचना है।

1. गहन संरचना
(Deep Structure)

इसको अन्तः केन्द्रिक, अन्तः मुखी संरचना भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसके लिए (Deep Structure) नाम भी चलता है। वाक्य के घटक शब्दों या अनुक्रमिक रूप से लघुत्तर घटकों में से किसी एक से समानार्थी या निकट समानार्थी होना गहन रचना है, अर्थात् जब किसी वाक्य का पद-समूह उतना ही काम करता है जितना कि वाक्य के एक या अधिक निकटस्थ अवयव करते हैं, तो उसे गहन (वाक्य) रचना कहेंगे। ऐसे वाक्यों का केन्द्र वाक्य के मध्य होता है; यथा -

''यह फूल है'' और ''यह सुन्दर फूल है'' दोनों वाक्य स्तर की द ष्टि से समान हैं। इस प्रकार 'सुन्दर फूल' के स्थान पर 'फूल' का प्रयोग हो सकता है, जिसे रचना केन्द्र मान सकते हैं। यहाँ 'सुन्दर' और 'फूल' दो पदों से बने पद-समूह का गठन मात्र एक पद 'फूल' के समान है। अतः यह वाक्य गहन होगा।

गहन वाक्यों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं -

(क) **आश्रित** – जब किसी वाक्य में एक पद मुख्य (केन्द्र) हो और दूसरा पद किसी न किसी प्रकार उसकी विशेषता प्रकट करता हो; यथा-''यह सुन्दर लता है'', ''वह बड़ा व क्ष है।'' इन वाक्यों में 'लता' और 'व क्ष' केन्द्र हैं, उनके साथ प्रयुक्त पद 'सुन्दर' और 'बड़ा' विशेषण हैं, जिनसे वाक्य-केन्द्र की विशेषता प्रकट होती हैं। ऐसे वाक्यों का भाषा में विशेष महत्त्व है।

(ख) **समानाधिकरण** – जब गहन वाक्यों में दो पद और, तथा, व आदि संयोजक शब्दों में से किसी एक से जुड़े हों तो योजक समानाधिकरण गहन रचना कहेंगे; यथा-''फूल और फल लाए हो'', ''शेर और भालू भाग रहे हैं।''

जब गहन वाक्य का एक पद दूसरे पद की व्याख्या करता है, तो उसे व्याख्यात्मक समानाधिकरण वाक्य कहेंगे; यथा - ''वे देवराज प्रयाग गए हैं'', ''तुम देवाधिदेव इन्द्र की पूजा करो।''

गहन वाक्यों को पदों की व्यवस्था के अनुसार निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

1.	विशेषण + संज्ञा	श्वेत वस्त्र,	काली कलम।
2.	क्रिया विशेषण + क्रिया	खूब दौड़े,	खूब गाया।
3.	क्रिया विशेषण + विशेषण	अति सुन्दर,	बहुत अच्छा।
4.	संज्ञा + विशेषण उपवाक्य	-	पुष्प, जो खिल गया था। फल जो अधपका था।
5.	सर्वनाम + विशेषण उपवाक्य	-	वह, जो भागा जा रहा था।
6.	सर्वनाम + पूर्व सर्गात्मक वाक्यांश	-	वे नाव पर, वह छत पर।
7.	क्रिया + क्रिया विशेषण + उपवाक्य	-	जाओ, जहाँ कार खड़ी है। गया, जहाँ फूल खिले हैं।
8.	संज्ञा + संयोजक + संज्ञा	-	विजय और वेद जी हैं। प्रशांत और मयंक गए।

2. बाह्य संरचना

(Exocentric Structure)

इसे बहिष्केन्द्रिक, बहिर्मुखी संरचना भी कहते हैं। वाक्य के घटक शब्दों या अनुक्रमिक रूप से लघुत्तर घटकों में से किसी एक से समानार्थी या निकट समानार्थी न हों, अर्थात् जब वाक्य का अंश अपने निकटतम अवयव के अनुरूप कार्य न कर सके तो बाह्य संरचना होती है; यथा- ''कलम से लिखो'' वाक्य में 'कलम से' कार्य न तो मात्र 'कलम से' पूरा होता है और न ही 'से'। यहाँ 'कलम' और 'से' दोनों का प्रयोग की अनिवार्यता अनुभव होती है। यदि इनमें से किसी एक को छोड़ दें, तो वाक्य अपूर्ण रहेगा। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि 'कलम' और 'स' अतः यह बाह्य संरचना है।

बाह्य संरचना के रूपों को ध्यान में रखकर निम्नलिखित वर्ग बना सकते हैं -

1.	संज्ञा/सर्वनाम + परसर्ग	-	स्नेह ने उस को
2.	विशेषण + संज्ञा (दोनों मिलकर) (विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति करें)	-	लम्बोदर (लम्बा + उदर > गणेश), नीलकंठ (नील + कंठ > शिव)

विधेयात्मक –

(क) कर्ता + कर्म + सकर्मक क्रिया - राधा पानी पीती है।
शशांक अंगूर देखता है।

(ख) कर्ता + अकर्मक क्रिया - व द्ध सोता है, वह दौड़ता है।

(ग) कर्ता + पूरक + योजी क्रिया - सागर चालक है।

हिन्दी में बाह्य संरचना, ऐसे सामाजिक शब्दों में देख सकते हैं, जिनका न तो पूर्व पद प्रधान होता है, और न ही उत्तर पद। इसमें अन्य पद की प्रधानता होती है अर्थात् ऐसे शब्दों का अर्थ बाहरी तल से किया जाता है; यथा-लम्बोदार-(लम्बा उदर)। जब लम्बा और उदर दोनों पद गौण होते हैं, तो इसका अर्थ होता है-''लम्बा है उदर जिसका अर्थात् गणेश जी।'' इस विशेष अर्थ की अनुभूति के लिए दोनों पदों की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है। इसी प्रकार नीलकंठ, पीताम्बर, दशानन आदि में बाह्य संरचना है।

हिन्दी में ऐसे वाक्य प्रस्तुत होते हैं, जिनका अर्थ व्यंजना या लक्षणा शब्द-शक्ति से निकालते हैं। यहाँ अर्थ किसी शब्द या पद में निहित न होकर वाक्य के बाहरी तल से प्रकट होता है; यथा-

मेरा घर नदी पर है। (नदी के तट पर है।)

मेरा स्कूल सड़क पर है। (सड़क के किनारे है।)

सभी भाषाओं में गहन रचना बाह्य रचना से अधिक होती है, किन्तु सीमित प्रयोग होने पर भी बाह्य रचना का अपना महत्त्व है।

गहन संरचना का मूलाधार है। गहन संरचना अर्थ अभिव्यक्ति करती है, तो बाह्य संरचना उसे विशेष रूप देती है। बाह्य संरचना से अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना शब्द शक्तियों के माध्यम से कई अर्थ निकाले जाते हैं; यथा-''अँधेरा हो गया'' वाक्य से संदर्भ-अनुसार कई अर्थ निकलते हैं-दिन समाप्त के संदर्भ में 'रात्री', आदमी के सामने विषम परिस्थिति हो तो उसके लिए कुछ भी समझ में न आना'' आदि। इसी प्रकार 'घण्टी बजने' के अनेक अर्थ हैं; यथा-स्कूल जाते बच्चे के लिए पढ़ाई का समय, पढ़ते समय से छुट्टी का समय, मन्दिर में पूजा का समय, मरणासन्न व्यक्ति के लिए मौत।

प्रत्येक भाषा में गहन तथा बाह्य संरचना भिन्न-भिन्न प्रकार से होती है। अंगेजी में I ran (मैं दौड़ा) बाह्य संरचना है। सर्वनाम और क्रिया के आधार पर बने इस वाक्य के मात्र क्रिया या मात्र सर्वनाम पद से भाव-अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। अंग्रेजी में भी हिन्दी के समान केवल क्रिया-पद से बाह्य समानार्थी वाक्य बनाते हैं, किन्तु संदर्भ आधार मिलाने पर ही ऐसा सम्भव होता है। यह स्थिति सामान्यतः बातचीत में होती है; यथा-

"What are you doing there?"

"Reading"

वाक्य की आर्थी-संरचना को बाह्य संरचना से सम्बन्धित मान सकते हैं। यह अर्थ की अभिव्यक्ति करती है। गहन संरचना में व्याकरणिक घटक भी आते हैं। इससे स्पष्ट है कि गहन संरचना में भाषा के आधारभूत वाक्य होते हैं, बाह्य संरचना विशेष भावाभिव्यक्ति का आधार है।

3.6 वाक्य-रूपान्तरण के नियम

इसे वाक्य-परिवर्तन की दिशाएं भी कहते हैं। मानवीय भाषा की प्रमुख विशेषता है-उत्पादकता। मनुष्य एक ही भाव को अनेक रूपों में प्रस्तुत कर सकता है। इसी से भाषा में गतिशीलता है। विश्व की समस्त भाषाओं में सतत परिवर्तन चलता रहता है। यह परिवर्तन भाषा की विभिन्न इकाइयों के माध्यम से स्पष्ट होता है। भाषा-परिवर्तन

में वाक्य-परिवर्तन की विशेष भूमिका होती है। वाक्य के संरचनात्मक परिवर्तन से उसके प्रयोग में भी परिवर्तन होता रहता है। जब भाव की अभिव्यक्ति नए वाक्य-रूपों में और आकर्षक रूप में करने का प्रयत्न किया जाता है, तो वाक्य में परिवर्तन हो जाता है। हिन्दी वाक्यों में रूपान्तरण को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त करते हैं - साधारण रूपान्तरण, साधारणीकृत रूपान्तरण।

(क) **साधारण रूपान्तरण** – हिन्दी व्याकरण के नियमों के आधार पर निषेधात्मक, प्रश्नवाचक, विस्मयादिबोधक तथा वाच्यात्मक वाक्य रूपान्तरण इसके अन्तर्गत आते हैं। वाक्य रूपान्तरण में अर्थ पूर्ववत् रहना चाहिए; यथा -

निषेधात्मक –	वह अच्छा लड़का है	-	वह बुरा लड़का नहीं है।
प्रश्नवाचक –	यहाँ सब की मौत होगी	-	यहाँ किसी की मौत नहीं होगी?
विस्मयादिबोधक –	बहुत सुहाना मौसम है	-	क्या सुहाना मौसम है!
वाच्य –	मैं पुस्तक पढ़ता हूँ।	-	मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है।

(ख) **साधरणीकृत रूपान्तरण** – जब जटिल वाक्य को साधारण या सरल वाक्य में परिवर्ततन करते हैं, तो साधारणीकृत रूपान्तरण होता है। इस रूपान्तरण में दोनों उपवाक्यों को एक कर एक ही क्रिया का प्रयोग करते हैं; यथा -

तुम्हारी जेब में कलम है। कलम मेरी है।	>	तुम्हारी जेब में मेरी कलम है।
बच्चा रो रहा है। बच्चा उठाओ।	>	रोते हुए बच्चे को उठाओ।

मिश्र वाक्य रूपान्तरण के लिए जैसे.....जब.....तब....., ज्यों ही.....त्यों ही, आदि का प्रयोग करते हैं। वाक्य के रूपान्तरण नियमों के साथ रूपान्तरण की कुछ प्रमुख दिशाएँ इस प्रकार हैं-

1. **पदक्रम में परिवर्तन** – भाषा में नवीनता लोने के लिए वाक्य के पदक्रम में परिवर्तन करते हैं। काव्य-रचना में यह प्रक्रिया पहले से चली आ रही है, किन्तु वर्तमान समय के गद्य-लेखन और बोल-चाल में भी यह प्रव ति सशक्त रूप में सामने आ रही है। पहले विशेष्य के पूर्व विशेषण का प्रयोग होता था, किन्तु अब विशेष्य का प्रयोग विशेषण से पहले होने लगा है; यथा- ऐतिहासिक तथ्य, उत्तम बातें, दिव्य भवन आदि के स्थान पर 'तथ्य ऐतिहासिक', 'बातें उत्तम', 'भवन दिव्य' का प्रयोग होने लगा है। सामान्यतः हिन्दी में नियमानुसार कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रमशः प्रयोग होता है, किन्तु वर्तमान समय की विशेष स्थिति में इसके विपरीत प्रयोग प्रचलित हो गए हैं; यथा -

   पहले के वाक्यों 'वह दिल्ली का राज था', 'उसके पास पिस्तौल थी', 'एक दिन की बात है' का आज प्रयोग इस प्रकार होता है-'दिल्ली का राजा था वह', 'पिस्तौल थी उसके पास', 'बात एक दिन की है'।

2. **अन्वय में परिवर्तन** – संस्कृत भाषा में विशेष्य और विशेषण की अन्विति पर ध्यान देना आवश्यक है; यथा-विद्वान पुरुषः, विदुषी नारी, शोभनः बालकः, शोभना बाला।

   हिन्दी में पहले संस्कृत के ही समान पूजनीय पिता जी, पूजनीय माता जी, पूज्य भ्राता जी, पूज्य भाभी जी का प्रयोग होता था, किन्तु वर्तमान समय में दोनों ही लिंगों में एक ही शब्द का प्रयोग चलने लगा है; यथा-पूजनीय पिता जी, पूजनीय माता जी, पूज्यनीय भ्राता जी, पूज्यनीय भाभी जी आदि। संस्कृत के क्रिया पदों में लिंग-भेद नहीं होता है; यथा-'श्यामः पठती', 'सविता पठति'। हिन्दी में क्रिया-पद लिंग के अनुसार प्रयुक्त कतरे हैं; यथा-'श्याम पढ़ता है'। 'सविता पढ़ती है'।

3. **अधिक पद-प्रयोग** – वर्तमान समय में हिन्दी के वाक्यों में अतिरिक्त पदों का प्रयोग होने लगा है। बोल-चाल में ऐसे प्रयोग पर्याप्त रूप से मिलते हैं। व्याकरण की द ष्टि से दूसरे वाक्य अशुद्ध हैं, किन्तु प्रयोग मिलते हैं -

शुद्ध घी > विशुद्ध घी > बिल्कुल विशुद्ध घी

तुम मुझसे क्या कह रहे हो > तुम मेरे से क्या कह रहे हो?

अपर्णा लिखती और पढ़ती है > अपर्णा लिखती है और पढ़ती है।

आज सोमवार है > आज सोमवार का दिन है।

4. **आदरार्थ परिवर्तन** – संस्कृत और हिन्दी भाषाओं में आदर देने के लिए एकवचन कर्ता के साथ बहुवचन क्रिया और सर्वनाम आदि का प्रयोग किया जाता है; यथा--कः अत्र भवन्तः।

   पिता जी आज शिमला जा रहे हैं।

   मेरे गुरू जी आज पानीपत आ रहे हैं।

   दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र जी अयोध्या के राजा थे।

5. **पद या प्रत्यय-लोप** – विभिन्न भाषाओं में कभी-कभी मुख-सुख या प्रयन्नलाघव के कारण पद या प्रत्यय का लोप हो जाता है। इस प्रकार वाक्य में परिवर्तन होता है; यथा -

   त्वं गच्छ > गच्छ, त्वं पठ > पठ

   अहं गच्छामी > गच्छामी, अहं पठामी > पठामी।

   हिन्दी की बोल-चाल और लिखित भाषा में ऐसे प्रयोग मिलते हैं; यथा -

   मैंने पुस्तक रख ली है > मैंने पुस्तक रख ली।

   मैं नही जा रहा हूँ > मैं नहीं जा रहा।

   आँखों से देखी घटना बताता हूँ > आँखों देखी घटना बताता हूँ।

6. **प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कथन** – हिन्दी में प्रत्यक्ष कथन के अप्रत्यक्ष रूप में परिवर्तन की प्रक्रिया अब बदल चुकी है। वाक्य का यह परिवर्तित रूप अंग्रेजी के प्रभाव से सामने आया है, यथा-'रमेश ने कहा कि मैं तुम्हारे पास आऊँगा' वाक्य का प्रयोग इस प्रकार होता है- 'रमेश ने कहा कि वह मेरे पास आएगा।' इसी प्रकार 'महेश ने कहा कि मैं पढ़ रहा हूँ' वाक्य का अब प्रयोग इस प्रकार होता है-'महेश ने कहा कि वह पढ़ रहा था'

7. **कोष्ठक-प्रयोग** – वाक्य के किसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए कोष्ठक में उपवाक्य का प्रयोग किया जाता है। इससे भी वाक्य की रचना में भिन्नता आ जाती है; यथा- 'गुरू जी ने (सर पर हाथ रखकर) आर्शीवाद दिया', 'वह उन दिनों (दिल्ली-स्थित) जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में पढ़ रहा था', 'उसने जब मुझसे (रोते हुए) कहा, तो मुझे दया आ गई।'

8. **कारक-स्थान पर अल्प विराम-प्रयोग** – हिन्दी वाक्य-संरचना पर अंग्रेजी वाक्य संरचना का विशेष प्रभाव पड़ा है। हिन्दी वाक्यों में कारक-लोप और उनके स्थान पर अल्पविराम का प्रयोग अंग्रेजी-प्रभाव की देन है; यथा -

   हिन्दी विभाग के अध्यक्ष आ रहे हैं। > अध्यक्ष, हिन्दी विभाग के आ रहे हैं।

   हिन्दी मंच के अध्यक्ष हैं। > अध्यक्ष, हिन्दी मंच हैं।

3.7 वाक्य परिवर्तन के कारण

भाषा की विभिन्न इकाइयों में परिवर्तन का क्रम चलता रहता है। वाक्य की संरचना में भी परिवर्तन चलता रहता है, इन परिवर्तनों के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं -

1. मुख-सुख

मनुष्य थोड़े परिश्रम से अधिक से अधिक कार्य करना चाहता है, उसे ही मुख-सुख या प्रयत्नलाघव कहते हैं। इसी प्रयत्न में मनुष्य छोटे-छोटे वाक्य से विस्त त भाव प्रकट करना चाहता है। इस प्रकार कभी वाक्य के पद या प्रत्यय का लोप होता है, तो कभी पदक्रम में परिवर्तन हो जाता है। यह वाक्य-परिवर्तन का प्रमुख कारण है।

2. अन्य भाषा-प्रभाव

विभिन्न भाषाओं के प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव से वाक्य में परिवर्तन होता रहता है। जब कोई व्यक्ति अपनी भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा का प्रयोग करता है, तो उस भाषा की वाक्य रचना के अनुसार वह अपनी भाषा से भी वाक्य बनाने लगता है। संस्कृत में 'अर्थ' और 'इति' के प्रयोग आधार पर रचना की जाती थी। अब उसके स्थान पर उद्धरण चिह्न का प्रयोग किया जाता है; यथा-''अहं आगमिष्यामि''।

हिन्दी वाक्य-रचना पर अंग्रेजी और फारसी का प्रबल प्रभाव है। लम्बे वाक्यों में ऐसी रचना मिलती है; यथा -

'संगीता ने कहा है मैं जाऊँगी > 'संगीता ने कहा कि वह जाएगी'।

अंग्रेजी प्रभाव के कारण हिन्दी में ऐसी रचना मिलती है।

3. स्पष्टता

हम अपनी बात करने के लिए वाक्य में कुछ न कुछ परिवर्तन कर लेते हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में कभी एक ही वाक्य में कई उपवाक्य आ जाते हैं, तो कभी वाक्य के किसी पद के साथ कोष्ठक में स्पष्टतासूचक शब्द प्रयोग करते हैं।

4. बलाघात

वक्ता जब वाक्य के किसी पदविशेष पर बल देना चाहता है, तो उस पर बलाघात की स्थिति होती है। इस प्रक्रिया के कारण वाक्य-गठन में परिवर्तन होता है; यथा-

सुरेन्द्र घर जा रहा है।	(सामान्य वाक्य)
घर जा रहा है सुरेन्द्र।	(यहाँ 'घर' शब्द का बल दिया गया है)
जा रहा है घर, सुरेन्द्र।	(यहाँ 'जा रहा है' पर बलाघात है)

वक्ता वाक्य के जिस अंश पर बल देना चाहता है, उसे वाक्य में सबसे पहले रखता है।

5. विभक्तियों का घिसना

प्राचीन भाषाओं संयोगात्मक रूप में थी। विकास-क्रम में उनका रूप वियोगात्मक हो गया है। विभक्तियों और प्रत्ययों का कार्य परसर्गों तथा सहायक क्रियाओं से लिया जाता है। इस प्रकार वाक्य में परिवर्तन हो जाता है। संयोगात्मक भाषा के वाक्य के पदक्रम में परिवर्तन कर सकते हैं, किन्तु वियोगात्मक भाषा का पदक्रम स्थिर होता है।

6. मानसिक स्थिति

वाक्य-संरचना पर वक्ता और लेखक की मनःस्थिति का विशेष प्रभाव पड़ता है। शान्त या सामान्य मनःस्थिति में अलंकृत भाषा का प्रयोग होता है, तो दुःख, शोकादि के अवसर पर छोटे-छोटे, सरल वाक्यों का। इस प्रकार मनःस्थिति के कारण वाक्य में परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

7. नवीनता

मनुष्यता स्वभाव से ही नवीनता प्रेमी है। इस प्रव ति के कारण वाक्य में भी परिवर्तन हो जाता है। आजकल हिन्दी में यह प्रव ति विशेष रूप से चल पड़ी है; यथा-'एक कबाड़ी की दुकान' का 'दुकान एक कबाड़ी की', 'दाम सौ रुपए मात्र' का 'दाम मात्र सौ रुपए' प्रयोग होने लग गया है।

8. भावुकता

भावुकता के कारण भी वाक्य में परिवर्तन होता है। जब वक्ता या लेखक विशेष भाव-प्रवाह में बोलता या लिखता है, तो उसके वाक्य में कर्ताद्व कर्म और क्रिया की सैद्धान्तिक व्यवस्था न होकर विचित्र-सी संरचना होती है; यथा -

वाह रे माधुर्य! वाह रे लज्जा! धिक् बेहया! आदि

9. अज्ञानता

अज्ञानता के कारण भी वाक्य में परिवर्तन हो जाता है; यथा-

बाजार खुल रहा है	>	बाजार खुल रही है।
ट्रक जा रहा है	>	ट्रक जा रही है।
वह रिक्शा से घर जा रहा है	>	वह रिक्शा से जा रही है।

10. परम्परा प्रभाव

हिन्दी का उद्भाव संस्कृत भाषा से हुआ है। हिन्दी में संस्कृत के परम्परागत गुण हैं। वर्तमान समय में हिन्दी प्रयोग में पर्याप्त नवीनता आ रही है, किन्तु हम किसी न किसी रूप में परम्परा से जुड़े हैं। आदर-संदर्भ में एकवचन कर्ता के साथ क्रिया तथा सर्वनाम आदि का बहुवचन रूप में प्रयुक्त होता है; यथा-

'आचार्य शुक्ल महान साहित्यकार थे', 'वे बस्ती में रहते थे', ''गुरू जी आ रहे हैं, वे आज वाक्य-विषय पर व्याख्यान देंगे।''

''वागर्थाविव सम्प क्तौ वागर्थ प्रतिवत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।''

यदि 'कलम' शब्द का विचार करें, तो कलम शब्द और 'कलम' वस्तु में अभेद सम्बन्ध दिखाई देता है, यथा- 'यह कलम है', 'कलम काली है।'

यहाँ 'कलम शब्द और 'कलम' वस्तु के प थक रूप का आभास नहीं होता है। कभी-कभी तो यह भेद करना कठिन हो जाता है कि शब्दों पर विचार हो रहा है अथवा शब्द के द्वारा किसी वस्तु पर। वास्तव में शब्द द्वारा निर्दिष्ट वस्तु का ज्ञान होता है, किन्तु शब्द वस्तु आदि से भिन्न है। विचारणीय है कि क्या काले रंग वाली निब से युक्त सुनहरी टोपी वाली कलम ही 'कलम' शब्द है? उक्त निर्दिष्ट वस्तु कलम है। यहाँ काला रंग भी कलम शब्द से पूर्ण भिन्न उस वस्तु (कलम) का गुण है।

शब्द-अर्थ पर सूक्ष्म चिन्तन करने से यह ज्ञात होता है कि शब्द के द्वारा पहले उसका निजी भाषाई स्वरूप प्रकट होता है और उसके पश्चात् उसका अर्थ बोध होता है। इस प्रकार शब्द और अर्थ का अभिन्न सम्बन्ध स्पष्ट होता है। यहाँ पर यह भी ज्ञातव्य है कि 'कलम' कहने से 'कागज', 'पुस्तक' या अन्य किसी वस्तु का बोध नहीं होता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्येक शब्द से विशिष्ट अर्थ जन सामान्य द्वारा स्वीकृत होता है। यदि जन सामान्य द्वारा 'फूल' या अन्य किसी शब्द का भिन्न कोई अर्थ मान लिया जाए, तो वही अर्थ प्रकट होगा।

3. शब्द का उच्चरित स्वरूप और अर्थ-अभिव्यक्ति

जब एक शब्द का उच्चारण दो या दो से अधिक व्यक्ति करते है, तो उनका उच्चारण का आपसी अन्तर स्पष्ट होता है। यह उच्चारण-भिन्नता ही वक्ता की जानकारी देती है। एक शब्द का चाहे जितने आदमियों द्वारा प्रयोग किया जाए, किन्तु उनका समान ही अर्थ निकलता है।

4. शब्द-अर्थ सम्बन्धः चिन्तन-परम्परा

प्राचीनकाल से ही शब्द और अर्थ के सम्बन्ध पर विचार होता रहा है। पतंजली ने अर्थ को शब्द की आन्तरिक शक्ति बताते हुए शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को नित्य कहा है, तो भर्तहरि ने दोनों को एक ही आत्मा के दो रूपों में स्वीकार किया है। शब्द-अर्थ के विभिन्न चिन्तन को निम्नलिखित वर्गों में रख सकते हैं -

(क) **उत्पत्तिवाद** - ऋगवेद में प्रस्तुत प्राचीन मतानुसार मानव-मन में अर्थ विद्यमान होते हैं, जिनसे शब्दों की उत्पत्ति होती है, अर्थात् शब्द उत्पाद्य है और अर्थ उत्पादक।

(ख) **अभिव्यक्तिवाद** – यह विचार महर्षि पतंजति की देन-स्वरूप है। उनके अनुसार शब्द-प्रयोग से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है-श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलितः आकाशदेशः शब्दः।

(ग) **ज्ञाप्तिवाद** – वाजसनेयी के अनुसार शब्द से अर्थ की ज्ञाप्ति होती है। जिस प्रकार बहुत ठंडेपन से बर्फ का आभास होता है उसी प्रकार शब्द से अर्थ का आभास होता है। इसके अनुसार शब्द ज्ञापक और अर्थ ज्ञाप्य है।

5. अर्थ-प्रतीति

अर्थ प्रतीति के दो आधार हैं-आत्मानुभव और परानुभव।

(क) **आम्तानुभव** में अपने अनुभव के द्वारा शब्द के अर्थ की प्रतीति होती है, यथा-'रसगुल्ला' शब्द से एक मीठे स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थ का ज्ञात होता है।

(ख) **परानुभव** में एक-दूसरे के अनुभव पर विश्वास कर शब्द का अर्थ निश्चित करते हैं, यथा - 'जहर' के विषय में लगभग सभी को पता होता है कि इसके खाने से प्राणान्त हो जाता है, जबकि अनेक

था, किन्तु जब आधुनिक सुविधा का व्यवहारिक रूप 'आकाशवाणी' के रूप में समाचार, गीत-संगीत आदि कार्यक्रमों के साथ उपलब्ध हुआ, तो सहज अर्थबोध हो गया। इसी प्रकार 'दूरदर्शन' जो अकल्पनीय था, व्यवहारिक रूप में सामने आने के बाद अर्थ स्पष्ट हो गया कि वह साधन जिसके माध्यम से घर बैठे दूर का संदेश, विवरण सुन सकते हैं और संबंधित संदर्भ देख सकते हैं।

2. **कोश**

अर्थ-बोध के लिए शब्दकोश का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। विभिन्न क्षेत्रों के अध्ययन, चिन्तन तथा शोध आदि संदर्भो में अज्ञात शब्दों के अर्थ-बोध या शब्दों के संदिग्ध अर्थ निर्णय हेतु शब्दकोश का उपयोग किया जाता है। कोश की बढ़ती हुई महत्ता को द ष्टि में रखकर विभिन्न भाषा के कोशों को अधिकाधिक विकसित करने की प्रतिस्पर्धा-सी चल रही है। परिभाषिक, पर्यापी, विलोग कोशों के साथ विभिन्न बोलियों के अध्ययन चिन्तन हेतु सामने आने वाले कोशों से इनका महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। आज-कल कम्प्यूटर में भी शब्द कोश प्रवेश पा चुका है

3. **व्याकरण**

चिन्तन, मनन और विचार संदर्भ के अर्थ-बोध का विशेष स्थान है। व्याकरण द्वारा मुल प्रकृति और प्रत्यय की स्पष्ट जानकारी से अर्थ-बोध का मार्ग प्रशस्त होता है। उदाहरणार्थ- 'जाना' क्रिया का अर्थ शब्दकोश से पता लग जाता है किन्तु यदि कहीं से 'गया' शब्द सामने आ जाए तो उसका अर्थ कोश से प्राप्त होना अनिवार्य नहीं है, क्योंकि शब्द की विभिन्न विभक्तियों और कालों आदि के विविध रूप शब्द कोश में नहीं दिए जाते हैं। शब्दकोश में प्रायः मूल शब्द देकर उसके ही अर्थ दिए जाते हैं। व्याकरण में विभिन्न व्याकरणिन कोटियों लिंग, वचन, पुरुष, काल, कारक आदि संदर्भ में शब्द और पदों का विस्त त विवेचन किया जाता है। व्याकरण के ही माध्यम से ज्ञात होता है कि 'वासुदेव' का अर्थ वसुदेव का पुत्र है, तो 'दाशरथि' का अर्थ दशरथ का पुत्र है।

व्याकरण के आधार पर शब्द के अनेक रूप बन जाते हैं जिनसे विविध अर्थो की अभिव्यक्ति होती है। एक ही शब्द विभिन्न विभक्तियों, कालों, लिंगों, वचनों तथा पुरुषों आदि से संबंधित व्यकरणिक कोटियों में अनेक रूप और अर्थ धारण करता है। इस अर्थो का बोध व्याकरण के ही माध्यम से संभव है। अर्थ-तत्व के साथ संबंध-तत्व या मूल शब्द के साथ प्रत्ययों के योग से प्रकट होने वाली अर्थ-भिन्नता का बोध मुख्यतः व्याकरण से ही संभव है। इस प्रकार शब्दार्थ बोध के लिए व्याकरण प्रमाणिक और महत्त्वपूर्ण आधार है।

4. **प्रकरण**

इसके लिए 'वाक्य शेष' का भी प्रयोग किया जाता है। प्रकारण का भावार्थ है-वक्ता-श्रोता की बुद्धि में स्थित विषय या प्रसंग। जहाँ पर शब्दों के एकाधिक अर्थ होते हैं, वहाँ अर्थ-निर्णय के लिए प्रकरण का सहयोग लेना होता है। बिना प्रकार के ऐसे शब्दों का अर्थबोध असंभव होता है। 'काला' शब्द का अनेकार्थ रूप सर्वविदित है। इसका प्रयोग रंग, विशेष सांवला, धोखाधड़ी, मुसीबत, अंधेरा या अंधेरी आदि अर्थो में होता है, जिनका निर्णय प्रकरण से ही किया जा सकता है, यथा -

काला - यह काला रंग है। (रंग-विशेष)
काला आदमी जा रहा है। (सांवला)
आजकल कालाबाजारी का जोर है। (धोखाधड़ी)
उसके काले दिन आ गए। (मुसीबत)
आज काली रात है। (अंधेरी)

8. **आप्तवाक्य**

आप्त का अर्थ एवं यथार्थ वाक्ता। ऐसे सिद्ध, महात्मा, ज्ञानी पुरुष के कथन को आप्त वाक्य कहते हैं। सिद्ध या प्रमाणिक महापुरुषों के कथन से अर्थ-बोध होता है। योग, अध्यात्म विद्या-संबंधित शब्दों की जानकारी विषय/विशेषज्ञ या संबंधित ग्रन्थों से भी होती है, यथा-'परमात्मा' शब्द का अर्थ जानने के लिए भक्तों या दार्शनिकों के कथन पर विश्वास करना होता है। यह स्पष्ट विचार है कि आत्मा, धर्म, पुण्य, पाप, स्वर्ग और नरक का स्पष्ट अर्थ आप्त वाक्य से ही ग्रहण करना सरल होता है।

9. **बलाघात**

भावाभिव्यक्ति में बलाधात की भी विशेष भूमिका होती है। भाषा के ध्वन्यात्मक रूप में बलाघात से विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। सूक्ष्य एवं भाषा वैज्ञानिक लेखन में ही बलाघात का लिप्यंकन संभव है, उच्चारण में इसका रूप सामने आता है, यथा -

रोका, मत जाने दो।

रोको मत, **जाने दो।**

प्रथम वाक्य में 'रोको' पर बलाघात होन से रोकने के अर्थ का बोध होता है। द्वितीव वाक्य में 'जाने दो' पर बलाघात होने से न रोकने अर्थात् जाने दें, ऐसा अर्थ प्रकट होता है।

इसी प्रकार एक वाक्य 'मुझे एक खिड़की वाला घर चाहिए' में जब 'एक' पद पर बलाघात होता है, तो अर्थ-बोध होता है कि घर ऐसा चाहिए जिसमें खिड़कियाँ की खिड़कियाँ हों, किन्तु जब बलाघात 'एक खिड़की वाला' पर होता है तो अर्थ-बोध होता है कि घर में एक खिड़की चाहिए।

10. **सुर**

अर्थ-बोध में सुर की भी विशेष भूमिका होती है। उच्चारण के उच्च, मध्यम एवं सुराघात के प्रयोग से विशेष अर्थ-बोध की संभावना होती है। एक सामान्य वाक्य मध्यम सुराघात में प्रयोग होता है - वह सीमा पर जा रहा है

यही वाक्य उच्च या निम्न सुराघात है से प्रश्नवाचक, विस्मयबोधक या विषाद्युक्त विस्मय बोधक भाव की अभिव्यक्ति कराती है, यथा -

वह सीमा पर जा रहा है? (उच्च सुराघात) प्रशनवाचक

वह सीमा पर जा रहा है! (उच्च सुराघात) विस्मयबोधक

वह सीमा पर जा रहा है! (निम्न सुराघात) विषाद्युक्त विस्मयबोधक

11. **अनुवाद**

द्वितीय भाषा-शिक्षण में अनुवाद द्वारा अर्थ-बोध की विशेष उपयोगिता है। जब द्वितीय भाषा सीखने वाले व्यक्ति को कोई शब्द समझ में न पाता हो, तो उसकी सुपरिचित प्रथम भाषा में शब्दानुवाद कर दिया जाता है, तो अर्थ-बोध सहज हो जाता है। यथा- यदि हिन्दी भाषी व्यक्ति को अंग्रेजी सिखाते हुए Apple और Potato बताया जाए और उसकी समझ में कुछ न आए, तो दोनों शब्दों का हिन्दी अनुवाद कर 'सेब' ओर 'आलू' बता दिया जाए, तो अर्थ-बोध सुनिश्चित हो जाता है।

मानव जीवन में भाषा के महत्त्व और भाषा के नित प्रति बदलते रूप-रंग में अर्थ-बोध के अनेक आधार को अपनाना होता है। अर्थ-बोध के ये सभी अपने-अपने संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हैं।

4.3 अर्थ - निर्णय

अर्थ-बोध के लिए विभिन्न आधारों को अपनाया जाता है। कभी व्याकरण का उपयोग किया जाता है, तो कभी कोश का। शब्द-कोश में दिए गए विभिन्न अर्थो को कोशार्थ की संज्ञा दी जाती कहते है। कोश में दिए गए

बार बागती है। इसकी बोली को तीन श्रोता-पहलवाल, बनिया, और मौलवी तीन अर्थ इस प्रकार लगाते हैं -

पहलवान - दंड, मुगदर, कसरत

बनिया - हल्दी, मिर्ची, अदरक

मौलवी - खुदा तेरी कुदरत

बिहारी द्वारा महाराज जयसिंह को विलासिता से ऊपर उठाकर शासक बनने हेतु लिखे गए दोहा उन्हें अर्थ-बोध कराया था-

नहिं पराग नहिं मधुर नहिं विकास इहिकाल।
अली कली ही सों बंध्यों, आगे कौन हवाल॥

3. वाक्य

भाषा की पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है। शब्द के एकार्थी होने पर भी वाक्य में प्रयुक्त होकर पुरे वाक्य के साथ भिन्न अर्थ देने लगता है। 'न' शब्द 'नहीं' के अर्थ में निषेधात्मक संदर्भ में प्रयुक्त होता है, किन्तु भिन्न-संरचनात्मक वाक्य में प्रयुक्त होकर अलग अर्थ-बोध होता है, यथा -

1. लता - ''आज मेरे साथ चलोगी?''
2. माधुरी - ''न ।'' (निषेधात्मक)
3. आज मेरे साथ चलेंगे न! (जिज्ञासात्मक-अर्ध-स्वीकृति प्राप्त)

ध्यातव्य है कि ''आज मेरे साथ चलेंगे?'' प्रश्नवाचक वाक्य में भी जिज्ञासा है, किन्तु अन्त में 'न' प्रयुक्त होने से वक्ता को आत्मीयता आधार पर उत्तर में अनुकूलता होने की अर्ध स्वीकृति, वाक्य में झलकती है।

4. मेरे साथ चहिए न! (अनुरोधात्मक-आत्मी-सन्दर्भ)

'मेरे साथ चलिय' वाक्य भी अनुरोधात्मक है, किन्तु वाक्यान्त में 'न' प्रयोग से वक्ता का अनुरोध आत्मीय भाव विश्वास के साथ सामने आता है। इस प्रकार 'न' के निषेध से निम्न अर्थ-बोध होता है।

4. वाच्य

वाच्य का अर्थ है-वक्तव्य। वक्ता के कथन का अभिप्रायः अर्थ-निर्णय का आधार बन सकता है, यथा खरगोश और कछुए की दौड़ प्रतियोगिता में कछुआ विजयी रहा। यहाँ वक्ता का अभिप्रायः है कि सतत् परिश्रम करने वाला निश्चय ही सफल होता है साथ ही अहं से प्रभावित या आलसी को असफलता मिलती है।

5. अन्य सन्निधि

दो व्यक्तियों के वार्तालाप के मध्य किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति का अन्य सन्निधि कहते हैं। ऐसी प्रक्रिया में वक्ता अपनी बात का क्रम जारी रखता है किन्तु वाक्य-विन्यास ऐसे परिवर्तित कर देता है कि श्रोता तो अर्थ समझ जाता है, परन्तु आगन्तुक को सामान्य अर्थ का ही बोध होता है। जीवन में ऐसी घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं। कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के त तीय अध्याय में दुष्यन्त और शंकुतला की वार्ता के मध्य गौतमी आ जाती है। शकुंतला घबरा कर गौतमी के साथ चल पड़ती है। चलते-चलते कहती गई -

''लताग ह! सन्तापहर! आमंत्रयामि त्वां पुनरपि परिभोगार्थन!'' 'हे सन्ताप हर्ता लताग ह! परिभोगार्थ्ज्ञ तुम्हें आमंत्रित करती हूँ।' इस वाक्य में दुष्यन्त मूलार्थ समझ जाता है, तो गौतमी को शकुन्तला के लता-प्रेम की ही आभास होता है।

आये हूँ मधुमास के प्रियतम ऐहैं नहिं।

विरहिणी का कथन है कि वसंतागमन पर भी प्रियतम नहीं आएंगे। सखी उन्हीं का काकु द्वारा दूसरे अर्थ को प्रकट कर रही है, ''क्या वसंतागमन पर प्रियतम नहीं आएंगे?'' अर्थात् अवश्य आएं।

10. **चेष्टा**

उच्चारित भाषा की सबसे प्रभावी विशेषता यह है कि अभिव्यक्ति में मुख-भंगिता और हाथ आदि अंगों का प्रचलन व सहयोगी होता है। भाव में अंगों की स्वभाविक चेष्टा से जहाँ भावभिव्यक्ति में स्पष्टता आती है, वहीं गंभीरता भी आती है। ''आओ बेटा एक सामान्य वाक्य है, किन्तु जब माँ वात्सल्य भाव से आन्दोलित हो दोनों बाहों को फैला कर इसी वाक्य का प्रयोग करती है, ''आओ बेटा।'' तो गंभीर भावभिव्यक्ति होती है। प्रेम, क्रोध, व्यंग्य और हास्य संदर्भो में चेष्टा आधारित शब्दों और वाक्यों से सशक्त अभिव्यक्ति होती है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि एकार्थक शब्दों से भी विविध आधार पर विभिन्न उपयोगी अर्थो की अभिव्यक्ति संभव है। ऐसे विशेष अर्थो का निर्णय ऊपर चर्चित आधारों पर सरलता से कर सकते हैं।

(ख) अनेकार्थक शब्दों के अर्थ-निर्णय

परिवर्तनशीलता के क्रम में शब्दों का प्रयोग नए अर्थो में होना स्वाभाविक है। कई बार ऐसा होता है कि शब्द नए अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है और पुराना अर्थ भी साथ-साथ प्रयुक्त होता रहता है। इस प्रकार नवीनता के क्रम में एक शब्द के लिए कई-कई अर्थ प्रचलित हो जाते हैं। ऐसे शब्दों को अनेकार्थी शब्द कहते हैं। शब्द-कोश में विभिन्न शब्दों के विविध अर्थो का उल्लेख किया जाता है।

भाषा-प्रयोक्ता के सामने समस्या होती है कि अनेकार्थी शब्द के एकाधिक अर्थो में से अर्थ को ग्रहण किया जाए और किस आधार पर अन्य अर्थो को छोड़ दिया जाए। भर्त हरि ने इस तथ्य पर गंभीरता से विचार करते हुए अर्थ-निर्णय के चौदह साधनों का उल्लेख किया है -

संयोगो विप्रयोगश्च साहर्चय विरोधिता।
अर्थःप्रकरणः लिंग शब्दास्थान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्ति स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्म हितेतवः॥
—वाक्दीप

1. **संयोग** - अनेकार्थक शब्द के अर्थ निश्चयन हेतु उसके विशिष्ट संबंध को आधार बनाते हैं, इसे संयोग की संज्ञा दी जाती है। 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं- गाय, वाणी, इन्द्रिय, प थ्वी आदि। यदि 'गो' शब्द के साथ विशेष अर्थद्योतक 'वत्स' शब्द का संयोग होकर कहा जाए 'सवत्सा गौ' तो इसका अर्थ गाय होगा।

इस प्रकार 'सारंग' अनेककार्थी शब्द है। इसे सूर्य व चन्द्र, बाज, मोर, कोयल, पपीहा, भ्रमर, खंजन, कृष्ण, विष्णु, कामदेव, हाथी, घोड़ा, म ग, प थ्वी और साँप आदि अर्थो में प्रयोग किया जाता है। यदि कोई 'प्रकाश पुंज सारंग' कहे, तो इसका अर्थ सूर्य होगा, क्योंकि सूर्य होगा, क्योंकि सूर्य से प्रकाश का अभिन्न संबंध है।

2. **वियोग** - सन्निकटता वाली दो वस्तुओं के अलगाव को वियो कहते है। जब दो सन्निकट रहने वाली वस्तुओं के अर्थ-बोधक शब्द के अलगाव का भाव सामने आता है, तो अर्थ-निर्णय सरल हो जाता है, यथा-चंद अनेकार्थक शब्द है। इसे चन्द्रमा, कुछ और चन्द्रवरदाई आदि अर्थो में प्रयोग किया जाता

अरूण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

यहाँ 'मधुमय देश' से इसकी विशेषताएँ सामने आती हैं। जहाँ (भारत वर्ष में) पहुँच कर अनजान को भी सहारा मिला हैं विवधि देशों में देश-भारतवर्ष का बोध होता है।

चरन कमल बन्दौ हरि राई।

जाकि क पा पंगु गिरि, अंधे को सब कुछ दरसाई।

'हरि' की विशेष सामर्थ्य के आधार पर पंगु गिरि पार करता है, अंधे को दिव्य द ष्टि मिल जाती है। इस प्रकार हरि के विभिन्न अर्थो में से 'क ष्ण' का बोध होता है।

10. **औचित्य** - शब्द के विभिन्न अर्थो में से कौन-सा अर्थ कहाँ उचित है। यह अर्थ निर्णय का आधार बनता है; यथा- ''प्रस्थान के समय का शकुन सफलता का प्रतीक होता है।'' 'शकुन का प्रस्थान के समय होने का अर्थ 'शुभ लक्षण' हैं। यहाँ शकुन का अर्थ पक्षी नहीं लगाया जाएगा।

11. **देश** - जहाँ पर किसी स्थान-विशेष के आधार पर अर्थ-निर्णय संभव हो, उसे देश-संदर्भ में विचार करते हैं; यथा-

देख लो साकेत नगरी है यही,

स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही।

केतु-पट अंचल सद श हैं उड़ रहे,

कनक कलशों पर अमर द ग जुड़ रहे। *मैथिलीशरण गुप्त (साकेत)*

यहाँ साकेत (अयोध्या) स्थल का चित्रांकन है, जो राम की जन्मभूमि है। इससे उसकी दिव्यता का बोध स्वतः हो रहा है।

12. **काल** - जहाँ पर अर्थ-निर्णय में समय-विशेष की भूमिका होती है, उसे काल-संदर्भ में विचार करतें हैं यथा- फूली सरसों ने दिया रंग,

मधु लेकर आ पहुँचा आनंग - *सुभद्राकुमारी चौहान*

यहाँ सरसों के फूलने, अनंग (कामदेव) के मधु सहित आगमन से वसंत ऋतु के मधुकाल का बोध होता है, न कि मधु से मदिरा का।

13. **व्यक्ति** - व्यक्ति अर्थ है। पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग बोध। लिंग की पहचान के आधार पर भी अनेकार्थी शब्दों का अर्थ-निर्णय हो जाता है।

टीका - उनके मस्तक पर टीका सुन्दर लग रहा है। - पुल्लिंग

वह बहुत अच्छी टीका हैं। - स्त्रीलिंग

14. **स्वर** - उच्चारण की स्वर-स्थिति के आधार पर अर्थ-निर्णय संभव होता है। स्वर-तंत्रियों की कंपन-आव ति आधार पर स्वर की विविधता होना स्वाभाविक है। सुराघात तीक्ष्ण होने पर आवाज पतली और इसके विपरीत आवाज मोटी होती है। स्वर के बदलाव से सुर की आरोही और अवरोही स्थिति होती हैं। इस भिन्नता से अर्थ परिवर्तित हो जाता है; यथा -

वह सीमा पर जा रहा है। ↓ सामान्य

वह सीमा पर जा रहा है। ↑ अवरोह (निराशा)

वह सीमा पर जा रहा है। आरोह (आश्चर्य)

है। ऐसे में हम अमंगल, अशुभ आदि बातों के लिए शुभ-सुन्दर शब्दों का प्रयोग करते हैं; यथा- मलत्याग संदर्भ में पाखाना 'पैर रखने का स्थान', शौचालय (पवित्र-घर), दिशा जाना (दिशाओं में भ्रमण), प्रसाधन (श्रं गार कक्ष), बाथरूम (स्नानागार) हैं। इसी प्रकार म त्यु के स्वर्गवास, स्म तिशेष, बैकुण्ठवास आदि शब्दों के प्रयोग मिलते हैं।

6. व्यक्ति आधार

व्यक्ति आधार पर भी शब्दार्थ में भेद होता है। यदि 'अध्यक्ष महोदय आ रहे हैं' वाक्य को हिन्दी, अंग्रजी, संस्क त आदि विभागो के सदस्य कहें तो उनके लिए भिन्न-भिन्न अर्थ की अभिव्यक्ति होगी। यदि काशी में 'सभा' कहें तो नागरी प्रचारिणी सभा का बोध होगा, यदि मद्रास में 'ससी' कहें तो दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का।

7. शब्दार्थ अस्पष्टता

बहुत से शब्दों में अज्ञानता और भ्राँति के कारण अर्थ-परिवर्तन हो जाता है; यथा-सहस्र को सहस्त्र, एडवांस को अठवांस, लैटिन को लैट्रिन कहना या लिखना। इस प्रकार खालिस (शुद्ध) की निखालिस, फिजूल कहने से भी अर्थ-परिवर्तनों को आधार मिल जाता है।

8. शब्दार्थ अस्पष्टता

अधिकांश भाषाओं में कई ऐसे शब्द मिल जाते हैं जो एक दूसरे के निकटार्थी होते हैं। सामान्य व्यक्ति के लिए उनमें भेद करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में भिन्न अर्थ वाले शब्द का प्रयोग भिन्न स्थान पर हो जाता है। हिन्दी में क पा, अनुग्रह, दया, निवेदन, प्रार्थना, विनती लघु, छोटा, अनुज; बहुत ज्यादा, अधिक, पर्याप्त आदि शब्दों की आपसी अस्पष्टता उनके भिन्नार्थ प्रयोग का कारण बन जाती हैं।

9. साद श्य

यदा-कदा साद श्य के कारण शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है; पुस्तकालय के लिए अंग्रजी शब्द लाईब्रेरी के लिए लगभग समान 'राय-बरेली' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार प्रश्रय (प्रेम) शब्द का आश्रय अर्थ में प्रयोग मिलता है।

10. तद्भवता

कुछ शब्दों के तत्सम से तद्भव परिवर्तन पर अर्थ में भिन्नता आ जाती है; यथा- श्रेष्ठ (सज्जन) से तद्भव सेठ होने पर इसका अर्थ धनी व्यक्ति हो गया। इसी प्रकार क्षीर > खीर, स्तन > थन, गर्भिणी > गाभिन, परिक्षक > पारखी, स्थान > थान, थाना, आदि शब्दों के तद्भव रूपों से अर्थ की भिन्नता प्रकट होती है।

11. भावात्मक बल

भावात्मक प्रभाव की अभिव्यक्ति के लिए कभी-कभी बौधिक प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के शब्द-प्रयोग में अर्थ-परिवर्तन होना स्वाभाविक है, यथा- 'पलंगताड़' मिठाई का नाम कितना विचित्र लगता है, किन्तु यह नाम विशेष स्वादिष्ट होने के भाव को प्रकट करने के उद्देश्य से रखा गया है। इसी प्रकार एक बंगाली मिठाई का नाम 'प्राणहारा' है।

12. पुनराव ति

कुछ शब्दों की पुनराव ति के कारण के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है; यथा- विंध्याचल के स्थान पर विंध्याचल पर्वत, हिमाचल के स्थान पर हिमाचल पर्वत का प्रयोग होता है। 'अचल' का अर्थ पर्वत होता है, इसके बाद भी पर्वत शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार दुर्जन > व्यक्ति, सज्जन > व्यक्ति, पाव (पुर्तगाली में रोटी का समानार्थी शब्द) > पाव रोटी के प्रयोग मिल जाते हैं।

में प्रयुक्त होता रहा हो और बाद में उसकी अर्थ-सीमा का विस्तार हो जाए, तो उसे अर्थ-विस्तार कहते हैं; यथा -

तेल - संस्क त में एक विशेष तिलहन 'तिल' के तरल पदार्थो को तेल कहते हैं, इस शब्द के अर्थ में धीरे-धीरे विस्तार हुआ। आज सरसों, मूँगफली, सोयाबीन, नारियल, मछली आदि से तैयार किए गए तरल पदार्थ को तेल कहते हैं। अधिक परिश्रम के संदर्भ से प्रयुक्त होने वाले मुहावरे में मनुष्य के तेल निकालने की बात कही जाती है-''उसने मेरा तेल निकाल दिया।''

कुशल - संस्कृत में तीक्ष्ण अग्रभाग वाली एक विशेष घास 'कुश' का सावधानी से उखाड़ने वाले को कुशल कहते हैं। आज इसका अर्थ चतुरता या निपुणता से लिया जाता है। खेल में कुशल, कला में कुशल व व्याख्यान में कुशल आदि संदर्भों में इसका प्रयोग करते हैं।

स्याही - इसका प्रारम्भिक अर्थ था-काली। इसी आधार पर लेखन योग्य बनाए गए काले रंग के तरल पदार्थ को स्याही कहते थे, आज लाल, नीली, गुलाबी आदि रंगों की स्याही मिलती है।

इस प्रकार, प्रवीण, गोशाला, गवेषण (गाय ढूँढना) आदि शब्दों का अर्थ-विस्तार हुआ है।

2. अर्थ-संकोच (Contraction of Meaning)

अर्थ - संकोचन की प्रक्रिया अर्थ-विस्तार के पूर्ण विपरित है। जब किसी शब्द का पूर्ण-विस्त त अर्थ परवर्ती काल में संकुचित रूप में प्रयुक्त होने लगता है, तो उसे अर्थ-संकोचन कहते हैं; यथा-

मग - प्राचीन संस्कृति में म ग का अर्थ जंगली जानवर था, जिसके अन्तर्गत सभी वन्य पशु आ जाते थे। पशुओं में श्रेष्ठ शेर को इसलिए म गेन्द्र, म गपति या म गराज कहते हैं। वर्तमान समय में इसका अर्थ संकुचित होकर मात्र 'हरिण' रह गया है।

सर्प - सर्प शब्द का निर्माण स प् धातु से हुआ है। इस शब्द का अर्थ है-रेंगने वाले जीव, जिसके अन्तर्गत केंचुआ, साँप आदि सभी रेंगने वाले जीव आ जाते हैं। वर्तमान समय में इसका प्रयोग मात्र साँप के लिए होता है।

मन्दिर - संस्कृत में मन्दिर शब्द का प्रयोग विस्त त रूप में घर, राजमहल, देवालय आदि के लिए होता था। हिन्दी में इस शब्द का प्रयोग केवल देवालय या आराधना-ग ह के लिए होता है।

इसी प्रकार व षभ (बैल, साँड, रूद्रदेव) और जलज (कमल, मेंढ़क, मछली) आदि शब्दों के अर्थ में संकोच हो गया हैं

3. अर्थादेश (Transference of Meaning)

अर्थादेश का सामान्य अर्थ है-एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का प्रचलन अर्थात् जब कोई शब्द पहले एक अर्थ में प्रचलित हो और बाद में किसी अन्य अर्थ में प्रयुक्त होने लगे, तो उसे अर्थादेश कहते हैं। इस परिवर्तन से शब्द नए अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं; यथा-

साहस - शब्द प्राचीन संस्कृत में चोरी, डकैती और व्याभिचार संदर्भ में उत्साह दिखाने के अर्थ में प्रयुक्त होता था, आज इसका प्रयोग अच्छे कार्यों के संदर्भ में उत्साह दिखाने में होता है।

अर्थादेश को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं -

(क) **अर्थोत्कर्ष** - जब कोई शब्द प्रारम्भ में निम्न या विकृत अर्थ में प्रयुक्त होता रहा हो और बाद में उच्च या उत्कृष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है, तो उसे अर्थ-विकास की अर्थोत्कर्ष दिशा कहते हैं। इसमें शब्दार्थ का भावनात्मक रूप उत्कर्ष प्राप्त करता है; यथा -

5. **अमूर्तिकरण** - अर्थ-विकास की इस दिशा के लिए सूक्ष्मीकरण नाम भी दिया जाता है। जब किसी शब्द के मूर्त अर्थ के स्थान पर सूक्ष्म या अर्थ प्रकट होने लगता है, तो उसे अमूर्तीकरण अर्थ-विकास की संज्ञा देते हैं; यथा -

   1. **अंकुश** - यह शब्द हाथी आदि को रोकने के लिए प्रयोग किए जाने वाले भाले के अर्थ में होता था। अब अंकुश का प्रयोग रोक या रुकावट भाव के लिए भी किया जाता है।
   2. **काँटा** - इसका पूर्ववर्ती समय-समय में प्रयोग कंटक अर्थात् बबूल और गुलाब आदि के द श्य और स्पर्श से त्वचा में चुभने वाले स्थूल वस्तु के रूप में होता था, किन्तु परवर्ती काल में इस सूक्ष्म भाव 'दर्द' या 'टीस' के लिए होने लगा है; यथा-वह दिनेश के लिए काँटा बन गया है।
   3. **कुर्सी** - पहले कुर्सी शब्द एक वस्तु के रूप अर्थ प्रकट करता था, किन्तु अब उसके साथ 'पद' अर्थ को प्रकट करने लगा है। यह कहते हुए प्रायः सुनते हैं, ''आजकल कुर्सी का ही झगड़ा है।''
   4. **गधा** - एक सीधा-जानवर जो भारवाहक के रूप में मानव का सहयोगी है, अब गधा शब्द का प्रयोग 'मूर्ख' अर्थ में भी किया जाता है; यथा-यह पूरा गधा है, उत्तर नहीं दे सकेगा।
   5. **परदा** - इस शब्द का अर्थ था-अलग रखने या छिपाव के लिए किया जाने वाला आधार; यथा - दीवार का पर्दा या कपड़े का पर्दा, किन्तु परदा शब्द का प्रयोग दुराव भाव के लिए किया जाने लगा है।
   6. **रोटी** - इस शब्द का सामान्य अर्थ एक विशेष भोज्य पदार्थ है, किन्तु आज रोटी का प्रयोग आजीविका के संदर्भ में किया जाता है।
   7. **लाठी** - पूर्ववर्ती समय में इस शब्द का प्रयोग लगुड या बाँस और बेंत आदि से निर्मित स्थूल वस्तु के लिए होता था, किन्तु परवर्ती समय में इसका प्रयोग सूक्ष्मभाव 'सहारा' अर्थ में भी किया जाने लगा है; यथा - युगेश्वर अपने बूढ़े दादा की लाठी है।

   इस प्रकार गांधी, हरिशचन्द्र, विभीषण, जयचन्द्र व्यक्ति-विशेष के नाम थे, किन्तु इन नामों का प्रयोग क्रमशः अंहिसा के पुजारी, सत्यव्रत धारी, घर का भेदी, देश-द्रोही सूक्ष्म भावों के अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

अध्याय - 5
भाषा विज्ञान का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध

5.1 भाषा विज्ञान और व्याकरण संबंध

भाषा विज्ञान तथा व्याकरण के अनेक तथ्य पर्याय समान हैं जिसके कारण कभी-कभी दोनों के एक होने का भ्रम होने लगता है। दोनों के विषय में सूक्ष्म चिन्तन करने पर कुछ समानताएँ और कुछ विषमताएँ सामने आती हैं, जो इस प्रकार हैं –

(क) समता

1. भाषा विज्ञान तथा व्याकरण, दोनों का सीधा सम्बन्ध भाषा से है, क्योंकि इनमें भाषा का विभिन्न द ष्टिकोणों से अध्ययन किया जाता है। भाषा के अभाव में दोनों का ही अस्तित्व संदिग्ध जो जाएगा।
2. दोनों से ही भाषा के विभिन्न पक्षों के विवेचन-विस्तार पर ही अध्ययन की श्रेष्ठता तथा गहनता आधारित होती है।
3. भाषा विज्ञान तथा व्याकरण दोनों में ही विभिन्न दिशाओं के सूक्ष्मतम तथ्यों के प्रतिपादन का प्रयत्न किया जाता है; यथा – ध्वनि के आगम की सूक्ष्य स्थिति को दोनों ही स्वीकार कर लेते हैं। अंग्रेजी की "ऑ" ध्वनि का आगम हुआ, तो इसे भाषा विज्ञान तथा व्याकरण दोनों में स्थान मिल गया।
4. भाषा विज्ञान तथा व्याकरण दोनों के ही माध्यम से भाषा के आदर्श रूप प्राप्त करने, उसके प्रयोग करने तथा अनुपयुक्त रूप छोड़ने के लिए आधार प्रस्तुत किए जाते हैं। यह आदर्श रूप भाषा की विविध इकाइयों से सम्बन्धित हो सकता है। वाक्य – संदर्भ में अशुद्ध-शुद्ध द्रष्टव्य हैं –

अशुद्ध		शुद्ध
आज रविवार का दिन है	>	आज रविवार है।
वह एक आँख से काना है	>	वह काना है।

5. भाषा विज्ञान तथा व्याकरण दोनों में ही भाषा के सर्वांगीण विवेचन का प्रयत्न होता है। दोनों में ही भाषा की लघुत्तम से महत्तम इकाइयों का कई ढंग से विवेचन करते हैं। सर्वांगीण विवेचन – संदर्भ में किसी भी महत्त्वपूर्ण इकाई का विस्त त व्यवस्थित अध्ययन भाषा विज्ञान तथा व्याकरण दोनों में ही संभव है।
6. भाषा के उपयोगी ज्ञानार्जन की बात दोनों में ही होती है। इनसे जहाँ शुद्ध-अशुद्ध का ज्ञान होता है, वहीं यथा – अयथार्थ का भी ज्ञान प्राप्त होता है; यथा – अंग्रेजी के प्रभाव के कारण हिन्दी के कुछ शब्दों का अशुद्ध प्रयोग चल पड़ा है – गोपाल > गोपाला, राम > रामा, गुप्त > गुप्ता, मिश्र > मिश्र। भाषा विज्ञान और व्याकरण से गोयल, गुप्त और मिश्र शुद्ध रूपों का ज्ञान होता है।

भाषा विज्ञान और व्याकरण की इन समानताओं से उनकी आपसी निकटता स्पष्ट होती है।

(ख) विषमता

सूक्ष्म चिन्तन से भाषा विज्ञान और व्याकरण में कुछ भिन्नताएँ भी सामने आती हैं –

1. भाषा विज्ञान में वैज्ञानिक अध्ययन होने के कारण इसे विज्ञान कहते हैं, जबकि व्याकरण में शास्त्रीय अध्ययन होने के कारण इसे शास्त्र कहा जाता है। व्याकरण में भाषा के विभिन्न संदर्भों के अध्ययन "क्या" का उत्तर मिलता है। जबकि भाषा विज्ञान में 'क्या' के अतिरिक्त 'क्यों' का भी उत्तर मिलता है; यथा – "दूध दो" का जल्दी से उच्चारण "दूद्दो" हो जाता है। व्याकरण में "दूध दो" से "दूद्दो" होने का ज्ञान होता है। भाषा विज्ञान में इसके अतिरिक्त उक्त परिवर्तन के कारण मुख-सुख सिद्धान्त और अघोषीकरण का ज्ञान प्राप्त होता है।

2. व्याकरण का क्षेत्र भाषा विज्ञान की अपेक्षा सीमित है। व्याकरण में सामान्यतः एक भाषा के सैद्धान्तिक पक्षों का विवेचन होता है, जबकि भाषा विज्ञान में दो या दो से अधिक भाषाओं का अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन भाषा विज्ञान का मुख्य अंग है। भाषा विज्ञान में ऐसे तथ्यों पर भी विचार किया जाता है जो विश्व की समस्त भाषाओं से सम्बन्धित हो। ध्वनि, शब्द तथा वाक्य आदि भाषा की विभिन्न इकाइयों के संदर्भ में सूक्ष्म अध्ययन का ऐसा द ष्टिकोण अपनाया जाता है।

3. भाषा विज्ञान तथा व्याकरण के अध्ययन की दिशाओं को देखकर यह कह सकते हैं कि व्याकरण शरीर के रूप में है और भाषा विज्ञान नेत्र के रूप में है। भाषा विज्ञान में व्याकरण के विभिन्न सिद्धान्तों का विवेचन कर उनकी स्थिति स्पष्ट की जाती है। इस प्रकार भाषा विज्ञान के प्रशिक्षण से व्याकरण को आदर्श रूप मिलता है। यह कार्य उसी प्रकार है जिस प्रकार नेत्र के द्वारा शरीर को व्यवस्थित और सुसज्जित किया जाता है।

4. व्याकरण में काल विशेष की भाषा का अध्ययन किया जाता है, जबकि भाषा विज्ञान में विभिन्न कालों की भाषा का विवरणात्मक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक आदि रूपों में अध्ययन किया जाता है।

5. व्याकरण परम्परावादी है, जबकि भाषा विज्ञान प्रगतिवादी है। व्याकरण में पुराने सिद्धान्तों पर विशेष बल दिया जाता है, भाषा विज्ञान में भाषा की नवीनता को देखकर नए सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है।

6. व्याकरण में भाषा के केवल शुद्ध रूपों को महत्त्व दिया जाता है; भाषा विज्ञान में शुद्ध-अशुद्ध, ठेठ-परिनिष्ठित, सामान्य-मानक आदि सभी-रूपों का महत्त्व है। व्याकरण में प्रतिध्वन्यात्मक शब्दों को निरर्थक कोटि में रखते हैं, जबकि ये शब्द भाषा विज्ञान में प्रबल उपयोगी माने जाते हैं; यथा – चाय के साथ प्रयुक्त होने वाले वाय, शाय, चूय शब्दों से बने शब्द – युग्म चाय-वाय, चाय-शाय या चाय-चुय से चाय के साथ नमकीन, मिठाई आदि का अर्थबोध होता है। व्याकरण के अनुसार चाकू शुद्ध तथा काजू अशुद्ध शब्द हैं, जबकि भावाभिव्यक्ति हेतु भाषा विज्ञान में दोनों शुद्ध हैं।

7. व्याकरण को भाषा विज्ञान का अनुगामी कह सकते हैं। भाषा विज्ञान में भाषा के विश्लेषण से सिद्धान्त निर्धारित किया जाता है, जिसे व्याकरण सिद्धान्त रूप में स्वीकार कर लेता है; यथा – कर्म > कम्म > काम के क्रमिक विकास के आधार पर इसे व्याकरण में भी मान लिया गया है।

8. भाषा विज्ञान तथा व्याकरण के क्षेत्रों में भी पर्याप्त भिन्नता है। भाषा विज्ञान के प्रगतिशील अध्ययन के कारण इसमें नए-नए क्षेत्रों का आगमन होता रहता है। वर्तमान समय में भाषा विज्ञान के ऐतिहासिक, तुलनात्मक अध्ययन के साथ शब्दविज्ञान, कोषविज्ञान, लिपिविज्ञान, मनोभाषिकी और समाज भाषा विज्ञान आदि क्षेत्र विकसित हो गए हैं।

9. भाषा विज्ञान को व्याकरण का व्याकरण कह सकते हैं, क्योंकि यह व्याकरण के सिद्धान्तों का विश्लेषण कर उसकी स्थिति स्पष्ट करता है। भाषा के युगीन परिवर्तनों को ध्यान में रखकर भाषा विज्ञान में उसका विवेचन किया जाता है, जो व्याकरण के लिए बहुत उपयोगी है।

5.2 भाषा विज्ञान और साहित्य

साहित्य भाषा का स्थाई रूप है। भाषा विज्ञान और साहित्य दोनों भाष्य पर आधारित हैं। भाषा के अभाव में दोनों का अस्तित्व संदिग्ध हो जाएगा। भाषा विज्ञान के हेतु साहित्य से पर्याप्त सामग्री मिलती है। भाषा के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन का सबल आधार साहित्य ही है। यदि किसी भाषा के वर्तमान बोलचाल रूप के साथ उसका मध्य युगीन तथा प्राचीन साहित्य न प्राप्त हो तो ऐहिहासिक अध्ययन असम्भव होगा। ऐसी स्थिति में दो या दो से अधिक भाषाओं के साहित्य के अभाव में तुलनात्मक अध्ययन भी असम्भव सा होगा। हिन्दी के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन हेतु संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश का भी साहित्य-आधार आवश्यक है। भाषा की विभिन्न ध्वनियों तथा शब्दों के विकास-ह्रास का अध्ययन भी साहित्य के माध्य से होता है।

साहित्य भी भाषा विज्ञान से पर्याप्त सहायता लेता है। भाषा विज्ञान साहित्य के विभिन्न क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग और उनका अर्थ-निर्णय प्रस्तुत करता है। भाषा विज्ञान के सहयोग से साहित्यिक कृति के शुद्ध पाठ का निर्धारण सम्भव होता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान और साहित्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनों एक-दूसरे के अत्यन्त सहयोगी हैं।

अध्याय - 6
हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि

6.1 भारतीय आर्यभाषाएँ

भारतीय आर्यभाषा का महत्व संसार की सभी भाषाओं में सार्वाधिक है। ये भाषाएँ सम द्ध साहित्य व्याकरण के सम्मत रूप और प्रयोग आधार पर अपनी पहचान के साथ सामने आई है।

भारतीय आर्यभाषा का विभाजन

भारतीय आर्यभाषा की पूरी श्रंखला को 3 भागों में विभाजित किया जाता है-

(क) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ (प्रा० भा० आ०) - 1500 ई० पँ० से 500 ई० पू० तक।

(ख) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ (म० भा० आ०) - 500 ई० से 1000 ई० पू० तक।

(ग) आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ (आ० भा० आ०) - 1000 ई० सन् से अब तक।

(क) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ

इनका समय 1500 ई० पू० तक माना जाता है। वस्तुतः यह विवादास्पद विषय है। इस वर्ग में भाषा के दो रूप अपलब्ध होते है- (i) वैदिक या वैदिक संस्कृत, (ii) संस्कृत या लौकिक संस्कृत। इन दोनों का भी प थक-प थक परिचय अपेक्षित है।

(i) **वैदिक या वैदिक संस्कृत –** इसे 'वैदिक भाषा', 'वैदिकी', छान्द या 'प्राचीन संस्कृत' भी कहा जाता है। वैदिक भाषा का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में सुरक्षित है। यद्यपि अन्य तीनों संहिताओं, ब्राह्मणो-ग्रन्थों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि की भाषा भी वैदिक ही है, किन्तु इन सभी में भाषा का एक ही रूप नहीं मिलता। 'ऋग्वेद' के दूसरे मण्डल से नौवें मण्डल तक की भाषा ही सर्वाधिक प्राचीन है। यह 'अवेस्ता' के अत्यधिक निकट है। शेष संहिताओं तथा अन्य ग्रन्थों में भाषा ही प्राचीनतम है, जिनमें आर्यो का वातावरण तत्कालीन पंजाब के वातावरण से मिलता-जुलता वर्णित है। इसी प्रकार वैदिक भाषा के दो अन्य रूप-दूसरा और तीसरा भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं। दूसरे रूप मध्यदेशीय भारत का तथा तीसरे रूप पूर्वी भारत का प्रभाव लक्षित होता है। ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा का प्रवाह अनेक ृशताब्दियों तक रहा होगा।

विद्वानों का विचार है कि वैदिक भाषा का जो रूप हमें आज वैदिक साहित्य, विशेषतः ऋग्वेद में मिलता है, वह तत्कालीन साहित्यक भाषा ही थी, बोलचाल की भाषा नहीं। तत्कालीन बोलचाल की भाषा को जानने का कोई साधन आज हमें उपलब्ध नहीं है। हाँ, साहित्यक वैदिक के आधार पर हम उसका कुछ अनुमान अवश्य ही कर सकते हैं।

वैदिक भाषा की ध्वनियाँ

वैदिक भाषा की ध्वनियाँ मूलभारोपीय ध्वनियों से कई बातों से भिन्न हैं -

1. मूलभारोपीय तीन मूलह्रस्व स्वर - अ, ऐ, ओं के स्थान पर वैदिक में केवल एक 'अ' ही मूल ह्रस्व स्वर शेष है।
2. मूलभारोपीय तीन मूल दीर्ध स्वरों - आ, ऍं, ओ के स्थान पर वैदिक में केवल एक 'आ' ही मूल दीर्घ शेष है।

हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि

3. मूलरूपों में प्राप्त न् म् अन्तस्थ ध्वनियों का वैदिक में लोप हो गया है।
4. मूलभारोपीय में तीन प्रकार की कवर्ग ध्वनियाँ थीं, किन्तु वैदिक में एक ही प्रकार की कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्) ध्वनियाँ हैं।
5. मूलभारोपीय में ववर्ग तथा टवर्ग का नितान्त अभाव था, जबकि वैदिक ध्वनियों में ये दो वर्ग आ मिले जिसका कारण द्रविड़ भाषा का प्रभाव है।
6. मूलभारोपीय में एक ही 'स्' (ऊष्म) ध्वनि थी। वैदिक में इसके साथ ही श् तथा ष् ये दो (ऊष्म) ध्वनियाँ और आ जुड़ी हैं।

वैदिक ध्वनि-समूह

मूलस्वर	-	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ल , ए आ	=	11
संयुक्त स्वर	-	ऐ, (अई), और (अउ)	=	2
कण्ट	-	क्, ख्, ग्, घ्, ङ्., (कवर्ग)	=	5
तालव्य	-	च्, छ्, ज्, झ्, ञ् (चवर्ग)	=	5
मूर्धन्य	-	ट्, ठ्, ड्, ळ्, ढ्, ळ्ह्, ण्, (टवर्ग)	=	7
दन्त	-	त्, थ्, द्, ध्, न्, (तवर्ग)	=	5
ओष्ठ्य	-	प्, फ्, ब्, भ्, म्, (पवर्ग)	=	5
दन्तोष्ठ्य	-	व्	=	1
अतस्थ	-	य्, र्, ल्, व्	=	4
शुद्ध अनुनासिक	-	अनुस्वार (-)	=	1
संघर्षी	-	श्, ष्, स् ह्, (क्, ख्, से पूर्व अर्द्धविसर्गसदृश)		
		जिह्वामुलीय, (प्, फ् से पूर्व अर्द्धविसर्ग सदृश) उपध्मानीय	=	6
			कुल =	52

वैदिक भाषा की विशेषताएँ

प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है। प्रत्येक भाषा अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण अपना प थक् अस्तित्व रखती है। किसी भाषा की ऐसी विशेषताएँ ही उसे अन्य भाषाओं से प थक् करती हैं। इस द ष्टि से वैदिक भाषा की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ यहाँ प्रस्तुत हैं :-

1. वैदिक भाषा में स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ उच्चारण के साथ ही उनका प्लुत उच्चारण भी होता है; जैसे, आसी त्, विन्दती इत्यादि।
2. वैदिक भाषा में 'ल ' स्वर का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।

3. वैदिक भाषा में संगीतात्मक स्वरघात का बहुत महत्व है। इसमें तीन प्रकार के स्वर हैं - उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। वैदिक मंत्रों के उच्चारण में इनका ध्यान रखना अनिवार्य होता है। स्वर-परिवर्तन से शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है। 'इन्द्रशत्रुः' इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। भाषा विज्ञान की द ष्टि से भी वैदिक भाषा की स्वराघात प्रधानता का बहुत महत्व है।

4. वैदिक भाषा की व्यद्रजन ध्वनियों में ळ् और ळह् दो ऐसी ध्वनियाँ हैं, जो उसे अन्य भाषा से प थक् करती हैं; जैसे 'इळा', 'अग्निमीळे' आदि में।

5. प्राचीन वैदिक भाषा में 'ल्' के स्थान पर प्रायः 'र्' का व्यवहार मिलता है; जैसे - 'सलिल' के स्थान पर 'सरिर'।

6. वैदिक भाषा में सन्धि-नियमों में पर्याप्त शिथिलता द ष्टिगोचर होती है। अनेक बार सन्धि-योग्य स्थलों पर भी सन्धि नहीं होती और दो स्वर साथ-साथ प्रयुक्त हो जाते हैं; जैसे - 'तितउ' (अ, उ) 'गोओपशा' (ओ, औ)

7. वैदिक भाषा में शब्द रूपों में पर्याप्त अनेकरूपता मिलती है। उदाहरण के लिए प्रथमा विभक्ति, द्विवचन, 'देवा' और 'देवौ', प्रथमा विभक्ति बहुवचन में 'जनाः' और जनासः, त तीय विभक्ति बहुवचन में 'देवैः' और 'देवेभिः' दो-दो रूप मिलते हैं। यह विविधता अन्य रूपों में भी मिलती है।

8. यही विविधता धातुरूपों में भी उपलब्ध है। एक ही 'कृ' धातु के लट्-लकार, प्रथम पुरुष में- 'कृणुते', 'करोति', 'कुरुते', 'करति' आदि अनेक रूप मिलते हैं।

9. धातुओं से एक ही अर्थ में अनेक प्रत्यय लगते हैं। जैसे, एक ही 'तुमुन्' प्रत्यय के अर्थ में 'तुमुन्', 'से', 'सेन', 'असे', 'असेन्', 'कसे', 'कसेन्', 'अध्यै', 'अध्यैन्', 'कध्यै', 'कध्यैन', 'शध्यैन', 'शध्यैन्', 'तवै', 'तवैड्', और 'तवैड्', और 'तवेन्'- ये 16 प्रत्यय मिलते हैं।

10. वैदिक भाषा में उपसर्गों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से होता था। उदाहरणार्थ अभित्वा पूर्वपीतये स जामि'', (ऋग्वेद यहाँ 'अभि' उपसर्ग का प्रयोग 'स जामि' क्रियापद से प थक् स्वतन्त्र रूप से हुआ है। इसी प्रकार ''मानु षान्-अभि'' (ऋ. 'अभि' स्वतन्त्ररूप से प्रयुक्त है।)

11. पदरचना की द ष्टि से वैदिक भाषा श्लिष्टयोगात्मक है। सम्बन्धतत्व (प्रत्यय) के जुड़ने पर यहाँ अर्थतत्व (प्रकृति) में कुछ परिवर्तन तो हो जाता है, किन्तु अर्थतत्व तथा सम्बन्धतत्व को प थक्-प थक् पहचाना जा सकता है। जैसे - 'ग हाणाम्', यहाँ 'ग ह' प्रकृति तथा 'नाम्' प्रत्यय स्पष्ट रूप से पहचाने जाते हैं।

    संक्षेप में, वैदिक भाषा में प्रयोगों की अनेकरूपता को देखने से प्रतीत होता है कि आज वैदिक भाषा का जो स्वरूप हमें उपलब्ध होता है, वह तत्कालीन अनेक बोलियों का मिला-जुला रूप है, जिनमें देश-भिन्नता तथा काल-भिन्नता, दोनों का ही होना संभव है। संभवतः, उस काल की जनसामान्य की विविध बोलियों का ही, हिन्दी में खड़ी बोली के समान, एक परिनिष्ठित साहित्यिक रूप वह वैदिक भाषा है, जो हमें आज 'ऋग्वेद' आदि में उपलब्ध होती है।

संस्कृत भाषा

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का दूसरा 'संस्कृत' है। इसी को 'लौकिक संस्कृत' या 'क्लासिकल संस्कृत' भी कहा जाता है। यूरोप में जो स्थान 'लैटिन' भाषा का है, वही स्थान भारत में संस्कृत का है। भारत में 'रामायण' 'महाभारत' से भी पहले से लेकर आज तक संस्कृत में साहित्य रचना हो रही है। गुप्तकाल में संस्कृत की सर्वाधिक उन्नति हुई थी। इसका साहित्य विश्व के सम द्धतम साहित्यों में से एक है। 'वाल्मीकि', 'व्यास', 'कालीदास', आदि इसकी महान् विभूतियाँ हैं। विश्व-विख्यात महाकवि कालीदास का 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' नाटक संस्क त भाषा श्रंगार है। विश्व की अनेक भाषाओं में संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हुआ है।

भाषा विज्ञान की द ष्टि से संस्कृत का महत्व बहुत अधिक है। संस्कृत के अध्ययन के कारण ही यूरोप में आधुनिक युग में 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' का प्रारम्भ हुआ है।

संस्कृत का विकास उत्तरी भारत में बोली जाने वाली वैदिककालीन भाषा से माना जाता है, यद्यपि भारत के मध्य भाग तथा पूर्वी भाग की बोलचाल की भाषाओं का प्रभाव भी उसपर रहा होगा। लगभग 8 शताब्दी ई. पू. में इसका प्रयोग साहित्य में होने लगा था। यह वह अवस्था है, जब संस्कृत की आधारभूत भाषा का प्रयोग बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा दोनों के रूप में हो रहा था। अनुमान किया जाता है कि लगभग ई. पू. 5 वीं शताब्दी या कुछ क्षेत्रों में उसके बाद तक संस्कृत की आधारभूत यह भाषा बोली जाती थी और तब तक उत्तर भारत में कई अन्य ऐसी बोलियाँ भी जन्म ले चुकी थीं, जिनसे आगे चलकर अनेक प्राकृतों, अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास हुआ है।

लगभग ई. पू. 5 वीं शताब्दी या 7 वीं शताब्दी में 'पाणिनी' ने संस्कृत की उस आधारभूत भाषा को व्याकरण के नियमों से बद्ध करके एकरूपता प्रदान की ओर यह भाषा 'संस्कृत' कहलाने लगी। अर्थात् अपने स्वाभाविक विकास के कारण, नियन्त्रण के **हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि** अभाव में जो भाषा प्राकृत (विकृत) रूप में चल रही थी, वह तब 'संस्कृत' हो गयी। उसका संस्कार कर दिया गया, उसे शुद्ध रूप प्रदान कर दिया गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस काल में 'संस्कृत' साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर रही थी, उस समय भारत में स्वयं साहित्यिक संस्कृत की आधारभँत बोली तथा उससे मिलती-जुलती कई अन्य बोलियाँ भी व्यवहार में थी, किन्तु उन सबमें 'संस्कृत' ही शिष्ट, साहित्यिक या राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी।

संस्कृत ध्वनियां

वैदिक भाषा में 52 ध्वनियां थी, संस्कृत में ध्वनियों की संख्या केवल 8 है। अर्थात् वैदिक भाषा की ध्वनियाँ - ळ्, ळ ह, जिह्वामँलीय तथा उपध्मानीय-संस्कृत में नहीं मिलती हैं।

इसके साथ ही अनेक ध्वनियों के उच्चारण में परिवर्तन भी मिलता है। उदाहरण के लिए (1) वैदिक में 'ऋ' और 'ल ' का उच्चारण स्वर ध्वनियों के रूप में था, किन्तु संस्कृत में इनकी स्वरता नष्ट हो गयी और इनका उच्चारण 'र्' और 'ल्' व्यद्रजनों जैसा होने लगा। (2) दन्तोष्ठय 'व्' का उच्चारण भी अन्तस्थ 'व्' जैसा ही हो गया है। (3) वैदिक भाषा की शुद्ध 'अनुस्वार (-) ध्वनि भी संस्कृत में अनुनासिक हो गयी है। (4) 'ऐ' तथा 'औ' का उच्चारण संयुक्त स्वरों जैसा न होकर मूलस्वरों-जैसा होने लगा।

संस्कृत भाषा की विशेषताएँ

संस्कृत, लौकिक संस्कृत वा क्लास्किल संस्कृत की सबसे प्रमुख विशेषता पाणिनिकृत नियमबद्धता है। संस्कृत की विशेषता ही उसे वैदिक से प थक् करती है। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, वैदिक भाषा में शब्दरूपों तथा क्रिया-रूपों की विविधता है, सन्धि-नियमों आदि में भी पर्याप्त शिथिलता है। एक ही अर्थ में विभिन्न प्रत्ययों का प्रयोग है, आदि-आदि। इन सब के साथ ही वैदिक भाषा में अपवादों की संख्या भी बहुत अधिक है तथा भाषा में स्वच्छन्दता की प्रव ति द ष्टिगोचर होती है।

इसके विपरीत, संस्कृत या लौकिक संस्कृत बहुत ही नियमबद्ध तथा नियन्त्रित है। उसकी विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता हैः-

1. वैदिक भाषा में प्रयुक्त ळ्, ळ्ह्, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ध्वनियों का संस्कृत में लोप हो गया है।
2. पाणिनिकृत नियमों (अष्टाध्यायी-सूत्रों) के द्वारा उसमें शब्द-रूपों तथा क्रियारूपों में एकरूपता आ गयी है।
3. 'लट्' लकार का प्रयोग समाप्त हो गया है।
4. एक ही अर्थ में प्रयुक्त अनेक प्रत्ययों के स्थान पर केवल एक ही प्रत्यय का प्रयोग रूढ़ हो गया; जैसे तुमुन्', 'क्त्वा' आदि।

5. अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग बन्द हो गया; जैसे- 'दर्शत्' (=सुन्दर), 'द शीक' (=सुन्दर), 'रपस्' (=चोट, दुर्बलता, रोग), 'अमूर' (=बुद्धिमान्) 'मूर' (=मूढ़), 'ऋदूदर' (=दयालु), 'अक्तु' (=रात्रि), 'अमीवा' (=व्याधि) आदि।
6. अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग संस्कृत में भिन्न अर्थों में होने लगा; जैसे-

	शब्द		वैदिक-अर्थ		संस्कृत-अर्थ
1.	अराति	=	शत्रुता	=	शत्रु
2.	अरि	=	ईश्वर, धार्मिक शत्रु,	=	केवल शत्रु
3.	न	=	उपमावाचक (जैसा), निषेधवाचक (नहीं)	=	निषेधवाचक (नहीं)
4.	मळीक	=	कृपा	=	शिव का एक नाम
5.	क्षिति	=	ग ह, निवासस्थान बस्ती, मनुष्य	=	प थ्वी
6.	वध	=	भंयकर शस्त्र	=	हत्या करना आदि - आदि

7. सन्धि-कार्य अनिवार्य-सा हो गया।
8. उपसर्गो का स्वतन्त्र प्रयोग बन्द हो गया।
9. स्वरों में 'ल ' प्रायः लुप्त-सा हो गया। स्वरों का उदत्त-अनुदत्त और स्वरित उच्चारण समाप्त हो गया।
10. स्वरभक्ति अप्रचलित हो गयी ।

इस प्रकार वैदिक भाषा की अपेक्षा संस्कृत भाषा अधिक नियमित एवं व्यवस्थित हो गयी तथा वैदिक भाषा की अपेक्षा संस्कृत के रूप में पर्याप्त परिवर्तन हो गया। इस परिर्वतन को जानने के लिए यहाँ दोनों की तुलना प्रस्तुत करना आवश्यक है।

(ख) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ

लौकिक संस्कृत एक तरफ व्याकरण का आधार पाकर अपने निश्चित रूप में स्थिर हो गई, तो दूसरी तरफ लोक-भाषा तेजी से विकसित हो रही थी। इसी विकास के परिणामस्वरूप प्राकृत भाषा का विकास-काल ई. पू. 500 से 1000 ई. माना जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के तीन रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं-

(क) **पाली :** यह प्राकृत का प्रारम्भिक रूप है जिसका समय 500 ई० पू० के प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ तक माना गया है। इसकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि संस्कृत की उत्पत्ति प्राकृत से हुई है। एक अन्य मत के अनुसार संस्कृत के समानान्तर, लोकभाषा से इसका उद्‌भव हुआ है। इसमें प्रथम मन्तव्य अधिक उपयुक्त लगता है।

पाली-व्युत्पति : इसकी व्युत्पति के विषय में विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने ढंग से विचार प्रस्तुत किए गए हैं -

1. भिक्षु सिद्धार्थ के अनुसार पाठ > पालि।
2. भिक्षु जगदीश काश्यप के अनुसार परियाय (बुद्ध उपदेश) > पलियाय > पालियाय > पालि
3. आचार्य विधु शेखर के अनुसार पंक्ति > पंति > पंति > पल्लि > पालि।
4. डॉ० मेक्स वेलसन के अनुसार पाटिल (पटना) > पाडलि > पालि।

विशेषताएँ

1. इसमें से ऋ, ल , ऐ, औ, श, ष, तथा विसर्ग आदि वैदिक ध्वनियाँ लुप्त हो गई हैं।

2. पाली में प्रायः संस्कृत की ए ध्वनि ऐ और ओ ध्वनि औ हो गई है; यथा-कैलाश > केलाश, गौतम > गोतम।
3. इसमें विसर्ग सन्धि नहीं है।
4. पाली में तीनों लिंग हैं।
5. द्विवचन की व्यवस्था नहीं है।
6. इसमें बलाघात का प्रयोग होता है।
7. पाली में परम्परागत तद्भव शब्दों की बहुलता है।

(ख) **प्राकृत :** इसे द्वितीय प्राकृत और साहित्यिक प्राकृत भी कहते हैं। इसका काल प्रथम ृशताब्दी से 5वीं शताब्दी तक है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके भिन्न-भिन्न रूप विकसित हो गये थे।

1. **मागधी :** इसका विकास मगध के निकटवर्ती क्षेत्र में हुआ। इसमें कोई साहित्यिक कृति उपलब्ध नहीं है।

विशेषताएँ

1. इसमें -, स का - रूप हो जाता है; यथा - सप्त > -त्त, पुरू- > पुलिस।

हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि

2. इसमें र का ल हो जाता है; यथा - पुरुष > पुलिश
3. ज के स्थान पर य हो जाता है, यथा - जानाति > याणदि।

2. **अर्ध-मागधी :** यह मागधी तथा शौरसेनी के मध्य बोली जाने वाली भाषा थी। यह जैन साहित्य की भाषा थी। भगवान महावीर के उपदेश इसी में है।

विशेषताएँ

1. इसमें श, ष, स के लिए केवल स का प्रयोग होता हैः यथा- श्रावक > सावग।
2. इसमें दन्त्य ध्वनियाँ मँर्धन्य हो जाती है; यथा - स्थिर > ठिय।
3. स्पर्श ध्वनि के लोप पर य श्रुति मिलती है; यथा- सागर > सायर, गगन > गयन

3. **महाराष्ट्री :** इसका मँल स्थान महाराष्ट है। इसमें प्रचुर साहित्य मिलता है। गाहा सत्तसई (गाथा सप्तशती), गडवहो (गौडवधः) आदि काव्य ग्रन्थ इसी भाषा में है।

विशेषताएँ

1. स्वर बाहुल्य और संगीतात्मकता है।
2. श, ष, स, का ह हो जाता है; यथा - दश > दह, दिवस > दिवह।
3. दो स्वरों के मध्य व्यंजन लोप हो जाता है; यथा- रिपु > रिन्न, नुपँर > णेउर।
4. क्ष का च्छ हो जाता है; यथा- इक्षु > इच्छु।
5. कुछ महाप्राण ध्वनियाँ ह में परिवर्तित हो जाती है; यथा- शाखा > शाहा, अथ > अह।

4. **पैशाची :** इसका क्षेत्र कश्मीर माना गया है। ग्रियर्सन ने इसे दरद से प्रभावित माना है। साहित्यक रचना की द ष्टि से यह भाषा शून्य है।

विशेषताएँ

1. सघोष ध्वनियाँ अघोष हो जाती हैः यथा- नगर > नकर।
2. र और ल का विपयर्य हो जाता है; यथा- कुमार > कुमाल, रूधिर > लुधिर।
3. ष का स या श हो जाता है; यथा- तिष्ठति > तिश्तदि, विषम > विसम।

5. **शौरसेनीः** यह मध्य की भाषा थी। इसका केन्द्र मथुरा था। नाटकों में स्त्री-पात्रों के संवाद इसी भाषा में होते थे। दिगम्बर जैन से सम्बधित धर्मग्रन्थ इसी में रचे गए हैं।

विशेषताएँ

1. इसमें क्ष का क्ख हो जाता है; यथा- चक्षु > चक्खु।
2. इसमें न ध्वनि ण हो जाती है; यथा- नाथ > णाथ।
3. इसमें आत्मनेपद लगभग समाप्त है, केवल परस्मैपद मिलता है।

(ग) अपभ्रंश : इसका शाब्दिक अर्थ है - विकृत या भ्रष्ट। इसका प्राचीनतम रूप भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश के कुछ पद मिलते हैं। अपभ्रंश में अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं हुई हैं; यथा- विद्यापति कृत कीर्तिलता, अद्दहमाण कृत संदेश-रासक आदि। इसका समय 500 ई. से 1000 ई. तक माना जाता है, किन्तु इसमें कुछ एक रचनाएं 14वीं और 15वीं शताब्दी तक होती रही हैं।

विशेषताएँ

1. ऋ ध्वनि लेखन में थी, उच्चारण में लुप्त हो चुकी थी।
2. श, ष के स्थान पर प्रायः स का प्रयोग होता है।
3. इसमें उ ध्वनि की बहुलता है; यथा- जगु, एक्कु, कारणु आदि।
4. म के स्थान पर वँ ध्वनि होती है; यथा- कमल > कँवल।
5. क्ष का क्ख हो जाता है; यथा- पक्षी > पक्खी।
6. य ध्वनि ज हो जाती है; यथा- यमुना > जमुना, युगल > जुगल।
7. नपुंसक लिंग और द्विवचन लुप्त हो चुके हैं।
8. इसमें तद्भव शब्दों की बहुलता मिलती है।

(ग) आधुनिक भारतीय भाषाओं का परिचय

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उद्भव 1000 ई. के लगभग हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं का काल तब से अब तक माना गया है। इस काल में प्रयुक्त भाषाओं की गणना आधुनिक भारत आर्यभाषाओं में की जाती है। इस वर्ग की भाषाओं के विकास के कुछ समय पश्चात् से सम्बन्धित साहित्य प्राप्त होता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों में हुआ है। इसलिए इन दोनों वर्गों की भाषाओं में पर्याप्त समता है और अनेक भिन्न विशेषताओं का भी विकास हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर इन्हें अन्य वर्ग की भाषाओं से अलग कर सकते हैं।

विशेषताएँ : भाषाई इकाइयों के स्तर पर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताओं को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

(क) ध्वनि सम्बन्धी विशेषताएँ

पूर्वकालिक भाषाओं की ध्वनियों के आधार पर इस काल की भाषा की ध्वनियों में कुछ प्रमुख विकास इस प्रकार हुए हैं -

1. ''ऋ'' का लिखित रूप में प्रयोग होता है, किन्तु उच्चारण स्वर के रूप में न होकर ''रि'' के रूप में होता है। ''ऋ'' का लिखित रूप में प्रयोग प्रायः तत्सम शब्दों में होता है; यथा- ऋषि, ऋतु आदि।
2. ऊष्म व्यंजन ध्वनियों-श, ष, स का लिखित रूप में पूर्ववत् प्रयोग होता है, किन्तु उच्चारण में ''श'' और ''स'' दो ही ध्वनियाँ हैं। ''ष'' ध्वनि का उच्चारण अब लगभग ''श'' के ही समान होता है; यथा-

कोष > ''कोश, ऋषि > ''रिशि, दोष > ''दोश। वर्तमान समय में ''कोष'' के स्थान पर ''कोश'' शब्द का लिखित रूप भी प्रचलित हो गया है।

3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में ''ड'', ''ढ'' के साथ ''ड़'' और ''ढ़'' मूर्धन्य ध्वनियों का विकास हो गया है। इसके प्रयोग द्रष्टव्य हैं- सड़क, तड़क, पढ़ना, गढ़ना आदि। इन ध्वनियों के लिखित तथा उच्चारित रूपों का स्पष्ट प्रयोग होता है।
4. ''ज्ञ'' संयुक्ताक्षर का शुद्ध उच्चारण ''ज्ञ'' है, किन्तु आज इसके उच्चारण बदलकर ग्य, ग्यँ, ज्यँ रूप हो गए हैं; यथा- ज्ञान > ग्यॉन, ज्ञापन > ग्यापन, ग्यॉपन, ज्यॉपन। इनमें ''ग्य'' तथा ग्यँ के तो पर्याप्त प्रयोग मिलते हैं, जबकि ज्यँ का अत्यन्त सीमित प्रयोग होता है।
5. विदेशी भाषाओं के प्रभाव के परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं में कुछ विदेशी ध्वनियों को स्थान मिल गया है। मुस्लिम प्रभाव वाली भाषाओं की क़, ख़, ग़, ज़, फ़ आदि ध्वनियाँ आ गई हैं, तो अंग्रेजी की आँ ध्वनि को भी स्थान मिल गया है।
6. शब्दों के अन्त का ''अ'' स्वर प्रायः लुप्त हो जाने से उनकी स्थिति व्यंजनांत हो जाती है; यथा- आज >''आज्, नाम > नाम्, तन > तन् आदि।
7. शब्दों के मध्य का ''अ'' स्वर भी लुप्त होने लग गया है; यथा- किसका > किस्का, उसका > उस्का, उतना > उत्ना आदि।
8. संयुक्त व्यंजनों में क्षतिपूरक दीर्घाकरण नियम के अनुसार एक व्यंजन का लोप होता है और पूर्व ऊस्व स्वर का दीर्घीकरण हो जाता है; यथा- कर्म > कम्म > काम, सप्त > सत्त > सात आदि। सिन्धी तथा पंजाबी भाषाएं इस संदर्भ के लिए अपवादस्वरूप हैं। इसमें प्राकृत भाषा की ध्वनियों का अपरिवर्तित रूप आज भी प्रयुक्त होता है; यथा- कर्म > कम्म, अष्ट > अट्ठ आदि।

(ख) शब्द सम्बन्धी विशेषताएँ

1. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में शब्द वर्ग मुख्यतः तत्सम, तद्भव तथा देशज थे, किन्तु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में विदेशी शब्द-वर्ग विशेष रूप से उभर कर सामने आया है। इस वर्ग में अरबी, फारसी, तुर्की तथा अंग्रेजी के शब्द मुख्य हैं। इन सभी भाषाओं के शब्द तत्सम तथा तद्भव दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं; यथा-

   तत्सम शब्द-अगर, इमाम, डॉक्टर, टाइम, टी.वी. आदि।
   तद्भव शब्द-कर्ज, जादा, रेल, लालटेन, कप्तान आदि।

2. आधुनिक युग में मध्ययुग की अपेक्षा तत्सम शब्दों का प्रयोग कहीं अधिक होता है। मध्ययुग में तद्भव शब्दों की संख्या आज की अपेक्षा कहीं अधिक थी। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।
3. आधुनिक युग में अनुकरणात्मक शब्दों के ध्वन्यात्मक तथा प्रति-ध्वन्यात्मक आदि वर्गों के शब्दों का प्रयोग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक होने लगा है। आजकल इस वर्ग के शब्दों के बहुल प्रयोग होने के कारण एक-एक शब्द के लिए दो या दो से अधिक प्रतिध्वन्यात्मक शब्दों का प्रचलन हो गया है; यथा-चाय-शाय/वाय/चूय आदि।
4. इस वर्ग की भाषाओं में परिभाषिक शब्द पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हुए हैंः यथा- अनहद, हठयोग, तदर्थ आदि।
5. आधुनिक युग में एक साथ अनेक भाषाओं का प्रयोग होने लगा है इसलिए इसमें सकर शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र मिल जाते हैं; यथा- रेलगाड़ी, बेकाम, कर्जदार आदि।

(ग) व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के व्याकरण सम्बन्धी तथ्यों में भी पर्याप्त भिन्नता आ गई है। इस संदर्भ की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (संस्कृत) तथा मध्ययुगीन भारतीय आर्य भाषाएँ नाम तथा धातु दोनों ही द ष्टियों से संयोगात्मक थीं, जबकि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ वियोगात्मक हो गई हैं। पँर्व की भाषाओं की संयोगावस्था तथा वर्तमान की वियोगात्मक की परसर्गों के नामरूपों के साथ प्रयोग तथा सहायक क्रियाओं के धातु रूपों के साथ प्रयोग में देख सकते हैं; यथा-

प्राचीन भा. आ. भाषा (संस्कृत)	**आधुनिक भा. आ. भा. (हिन्दी)**
रामः रावणाय अलम्	राम रावण के लिए पर्याप्त है।
रमेशः विद्यालयं गच्छति	रमेश विद्यालय जाता है।
त्व. आगच्छ।	तुम जाओ/आ जाओ।

2. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (संस्कृत) में स्त्रीलिंग, पुल्लिंग तथा नपुंसक तीनों लिंगों का प्रयोग होता था। अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं में स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग का ही प्रयोग मिलता है। तीन लिंगों का प्रयोग अब मात्र गुजराती तथा मराठी में मिलता है। लिंग-प्रयोग के संदर्भ में बंगला, उड़िया, असमी, बिहारी में सिमटती हुई लिंग-भेद स्थिति रेखांकन योग्य है।

3. संस्कृत में तीन वचनों का प्रयोग होता था, जो आज भी संस्कृत में प्रयुक्त होता है। भाषा-विकास म में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में द्विवचन का प्रयोग समाप्त हो गया है। अब दो वचनों - एक वचन और बहुवचन के ही रूप रह गए हैं; यथा- बालक > लड़का; बालकौ, बालकाः > लड़के।

   वर्तमान समय की कुछ भाषाओं में एकवचन तथा बहुवचन शब्दों के लिए एक ही रूप का प्रयोग शुरू हो गया है। हिन्दी की कुछ बोलियों में ''मैं'' के लिए भी ''हम'' शब्द एकवचन तथा बहुवचन दोनों रूपों में प्रयुक्त होता है। बहुवचन को स्पष्ट करने के लिए कभी-कभी ''हम'' के साथ ''लोग'' या ''सब'' शब्द का प्रयोग कर ''हम लोग'' या ''हम सब'' बना लिया जाता है।

4. संस्कृत में कारकों के तीनों वचनों में भिन्नता होने के कारण 24 में रूप बनते हैं। यथा- ''राम'' शब्द प्रथमा-रामः रामौ रामाः सप्तमी-रामे रामयाः रामेषु आदि। आधुनिक भाषाओं में इसका सीमित प्रयोग भाषा की सरलता का आधार बन गया है। संस्कृत में क्रिया सम्बन्धी काल तथा लकारों में भी बहुत विविधता रहती थी, जबकि आधुनिक भाषाओं में यह भिन्नता अपेक्षाकृत कहीं कम ही कर सरल हो गई है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ : विकास एवं परिचय

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से हुआ है। इस संदर्भ में अपभ्रंश के सात रूप उल्लेखनीय हैं।

अपभ्रंश		**आधुनिक भा. आ. भाषाएँ**
1. शौरसेनी	-	पश्चिमी हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी
2. महाराष्टी	-	मराठी
3. मागधी	-	बिहारी, बंगला, उड़ीया, असमी
4. अर्ध मागधी	-	पूर्वी हिन्दी
5. पैशाची	-	लहंदा, पंजाबी
6. ब्राचड़	-	सिन्धी
7. खस	-	पहाड़ी

1. **पश्चिमी हिन्दी :** इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसमें बाँगरू (हरियाणवी) खड़ी-बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी तथा बुन्देली पाँच मुख्य बोलियाँ मिलती हैं।

   (क) **बाँगरू :** बाँगरू नाम एक खेत्र विशेष, जो ऊंची भूमि से सम्बन्धित हो उसे ''बाँगर'' कहते हैं, के आधार पर हुआ है। इसे जाटँ, देसाड़ी और हरियाणवी नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। आजकल इसे प्रायः हरियाणवी ही कहते हैं। हरियाणा में इसी बोली का प्रयोग होता है। हरियाणा का उद्‌भव भी हिन्दी की इसी बोली हरियाणवी के आधार पर हुआ है। हरियाणा का सीमा-निर्धारण भी इसी बोली हरियाणवी के आधार पर हुआ है। इस बोली के उद्‌भव के विषय में माना जाता है कि खड़ी-बोली पर पंजाबी तथा राजस्थान के प्रभाव के आधार पर यह रूप सामने आया है। इस बोली के लोक-साहित्य का सम द्ध भण्डार है। इस बोली की लिपि देवनागरी है।

   बाँगरू को निम्नलिखित मुख्य उप वर्गों में विभक्त कर सकते हैं-

   (1) **बाँगरू :** यह केन्द्रीय बोली है। इसका केन्द्र रोहतक है। इस बोली का प्रयोग दिल्ली के निकट तक होता है। इसमें क्रिया ''है'' का ''सै'' के रूप में प्रयोग होता है। णकार बहुला बोली होने के कारण ''न'' ध्वनि प्रायः ''ण'' के रूप में प्रयुक्त होती है। श, ष्ज्ञ, स का स्थान ''स'' ध्वनि ने ले लिया है।

   (2) **मेवाती :** मेव-क्षेत्र विशेष के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी है। इस बोली का प्रयोग झज्जर, गुड़गाँव, बाबल तथा नूह के कुछ अंश में होता है। इसे ब्रज, राजस्थानी और बाँगरू का मिश्रित रूप मान सकते हैं। इसमें ''ण'' और ''ल'' का बहुत प्रयोग मिलता है। एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए ''ए'' के स्थान ''आँ'' का प्रयोग करते हैं; यथा-छोहरा > छोहरूं।

   (3) **ब्रज :** ब्रज क्षेत्र इसके नामकरण का आधार है। पलवल इसका केन्द्र है। इस बोली में ड और ल ध्वनि प्रायः ''र'' हो जाती है-

   ल > र काला > कारा

   ड > र कीड़ी > कीरी

   यह बोली ओकारान्त बहुला है-

   खाया > खायो

   गया > गयो

   (4) **अहीरवाटी :** रेवाड़ी और महेन्द्रगढ़ का मध्य क्षेत्र इसका केन्द्र स्थल है। नारनौल से कोसाली तक और दिल्ली से आस-पास तक इस बोली का प्रयोग होता है। इसे मेवाती, राजस्थानी बाँगरू और बागड़ी का मिश्रित रूप मान सकते हैं। इसमें अकारात संज्ञा प्रायः ओकारान्त के रूप में मिलती है; यथा-था > था।

   (5) **बागड़ी :** बागड़ी संस्कृति से जुड़ी इस बोली का क्षेत्र भिवानी, हिसार, सिरसा के अतिरिक्त महेन्द्रगढ़ के कुछ भाग तक फैला है। इसकी लोप क्रिया बाँगरू के समान है; यथा अहीर > हीर, उठाना > ठाना, अनाज > नाज बहुवचन बनाने के लिए ''आँ'' प्रत्यय का प्रयोग होता है; जैसे-बात > बातॉं।

   (6) **कौरवी :** उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर के अतिरिक्त हरियाणा के सोनीपत, पानीपत और करनाल तक इसका क्षेत्र फैला है। इसमें खड़ी-बोली की प्रव त्ति मिलती है; यथा-है, ना (पाना, खाना)। व्यंजनों में द्वित्वीकरण प्रव त्ति है; यथा-लोप-प्रक्रिया रोचक है-अनार > नार, उतार > तार।

(7) **अम्बावली :** इसका प्रयोग क्षेत्र अम्बाला, यमुनानगर तथा कुरूक्षेत्र तक विस्त त है। अम्बावली और कौरवी में बहुत कुछ साम्य है। वैसे इस पर पंजाबी, पहाड़ी तथा बाँगरू इसमें महाप्राण ध्वनि बलाघात से अल्पप्राण हो जाती है; यथा- हाथ > हात, साथ > सात आदि लोप प्रक्रिया के समान है।

(ख) **खड़ी-बोली :** इस बोली का प्रयोग दिल्ली और पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के कुछ जिलों में होता है। इसके दो रूप हैं-एक साहित्यिक हिन्दी, दूसरा उसी क्षेत्र की लोक-बोली। ''खड़ी-बोली'' के नाम के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों का कहना है कि इसके खड़ेपन (खरेपन) अर्थात् शुद्धता के कारण इसे ''खड़ी-बोली'' कहते हैं, तो कुछ विद्वानों का कहना है कि खड़ी पाई (आ की मात्रा 'ा') के बहुल प्रयोग (आना, जाना, खाना आदि) के कारण इसे खड़ी-बोली की संज्ञा दी जाती है। इसका क्षेत्र दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, बिजनौर, मुरादाबाद तथा रामपुर के अतिरिक्त इनके समीपस्थ जनपदों के आंशिक भागों तक फैला हुआ है। खड़ी-बोली में साहित्य की दो शैलियाँ हैं- पहली उर्दू प्रभावित, दूसरी तत्सम शब्दावली बहुला परिनिष्ठित शैली। भारत की राजभाषा, राष्ट्र-भाषा में भी इसी रूप को अपनाया गया है। वर्तमान समय में हिन्दी की साहित्यिक रचना मुख्यतः इसी में हो रही है।

(ग) **ब्रज-भाषा :** ब्रज क्षेत्र विशेष में बोली जाने वाली बोली को ब्रज-भाषा कहते हैं। ब्रज-भाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, मैनपुरी आदि जनपदों में बोली जाती है। हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में ब्रजभाषा को साहित्य रचना का मुख्य आधार बनाया गया इसमें रचना करने वाले मुख्य साहित्यकार हैं-सूरदास, नन्ददास, बिहारी, केशव तथा घनानन्द आदि। यह भाषा माधुर्य गुण सम्पन्नता के लिए प्रसिद्ध है।

(घ) **कन्नौजी :** यह कन्नौज विशेष क्षेत्र की बोली है, जिसका प्रयोग इटावा, फरुखाबाद, शाहजहाँपुर, हरदोई तथा कानपुर आदि जनपदों में होता है। कन्नौजी में लोक-साहित्य मिलता है, किन्तु साहित्यिक रचना का अभाव है।

(ड.) **बुन्देली :** बुन्देलखण्ड में बोली जाने के कारण इसे बुन्देली कहते हैं। इसका क्षेत्र झांसी, छतरपुर, ग्वालियर, जालौन, भोपाल, सागर आदि जनपदों तक फैला हुआ है। इसमें साहित्यिक रचना का अभाव है, किन्तु सम द्धशाली लोक साहित्य है।

2. **गुजराती :** गुजराती का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। यह गुजरात की प्रान्त भाषा है। इस क्षेत्र में विदेशियों का आगमन विशेष रूप से होता है इसलिए इस पर विदेशी भाषा का प्रभाव पड़ा है। प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द का जन्म बारहवीं शताब्दी में गुजरात में हुआ था। गुजराती के आदि कवि नरसिंह मेहता आज भी सम्माननीय स्थान है। गुजराती में पर्याप्त साहित्य मिलता है। इसकी लिपि पहले देवनागरी थी, अब देवनागरी से विकसित लिपि गुजराती है।

3. **राजस्थानी :** यह राजस्थान क्षेत्र या प्रदेश की भाषा है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके अंतर्गत चार प्रमुख बोलियाँ आती हैं- मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी।

(क) **मेवाती :** मेव जाति के क्षेत्र मेवाती के नाम पर यह बोली मेवाती कहलाई है। यह अलवर के अतिरिक्त हरियाणा के गुड़गाँव जनपद के कुछ अंश में बोली जाती है। ब्रज-क्षेत्र से लगे होने के कारण इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। इसमें सम द्ध लोक-साहित्य मिलता है।

(ख) **जयपुरी :** यह राजस्थान के पूर्वी भाग जयपुर, कोटा तथा बूंदी आदि क्षेत्रों में बोली जाती है। इस क्षेत्र को ढँढाण कहने के आधार पर इसे ढुँढणी की भी संज्ञा दी जाती है। इसमें लोक-साहित्य मिलता है। इसमें दादू पंथियों का पर्याप्त साहित्य मिलता है।

(ग) **मारवाड़ी :** यह पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, अजमेर, जैसलमेर तथा बीकानेर आदि जनपदों में बोली

जाती है। पुरानी मारवाड़ी को डिंगल कहते हैं। इसमें साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनों ही रचा गया है। इसके प्रसिद्ध कवि हैं-नरपति नाल्ह और पथ्वीराज। मध्यकाल में मीराबाई ने इसी भाषा में रचना की थी।

(घ) **मालवी :** राजस्थान के दक्षिणी पर्व में स्थित मालवा क्षेत्र के नाम पर इसे मालवी कहते हैं। इन्दौर, उज्जैन तथा रतलाम आदि जनपद इसके क्षेत्र में आते हैं। इसमें सीमित साहित्य तथा पर्याप्त लोक-साहित्य मिलता है। चन्द्र-सखी इसकी प्रसिद्ध कवयित्री है।

4. **मराठी :** इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। महाराष्ट्र क्षेत्र या प्रदेश के नाम पर ही महाराष्ट्री और नाम पड़ा हैं विस्तत क्षेत्र में बोली जाने के कारण चार विभिन्न क्षेत्रों में इसके चाररूप उभर आए हैं मराठी का अपना समद्ध साहित्य है। नामदेव, ज्ञानेश्वर, रामदास तथा तुकाराम आदि इसके प्रमुख कवि हैं। इसमें पर्याप्त सन्त साहित्य है। इसकी लिपि देवनागरी है।

5. **बिहारी :** इसका विकास मागधी से हुआ है। बिहारी क्षेत्र या प्रदेश में विकाशित होने के कारण इसका नाम बिहारी रखा गया है। यह हिन्दी भाषा का ही रूप है। इसके अन्तर्गत भोजपँरी, मैथिली, मगही तीन प्रमुख बोलियाँ आती हैं।

(क) **भोजपूरी :** जनपदीय क्षेत्र भोजपूर इसका मुख्य केन्द्र होने के कारण इसका यह नाम पड़ा है। यह बिहार तथा उत्तर-प्रदेश के सीमावर्ती जिलों भोजपुर, राँची, सारन, चम्पार, मिर्जापुर, जौनपुर, बलिय, गोरखपुर, बस्ती आदि में बोली जाती हैं। इसमें सीमित साहित्य, किन्तु समद्ध लोकसाहित्य मिलता है।

(ख) **मैथिली :** जनपदीय क्षेत्र की भाषा होने के आधार पर इसे मैथिली नाम दिया गया है। इसके क्षेत्र में दरभंगा, सहर और मुजफ्फरपुर तथा भागलपुर जनपद आते हैं। इसमें पर्याप्त साहित्य मिलता है। इसे सम्पन्न भाषा मान सकते है। इस भाषा को लोक-साहित्य भी अपने सरस रूप के लिए प्रसिद्ध है। मैथिल कोकिल विद्यापति ने इसी भाषा में अपनी अधिकांश कृतियों का सजन किया है।

(ग) **मगही:** ''मागधी'' से विकसित होकर मगही शब्द बना है। ''मगाध'' क्षेत्र की भाषा होने के आधार पर इसे मागधी या मगाही नाम दिया गया है। गया जनपद के अतिरिक्त पटना, भागलपुर, हजारीबाग तथा मुंगेर आदि जनपदांशों में भी यही बोली जाती है।

6. **बंगला :** इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। बंगला इसका क्षेत्र हैं गाँव तथा नगर की बंगला में भिन्नता है। इसी प्रकार पँर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्र की बंगला में भी भिन्नता है। पूर्वी बंगला का मुख्य केन्द्र ढाका है, जो अब बंगलादेश में है। हुगली नदी के निकट क्षेत्र की नगरीय बंगला ही साहित्यक भाषा बन गई है। परम्परागत तत्सम शब्दों की संख्या सर्वाधिक रूप में बंगला में ही मिलती है।

इसकी अनेक विशेषताओं में ''अ'' तथा ''स'' का ''श'' उच्चारण प्रसिद्ध है। बंगला साहित्यिक दष्टि से सम्पन्न भाषा है। रविन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द्र, बंकिमचन्द्र, चण्डीदास तथा विजयगुप्त आदि इस भाषा के प्रमुख साहित्यकार हैं। प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री ''बंगाला'' का उद्भव एवं विकास के लेखक डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी का नाम भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसकी लिपि बंगला है, जो पुरानी नागरी से विकसित हुई है। देवनागरी और बंगला लिपि में पर्याप्त साम्य है।

7. **उड़िया :** उड़िया का विकास मागधी अप्रभ्रंश से हुआ है। उड़िसा प्रदेश की भाषा होने के कारण इसे उड़िया कहा जाता है। उड़ीसा को ''उत्काल' नाम से संबोधित किया जाता था, इसलिए इसे ''उत्कली'' भी कहते हैं। उड़िया का शुद्ध रूप ओड़िया है इसलिए इसे ''ओड़ी'' भी कहते है। बंगला तथा उड़िया भाषा में पर्याप्त समानता है। इस भाषा पर मराठी तथा तेलुगू का काफी प्रभाव है, क्योंकि यह क्षेत्र एक लम्बे समय तक ऐसे भाषा-भाषी राज्याओं के शासन में रहा है। इसमें परम्परागत तत्सम शब्द पर्याप्त रूप से कृष्ण भक्तिपरक रचनाएँ मिलती हैं। इसकी लिपि उड़िया है, पुरानी नागरी से विकसित हुई है।

8. **असमी :** मागधी अपभ्रंश से विकसित भाषाओं में असमी एक भाषा है। असमी, आसामी, असमीया, असामी आदि नामों से जानी जाने वाली यह भाषा आसाम या असम प्रान्त की भाषा है। इसमें तथा बंगला में बहुत कुछ साम्य है। यह साहित्य सम्पन्न भाषा है। इसके प्राचीन साहित्य में ऐतिहासिक ग्रन्थों का विशेष महत्व है। इसके प्रसिद्ध साहित्यकार हैं-शंकरदेव, महादेव तथा सरस्वती आदि। इसकी लिपि बंगला है, किन्तु इसमें कुछ एक ध्वनि चिह्न सुधार लिए गए हैं।

9. **पूर्वी-हिन्दी :** पूर्वी हिन्दी का विकास अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र के पूर्व में होने से इसी पूर्वी हिन्दी का नाम दिया गया है। इसकी कुछ विशेषताएं पश्चिमी हिन्दी से मिलती है, तो कुछ बिहारी वर्ग की भाषाओं से। इसे तीन बोलियों-अवधी, बघेली, और छत्तीसगढ़ में विभक्त करते हैं।

   (क) **अवधी :** यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोली है। अवध (अयोध्या) क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे अवधी कहते हैं। प्राचीन काल में अवध को ''कोशल'' भी कहा जाता था, इसलिए इसे कोसली भी कहते हैं। विस्त त क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे तीन उपवर्गो में विभक्त करते हैं। इसके क्षेत्र इस प्रकार हैं-

      1. **पूर्वी अवधी :** फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, मिर्जापुर गोंडा।
      2. **केन्द्रीय अवधी :** रायबरेली, बाराबंकी।
      3. **पश्चिमी अवधी :** लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव, फतेहपुर, खीरीलखीमपुर। अवधी में साहित्य तथा लोक-साहित्य की परम सम द्ध परम्परा है। ठेठ तथा साहित्यिक अवधी में उन्नत साहित्य की रचना हुई है। मुल्लादाउद, कुतुबन, मलिक मुहम्मद जायसी, तुलसीदास आदि अवधी के प्रमुख कवि हैं।

   (ख) **बघेली :** बघेल खण्ड में बोली जाने के कारण इसे बघेली नाम दिया गया है। इसे बघेलखण्डी भी कहते हैं। इसका केन्द्र रीवाँ है। रीवाँ के आसपास शहडोल, सतना आदि में भी इसका प्रयोग होता है। इसमें लोक-साहित्य मिलता है।

   (ग) **छत्तीसगढ़ी :** छत्तीसगढ़ी के नाम पर इसे छत्तीसगढ़ी कहते हैं। रायपुर, विलासपुर, खैरागढ़ तथा कांके आदि तक इसका क्षेत्र माना गया है। इसमें पर्याप्त लोक-साहित्य मिलता है।

10. **लहँदा :** इसका विकास पैशाची अपभ्रंश से हुआ है। लहँदा का अर्थ है-पश्चिमी। अब वह पश्चिमी पंजाब जो पाकिस्तान है, की भाषा है। यह पश्चिमी, पंजाबी, जटकी तथा 'हिन्दकी' के नाम से भी जानी जाती है। इस पर पंजाबी तथा सिन्धी भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इसकी कई बोलियां विकसित हो गई हैं। इसकी लिपि लंडा है, किन्तु आजकल इसे गुरुमुखी या फारसी में लिखते हैं। इसमें उन्नत या विकसित साहित्य का अभाव है।

11. **पंजाबी :** पैशाची अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है। यह पंजाब प्रान्त की भाषा है। पंजाब क्षेत्र की भाषा के कारण इसका नाम पंजाबी हुआ है। यह सिक्ख-साहित्य की मुख्य भाषा है। इस पर दरद का प्रभाव है। इस भाषा का केन्द्र अम तसर है। पंजाबी भाषा की विभिन्न बोलियों में अधिक अन्तर नहीं है। इसमें सम द्ध लोक-साहित्य है। वर्तमान समय में इससे सम्बन्धित साहित्यकार साहित्यिक रचना में गतिशील हैं। उसकी लिपि गुरुमुखी है।

12. **सिन्धी :** इसका विकास ब्राचड़ या ब्राचट अपभ्रंश से हुआ है। सिन्ध क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे सिन्धी कहा गया है। सिन्ध क्षेत्र में सिन्धु नदी के तटीय भागों में यह भाषा बोली जाती है। इसकी कई बोलियाँ हैं, जिनमें बिचौली मुख्य है। इसका साहित्य अत्यन्त सीमित है। सिन्धी भाषा की लिपि लंडा है, किन्तु आजकल इसके लेखन में फारसी लिपि का भी प्रयोग किया जाता है।

13. **पहाड़ी :** इसका विकास 'खस' अपभ्रंश से हुआ है। इसका क्षेत्र हिमालय के निकटवर्ती भाग नेपाल से लेकर शिमला तक फैला है। कई बोलियों वाली इस भाषा को तीन उपवर्गों में विभक्त करते हैं -

(क) **पश्चिमी पहाड़ी :** इसमें शिमला के आस-पास चम्बाली, कुल्लई आदि बोलियाँ आती हैं।

(ख) **मध्य पहाड़ी :** इसमें कुमायूं तथा गढ़वाल का भाग आता है। नैनीताल तथा अल्मोड़ा में बोली जाने वाली कुमायूनी तथा गढ़वाल, मंसूरी में बोली जाने वाली गढ़वाली बोलियाँ मुख्य हैं।

(ग) **पूर्वी पहाड़ी :** काठमाण्डू तथा नेपाल की घाटी में यह भाषा बोली जाती है। पहाड़ी बोलियों का सम द्ध लोक-साहित्य है। इसकी लिपि मुख्यतः देवनागरी है।

(घ) **आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण :** विश्व के समस्त भाषा-कुलों में भारतीय भाषाकुल का और इसमें भारतीय आर्य भाषाओं का विशेष महत्व है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से मध्ययुगीन भारतीय, आर्य भाषाओं का उद्‌भव और उससे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है। वर्तमान समय की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में पर्याप्त विकास हुआ है। इसकी विभिन्न शाखाओं में भरपूर साहित्य रचना हो रही है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर इस परिवार की विभिन्न भाषाओं का वर्गीकरण किया गया है। वर्गीकरण प्रस्तुत करने वाले मुख्य भाषा-वैज्ञानिक हैं-हार्नलें, बेबर, ग्रियर्सन, डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, श्री सीताराम चतुर्वेदी, डॉ० भोलानाथ तिवारी आदि।

1. **हार्नले द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण :** भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के संबंध में प्रथम नाम हार्नले का आता है। उन्होंने आर्य के विषय में एक सैद्धान्तिक तथ्य सामने रखा है कि आर्य बाहर से भारत में दो बार आए हैं। इनके भारत प्रथम आगमन का मार्ग सिन्धु पार कर पंजाब से रहा है। दूसरी बार इनका आगमन कश्मीर की ओर से हुआ है। दूसरी बार आर्यों के आगमन पर पूर्वकाल में आए आर्य देश के कोने-कोने में फैल गए। दँसरी बार आए आर्य देश के मध्य भाग में बस गए। इस प्रकार हार्नले ने आर्यों के बहिरंग तथा अंतरंग वर्गों के आधार पर ही उनकी भाषाओं को भी वर्गीकृत किया है। इस आधार पर हार्नले ने अंतरंग और बहिरंग दो वर्ग बनाए।

   हार्नले ने "Comparative Grammer of the Gaudian Languages" में एक भिन्न वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने विभिन्न दिशाओं के आधार पर भाषा-सीमा बनाने का प्रयत्न किया है। ये भाषा वर्ग हैं-

   1. **पूर्वी गौडियन :** पूर्वी हिन्दी (बिहारी सहित), बंगला, उड़ीसा, असमी।
   2. **पश्चिमी गौडियन :** पश्चिमी हिन्दी (राजस्थानी सहित), गुजराती, सिन्धी, पंजाबी।
   3. **उत्तरी गौडियन :** पहाड़ी (गढ़वाली, नेपाली आदि)
   4. **दक्षिणी गौडियन :** मराठी।

   इस कार हार्नले द्वारा प्रस्तुत किया गया आधुनिक भारतीय भाषाओं का आदि वर्गीकरण भले ही विस्त त और पूर्ण वैज्ञानिक नहीं सिद्ध हो सका है, किन्तु इसका अपना विशेष महत्व है; इस वर्गीकरण की मुख विशेषता यह है कि परिवर्ती वर्गीकरण अल्पाधिक रूप में इस पर आधारित है।

2. **ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण :** जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का समुचितसर्वेक्षण करके उनकी विशेषताओं के आधार पर वर्गीकरण करने का यत्न किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए दो वर्गीकरण इस कार हैं-

(क) **प्रथम वर्गीकरण :** ग्रियर्सन ने हार्नल के बाह्य और आन्तरिक सिद्धान्त-वर्गीकरण को आंशिक आधार बनाकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण किया है। उन्होंने इस वर्गीकरण में समस्त भाषाओं को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया है। उनके वर्गीकरण को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं-

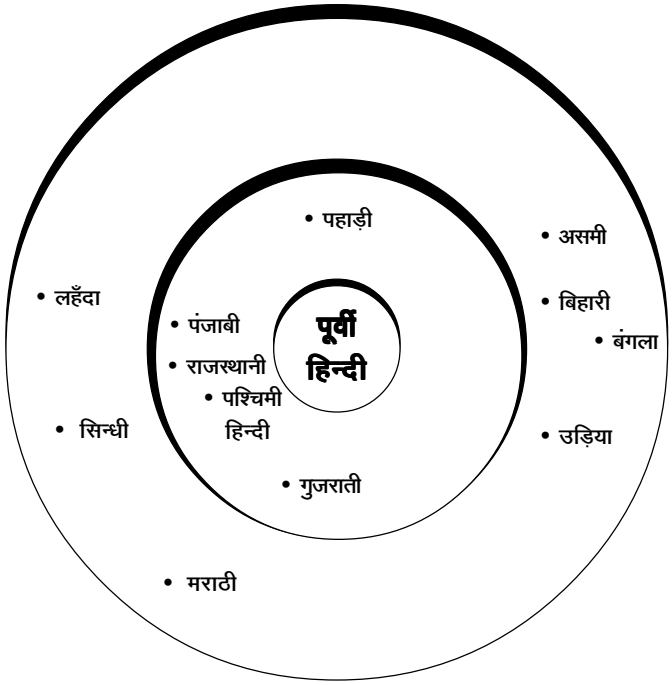

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत प्रथम वर्गीकरण

1. **बाहरी उपशाखा :** **(क) पश्चिमोत्तर वर्ग :** लहँदा, सिन्धी।
   (ख) दक्षिणी वर्ग : मराठी।
   (ग) पूर्वी वर्ग : **उड़िया, बंगला, असमी, बिहारी।**
2. **मध्यवर्ती उपशाखा मध्यवर्ती वर्ग :** पूर्वी हिन्दी।
3. **भीतरी उपशाखा :** **(क) केन्द्रीय वर्ग :** पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी (भीली, खानदेशी)
   (ख) **पहाड़ी वर्ग :** नेपाली (पूर्वी पहाड़ी), मध्य पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी।

ग्रियर्सन के मतानुसार विभिन्न उपशाखाओं में विभक्त भाषाओं की ध्वनियों, शब्दों तथा उनके व्याकरणिक रूपों में पर्याप्त भिन्नता है। उन्हीं आधारों पर उन्होंने विभिन्न भाषाओं को उपशाखाओं में विभक्त किया है। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी और डॉ० भोलानाथ तिवारी ने इस वर्गीकरण की विभिन्न द ष्टियों से आलोचना की है। इस वर्गीकरण के आधार और विशेषताओं पर आलोचनात्मक द ष्टिकोण से इस कार विचार कर सकते हैं।

(क) **ध्वन्यात्मक विशेषताएँ -** ग्रियर्सन ने बाहरी उपशाखा की कुछ ऐसी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ, रेखांकित की हैं, जो भीतरी उपशाखा में नहीं हैं; यथा-

1. उनके अनुसार बाहरी उपशाखा की भाषाओं में इ, उ तथा ए स्वरांत शब्दों की उक्त ध्वनियों का लोप नहीं होता है।

   यदि भीतरी उपशाखा की भाषाओं की ऐसी शब्दान्त ध्वनियों के विषय में देखें तो पाएँगे कि उनका लोप वहाँ भी नहीं होता; यथा-पति, पशु, मिले आदि।

2. इस शाखा में इ ध्वनि ए और उ ध्वनिओं में परिवर्तित हो जाती है। ऐसा ध्वनि-परिवर्तन बाहरी शाखा

की भाषाओं में ही नहीं, भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिलता है; यथा-इ > ए : मिलना > मेल, तिल > तेल, उ > ओ : सुखाना > सोखना, मुग्ध > मोह, तुही > तोही।

3. उक्त शाखाओं की भाषाओं की ''इ'' तथा ''उ'' ध्वनि आपस में एक-दूसरे के प्रयोग स्थान पर युक्त होती है। भीतरी शाखा की भाषाओं में भी यदा-कदा ऐसे योग मिल जाते हैं; यथा-इ-उ : बिन्दु, बुन्द।

4. ग्रियर्सन के अनुसार ''ड'' और ''ल'' के स्थान पर ''र'' का योग होता है। ऐसी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ भीतरी शाखा की भाषाओं में भी यदाकदा मिल जाती है; यथा- ड > र : किवाड़ > किवार, पड़ गए > पर गए, सड़क > सरक ल > र : बल > बर, बिजली > बिजुरी, तले > तरे

   यह प्रव त्ति अवधी तथा ब्रज में पर्याप्त रूप से मिलने के साथ खड़ी-बोली में भी अल्पाधिक रूप में मिल जाती है।

5. उनकी मान्यता है कि बाहरी शाखा की भाषाओं में द तथा ड ध्वनियाँ आपस में एक-दूसरे के स्थान पर युक्त होती है।

   ऐसी प्रव त्ति तो भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिलती है; यथा- द > ड : दशन > डसना, दंड > डंड, ड्योढ़ी > देहली

6. बाहरी शाखा की भाषाओं में 'म्ब' से ''म'' ध्वनि का विकास माना गया है, साथ ही यह भी संकेत किया गया है कि भीतरी शाखा में ''म्ब'' का ''ब'' रूप होता है। दोनों उपशाखाओं के शब्दों की ध्वनियों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि इसके विपरीत व त्ति भी मिलती है। पश्चिमी तथा पँवीं हिन्दी में निम्ब से नीम, निबोली, जम्बुक से जामुन शब्द रूप हो जाते हैं; तो बंगला में निम्बुक से लेबू रूप हो जाता है।

7. उनके अनुसार बाहरी शाखा की भाषाओं में ''स'' ध्वनि श, ख, या ह के रूप में मिलती है। यदि बाहरी शाखा की पूर्वी वर्ग की बंगला तथा दक्षिणी वर्ग की मराठी भाषाओं में देखें तो यह ध्वनि ''श'' के रूप में प्रयुक्त होती है। बंगला की पूर्वी बोली तथा असमी में यह निर्बल ध्वनि ''ख'' के रूप में युक्त होती है। पश्चिमोत्तर वर्ग लहँदा तथा सिन्धी में यही ध्वनि ''ह'' के रूप में मिलती है।

   ग्रियर्सन द्वारा संकेत की गई उपशाखा की यह व त्ति भीतरी उपशाखा में भी मिलती है, यथा-द्वादश > बारह, केसरी > केहरी, पंच-सप्तति > पचहतर, कोस > कोह।

8. ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी शाखा की भाषाओं की महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण हो जाती हैं। यदि भीतरी शाखाओं की भाषाओं के विषय में चिन्तन करें तो यह परिवर्तन इसमें भी मिलता है; यथा-भंगिनी > बहन या बहिन, ईठा प्राकृत) (इष्टक) > ईट।

9. उनके अनुसार संयुक्त व्यंजन के मध्य स्थिति अर्ध-व्यंजन का लोप हो जाता है। क्षतिपूरक दीर्घीकरण नियमानुसार पूर्व वर्ण का रूप दीर्घ हो जाता है। भीतरी शाखा की भाषाओं में भी ऐसे ध्वनि-परिवर्तन मिल जाते हैं; यथा- कर्म > काम, सप्त > सात, हस्त > हाथ, चर्म > चाम आदि।

10. इसमें अंतरस्थ ''र'' का लोप हो जाता है। यह व त्ति भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिलती है; यथा- ओर > औ, पर > पै।

11. इसमें ही ''ए'' का ''ऐ'' और ''ओ'' का ''औ'' होने की बाबत कही गई है, भीतरी शाखा की भाषाओं के उच्चारण में यदा-कदा ऐसे परिवर्तन मिल जाते है; यथा- सेमैस्टर > सैमेस्टर।

12. बाहरी शाखा की भाषाओं में ''द'' और ''ध'' के ''ज'' और ''झ'' होने की बात कही गई है। ये परिवर्तन भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिल जाते हैं।

(ख) **व्याकरणिक विशेषताएँ**

1. ग्रियर्सन ने ''ई'' त्यय के योग के आधार पर बाहरी शाखा की भाषाओं को अलग किया है, किन्तु भीतरी शाखा की भाषाओं में ऐसी व ति संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि शब्दों के स्त्रीलिंग बनाने में मिलती है; यथा-

   संज्ञा : लड़का > लड़की, मामा > मामी, दादा > दादी।

   विशेषण : अच्छा > अच्छी, गन्दा > गन्दी, पीला > पीली।?

   क्रिया : जाता > जाती, रोता > रोती, गाता है > गाती है। क्रियाः जाता - जाती रोता, गाता है - गाती है।

2. उन्होंने बाहरी शाखा की भाषाओं के विशेषण शब्दों में ''ला'' तथा प्रयोग की बात कही है, जो भीतरी भाषाओं में मिलती है; यथा-

   पुल्लिंग विशेषणः गठीली, रंगीला, खर्चीला, कटीला।

   स्त्रीलिंग विशेषणः गठीली, रंगीली, खर्चीली, कँटीली।

3. ग्रियर्सन के अनुसार संस्कृत संयोगात्मक भाषा थी। उसके पश्चात की भाषाएँ क्रमशः वियोगात्मक होती गई है। बाहरी शाखा की भाषाओं में आगे के विकास की बात कही गई अर्थात् उसमें पुनः संयोगात्मक रूप विकासित हो गए है। ''राम की किताब'' का बंगला रूपान्तरण ''रामेर बाई होता है। इसके विपरीत भीतरी शाखा को भाषाओं के कारण रूपों के संयोगात्मक प्रयोग देख सकते है; यथा- अपने काम से मतलब है। तुमसे भी कहूँ। उनकी बात है।

4. क्रिया शब्दों तथा धातु रूपों में समानता की बात कही गई है। यह तथ्य न तो बाहरी शाखा की भाषाओं में पूर्णतः मिलता है और न ही भीतरी शाखा की भाषाओं में दोनों ही शाखाओं की भाषाओं में मिलने वाली ऐसी प्रव ति को भेदक आधार रूप में स्वीकार नही किया जा सकता है।

5. भूतकालिक क्रिया का रूप कर्त्ता के अनुरूप प्रयुक्त होता है। यह प्रव त्ति बाहरी शाखा की भाषाओं के अतिरिक्त पूर्वी हिन्दी में भी मिलती हैः यथा -

   हम इमलि खायेन - (मैंने इमली खाई)

   हम आम खायेन - (मैंने आम खाया)

   बाहरी शाखा की भाषाओं में यह प्रव त्ति केवल अकर्मक क्रिया के सन्दर्भ में ही मिलती है।

6. ग्रियर्सन के अनुसार भूतकालिक क्रिया के साथ आने वाला सर्वनाम क्रिया के साथ अन्तर्भूत होता है। बाहरी शाखा की सभी भाषाओं में यह प्रक्रिया नहीं मिलती है। इस प्रकार यह भी स्पष्ट भेदक आधार नहीं है।

7. बाहरी शाखा की भाषाओं के सभी वर्गो के शब्दों को सप्रत्यय माना है। यदि भीतरी शाखा की भाषाओं के शब्दों पर विचार करें तो ऐसी ही प्रकृति इसमें है; यथा - मै (मैंने), तै (तूने) बालहि (बालक को)।

(ग) **शब्द विशेषताएँ :** ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी शाखा की सभी भाषाओं के शब्दों में पर्याप्त समानता है। यदि तुलनात्मक द ष्टिकोण से भीतरी तथा बाहरी शाखाओं की विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करें, तो पाएँगे कि बंगला-लहँदा या बंगला-मराठी की अपेक्षा कहीं अधिक समता बंगला तथा हिन्दी में मिलती है। बिहारी तो वास्तव में हिन्दी का एक रूप है इस प्रकार बाहरी तथा भीतरी शाखाओं की भाषाओं

के विभिन्न शब्द-वर्गों और उनकी रचना में पर्याप्त समानता होने से वर्गीकरण का यह आधार भी वैज्ञानिक नहीं सिद्ध होता है।

(घ) **वंशानुगत विशेषताएँ :** आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बाहरी तथा भीतरी उपशाखा आधारित वर्गीकरण को पुष्ट आधार देने के लिए परिवार को दो उपवर्गों में विभक्त किया गया है। इस मन्तव्य के अनुसार बाहरी क्षेत्र के आर्य एक जाति के थे और भीतरी आर्य दूसरी जाति के थे। इस प्रकार भिन्न जाति के होने के कारण उनकी भाषा भी भिन्न बताई गई है। इस विचार के अनुसार बंगला, सिन्ध तथा महाराष्ट्र क्षेत्र के आर्य उत्तर-प्रदेश, गुजरात तथा राजस्थान आदि क्षेत्रों के आर्य दूसरी जाति के थे, किन्तु ऐतिहासिक द ष्टिकोण से यह मन्तव्य गलत सिद्ध होता है। इतिहास के अनुसार आर्य ही एक परिवार के थे।

द्वितीय वर्गीकरणः ग्रियर्सन ने बाद में हिन्दी को विशेष महत्व देते हुए एक नए ढंग का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है इस वर्गीकरण में विभिन्न भाषाओं की समान विशेषताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उनके इस वर्गीकरण को इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं-

(क) मध्य देशीय भाषाएँ - पश्चिमी हिन्दी

(ख) अन्तर्वत भाषाएँ - पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी (पश्चिमी हिन्दी से अधिक समता रखने वाली भाषाएँ); पँर्वी हिन्दी (बाहरी भाषाओं से समता रखने वाली भाषाएँ)

(ग) बाहरी भाषाएँ - 1. पश्चिमोत्तरी भाषाएँ - लहँदा, सिन्धी 2. दक्षिणी भाषा -मराठी 3. पूर्वी भाषाएँ - बिहारी, उड़िया, बंगला, असमी।

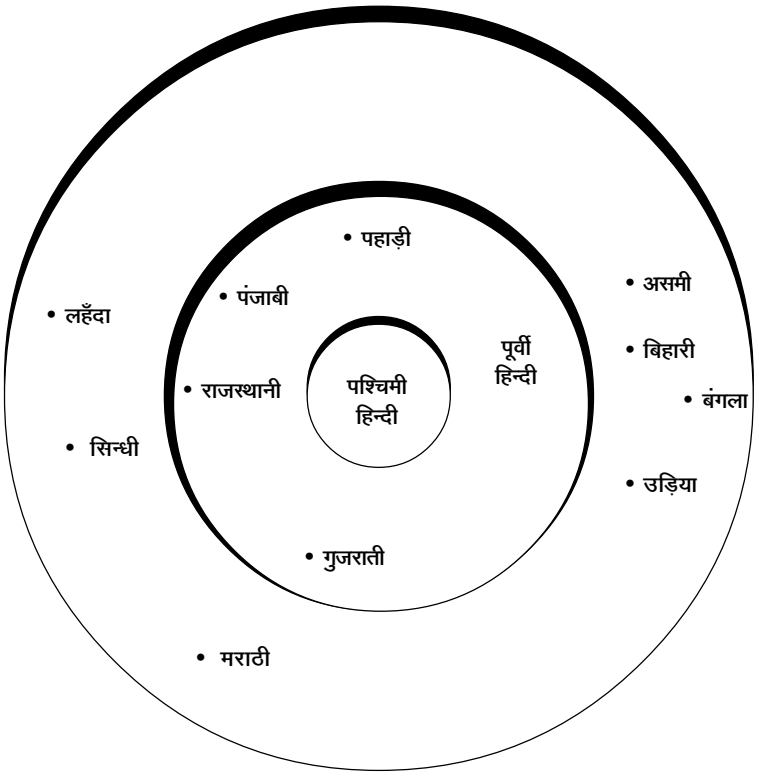

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ : ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण

डॉ० ग्रियर्सन के द्वारा किए गए दोनों ही वर्गीकरण पूर्ण वैज्ञानिक कोटि में नहीं आते हैं, क्योंकि प्रथम वर्गीकरण की दोनों उपशाखाओं की ध्वन्यात्मक, व्याकरणिक तथा शब्दगत विशेषताओं में स्पष्ट भेदक रेखा खींचना संभव नहीं है। आर्यों को बाहरी तथा भीतरी दो जातियों में विभक्त करना इतिहास के तथ्यों के विपरीत है। इनके द्वारा प्रस्तुत द्वितीय वर्गीकरण अधिक उपयोगी तथा अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अब तक हुए वर्गीकरणों में ग्रियर्सन का वर्गीकरण निश्चय ही महत्वपूर्ण है। इस वर्गीकरण के माध्यम से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की विभिन्न भाषाई विशेषताओं के अध्ययन का अवसर मिल जाता है।

(ङ) डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण : डॉ. चटर्जी ने ओरिजन एण्ड डेवलपमेण्ड ऑफ बेंगाली लैंगवेज (ODBL) में डॉ. ग्रियर्सन द्वारा किए गए आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बाहरी और भीतरी वर्गीकरण के ध्वन्यात्मक, व्याकरणिक तथा शब्दगत आधारों की आलोचना की है। इस प्रकार उदाहरण पुष्ट आलोचना करने से जहाँ ग्रियर्सन के वर्गीकरण की वैज्ञानिकता तथा उसकी सीमा स्पष्ट होती है, वहीं नए वर्गीकरण का आधार बनता है। इसी पुस्तक में उन्होंने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की आपसी समीपता तथा पारस्परिक विशेषताओं को महत्त्व देते हुए उनको वर्गीकृत किया है। इस वर्गीकरण में उन्होंने वैदिक काल से वर्तमान समय तक मध्यक्षेत्र की भाषा की महत्ता-संकेत करते हुए उसी भाषा को वर्गीकरण का आधार बनाया है। वर्तमान समय में पश्चिमी हिन्दी उसी महत्त्वपूर्ण भूमिका के रूप में सामने आती है। इस प्रकार सर्वप्रथम मध्य प्रदेश भाषा वर्ग बनाकर उसमें पश्चिमी हिन्दी रखी गई। पश्चिमी हिन्दी के पश्चिम क्षेत्र की भाषाओं – गुजराती तथा राजस्थानी को समता के कारण ये एक साथ पश्चिमी भाषा-वर्ग में रखी गई हैं। समता की द ष्टि से सिन्धी तथा लहँदा के साथ ही पंजाबी भाषा भी एक वर्ग में रखी गई हैं। इस वर्गीकरण में भी मराठी एक अलग दक्षिणी वर्ग में रखी गई है। पूर्वी वर्ग में आने वाली बिहारी, बंगला, असमी तथा उड़िया के साथ ही पूर्वी हिन्दी रखी गई है; यथा –

(क) उत्तरी (उदीच्य) वर्ग -

1. सिन्धी।
2. लहँदा।
3. पंजाबी।

(ख) पश्चिमी (प्रतीच्य) वर्ग -

4. गुजराती।
5. राजस्थानी।

(ग) मध्य (मध्यदेशीय) वर्ग -

6. पश्चिमी हिन्दी।

(घ) पूर्वी (प्राच्य) वर्ग -

7. पूर्वी हिन्दी।
8. बिहारी।
9. बंगला।
10. असमी।
11. उड़िया।

(ङ) दक्षिणी (दक्षिणात्य) वर्ग -

12. मराठी।

इस वर्गीकरण की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

(क) **डॉ. ग्रियर्सन, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा** आदि ने भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण में ''पहाड़ी'' भाषा को महत्त्व देते हुए मध्य शाखा के उपवर्ग तथा उत्तरी भाषा के रूप में स्थान दिया है। **डॉ. चटर्जी** के वर्गीकरण में ''पहाड़ी'' का नाम न आने से उनके द्वारा उस भाषा को महत्त्व न देने की बात स्पष्ट होती है। उन्होंने पहाड़ी को दरद तथा तथा राजस्थानी भाषा को सम्मिलित रूप माना है।

(ख) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के संदर्भ में ग्रियर्सन तथा कुछ अन्य भाषा वैज्ञानिकों ने भीली तथा खानदेशी को स्वतंत्र भाषा के रूप में स्वीकार कर एक वर्ग में स्थान दिए है। **डॉ. चटर्जी** ने इन दोनें ही भाषाओं को स्वतंत्र रूप में स्वीकार नहीं किया है। इस कारण इन्हें वर्गीकरण में स्थान नहीं मिल सका है।

(ग) यह वर्गीकरण विभिन्न भाषाओं की समान विशेषताओं के आधार पर किया गया है, इसलिए सुविधा-जनक है।

इस वर्गीकरण के विषय में डॉ. **सरयू प्रसाद अग्रवाल** ने भाषा विज्ञान और हिन्दी (द्वितीय संस्करण) के प ष्ट 138 पर अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है - ''यह अन्धानुकरण नहीं वरन् विशेषताओं की द ष्टि से समीचीन वर्गीकरण है।'' डॉ. अग्रवाल ने इस वर्गीकरण की सरलता को स्पष्ट करते हुए आगे कहा है - ''सुविधा की द ष्टि से श्रेयस्कर है।''

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण में **डॉ. चटर्जी** के वर्गीकरण का अपना महत्त्व है।

अध्याय - 7
हिन्दी और उसका विकास

7.1 हिंदी की उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

भारत का उत्तर और मध्य देश बहुत समय पहले से हिंदी-क्षेत्र नाम से जाना जाता है। हिंदी-प्रयोग-क्षेत्र के विस्त त होने के कारण अध्ययन सुविधा के लिए उसे विविध वर्गो में विभक्त किया गया है। जॉर्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने हिंदी के मुख्य दो उपवर्ग बनाए हैं - (1) पश्चिमी हिंदी, (2) पूर्वी हिंदी। उन्होंने बिहारी को अलग भाषा के रूप में व्यवस्थित किया है।

हिंदी भाषा के ऐतिहासिक और स्त्रोत-आधार पर अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश की शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी और खस शाखाओं से हिंदी का विकास विविध क्षेत्र में हुआ है। इसे मुख्यतः पाँच उपवर्गो में विभक्त कर सकते हैं -

1. पश्चिमी हिंदी, 2. पूर्वी हिंदी, 3. बिहारी हिंदी, 4. राजस्थानी हिंदी, 5. पहाड़ी हिंदी।

1. पश्चिमी हिंदी

इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत में मध्य भारत के कुछ अंश तक फैला है। अर्थात् उत्तरांचल प्रदेश के हरिद्वार, हरियाणा से लेकर उत्तर प्रदेश के कानपुर के पश्चिमी भाग तक है। आगरा से लेकर मध्य क्षेत्र ग्वालियर और भोपाल तक है। क्षेत्र-विस्तार के कारण पश्चिमी हिंदी में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इसमें मुख्यतः पाँच बोलियों के रूप मिलते हैं।

(क) **कौरवी** - प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को कुरू प्रदेश कहते थे। इसी आधार पर इसका कौरवी नाम पड़ा है। इसे पहले खड़ी-बोली नाम भी दिया जाता था। अब खड़ी-बोली हिंदी का पर्याय रूप है। खड़ी-बोली नामकरण के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि खड़ापन (खरेपन) शुद्धता के आधार पर है, तो कुछ भाषाविदों का कहना है कि खड़ी-पाई (आ की मात्रा 'ा') के प्रयोग (आना, खाना, चलना, हँसना) आधार पर खड़ी-बोली नाम पड़ा है।

वर्तमान समय में इसका प्रयोग दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फर नगर, रामपुर, बिजनौर, सहारनपुर (उ.प्र.) हरिद्वार, देहरादून (उत्तरांचल), यमुना नगर, करनाल, पानीपत (हरियाणा का यमुना तटीय भाग) में होता है।

कौरवी की विशेषताएँ –

1. क्रिया रूप अकारांत होता है; यथा - आना, खाना, दौड़ना, हँसना, फैलना और सींचना आदि।
2. कर्ता परसर्ग 'ने' का प्रयोग स्पष्ट रूप में होता है।
3. कहीं-कहीं पर 'न' के स्थान पर 'ण' ध्वनि का का प्रयोग मिलता है।
4. इसमें तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलता है।
5. अरबी और फारसी के शब्द यत्र-तत्र मिलते हैं।

वर्तमान हिंदी का स्वरूप इसी बोली को आधार मान कर विकसित हुआ है। हिंदी को राजभाषा, राष्ट्रभाषा और जनभाषा का रूप देने में इस बोली की विशेष भूमिका है।

(ख) **ब्रजभाषा** - ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति और रीतिकाल में इस भाषा में पर्याप्त सहित्य रचा गया है। उस काल में अवधी और ब्रज में ही मुख्यतः रचना होती थी। रीतिकाल ब्रजभाषा ही रचना की आधार भाषा थी। इसीलिए इसे हिंदी के रूप में स्वीकृति मिली थी। विशेष महत्त्व मिलने के कारण ही 'ब्रज बोली' कहना अनुकूल नहीं लगता वरन् 'ब्रजभाषा' कहना अच्छा लगता है।

इसका केन्द्र स्थल आगरा और मथुरा है। वैसे इसका प्रयोग अलीगढ़ और धौलपुर तक होता है। हरियाणा के गुड़गाँव और फरीदाबाद के कुछ अंश और मध्य प्रदेश के भरतपुर और ग्वालियर के कुछ भाग में ब्रज का प्रयोग होता है।

इसकी कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं –

1. पद-रचना में ओकार और औकार बहुला रूप है; जैसे -
   खाया > खायौ > गया > गयो या गयौ।
2. बहुवचन में 'न' का प्रयोग होता है; यथा - लोग > लागन; बात > बातन।
3. 'उ' विपर्यय रूप मिलता है; जैसे - कुछ > कछु।
4. संबंध कारकों के विशेष रूप मिलते हैं -
   मेरो, तेरो, हमारो, तिहारो, आदि।
5. तद्भव शब्दों की बहुलता है।
6. वर्तमान समय में अरबी, फारसी के साथ अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

इसके प्रमुख कवि हैं - **सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, केशव, बिहारी, भूषण** और **रसखान** आदि।

हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रज की बलवती भूमिका रही है।

(ग) **हरियाणवी** - इसे बाँगारू या हरियानी नाम भी दिया जाता है। किन्तु जब हरियाणवी ही सर्वप्रचलित और मान्य हो गया है। हरियाणा प्रदेश का उद्भव और नामकरण बोली के आधार पर हुआ है। हरियाणवी हरियाणा के सभी जिलों में बोली जाती हैं। हरियाणवी और कौरवी में पर्याप्त समानता है। हरियाणा की सीमा उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राजस्थान से लगी हुई है। इस प्रकार इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में निकट की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रभाव के साथ हरियाणवी विशेष चर्चा हेतु इसे सात उपवर्गो में विभक्त कर सकते हैं।

(1) **केन्द्रीय हरियाणवी** - इसका केन्द्र रोहतक है। सामान्य उदाहरण देने हेतु प्रायः इसी रूप का उल्लेख किया जाता है। 'णकार' बहुला रूप होने के कारण 'न' के स्थान पर प्रायः 'ण' का प्रयोग किया जाता है। 'ल' के स्थान पर 'ळ' विशेष ध्वनि सुनाई देती है; यथा - बालक > बाळक क्रिया 'है' के स्थान पर 'सै' का प्रयोग होता है।

(2) **ब्रज हरियाणवी** - फरीदाबाद और मथुरा के मध्य के हरियाणा के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। ब्रज का रंग स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें 'ओ' ध्वनियों की बहुलता है; यथा- खायौ, खायोः गयो, गयो; नाच्यो, नाच्यौ आदि।

'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग मिलता है - काला > कारा, बिजली > बिजुरी आदि।

(3) **मेवाती हरियाणवी** - मेव क्षेत्र के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी

है। इसमें झज्जर, गुड़गाँव, बावल और नूह का क्षेत्र आता है। इसमें, हरियाणवी, ब्रज और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें 'ण' और 'ल' ध्वनि की बहुलता है।

4. **अहीरवाटी हरियाणवी** – रेवाड़ी और महेन्द्रगढ़ का क्षेत्र अहीरवाल है। इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ हैं। नारनौल से कोसली तक इसका स्वरूप मिलता है। इसमें मेवाती, राजस्थानी (बागड़ी) का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें ओकार बहुल रूप मिलता है; यथा- था >थो।

5. **बागड़ी हरियाणवी** – इसका क्षेत्र हिसार और सिरसा है। भिवानी जिले का पर्याप्त क्षेत्र इस बोली के अन्तर्गत आता है। इसे केन्द्रीय हरियाणी और राजस्थान (बागड़ी) का मिश्रित और विकसित रूप मान सकते है। बहुवचन रचन में आँ' प्रत्यय का योग मिलता है; यथा- बात >बाताँ। लोप का बहुल रूप सामने आता है; जैसे-अहीर > हीर, अनाज ठाना , नाज, उठाना।

6. **कौरवी हरियाणवी** – कौरवी क्षेत्र से जुड़ें हरियाणा के भाग में इस उपबोली का रूप मिलता है। यमुना नगर, कुरूक्षेत्र, करनाल और पानीपत के कुछ भाग में इसका प्रयोग होता हैं। आकारांत शब्दों का बहुल प्रयोग मिलता है; यथा- खाना, धोना, सोना आदि।

7. **अबदालवी हरियाणवी-** अम्बाला इसका मुख्य केन्द्र है। इस उपबोली पर पंजाबी भाषा का स्पष्ट प्रमुख दिखाई देता है। इसमें महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है- हाथ > हात, साथ >सात। लोप की बहुलता भी दिखाई देती है- क पया >क प्या, मिनट > मिन्ट।

(घ) **कन्नौजी** – कन्नौजी नामकरण कन्नौज क्षेत्र के नाम से हुआ हैं। इसका प्रयोग फर्रूखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, पीलीभीत हैं इटावा और कानपुर के पश्चिमी भाग में भी इसका प्रयोग होता है। इसका क्षेत्र अवधी और ब्रज के मध्य है। इस पर ब्रज का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

(ङ) **बुंदेली** – बुंदेलखंड में बोली जाने के कारण इसे बुंदेली बोली की संज्ञा दी गयी हैं इसके प्रयोग क्षेत्र में झांसी, छतरपुर ग्वालियर, भोपाल, जालौन का भाग आता है। इसमें और ब्रज बोली में पर्याप्त समानता है।

2. पूर्वी हिंदी

पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी के पूर्व में स्थित होने के कारण इसे पूर्वी हिंदी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग प्राचीन कोशल राज्य के उत्तरी-दक्षिणी क्षेत्र में होता है। वर्तमान समय में इसे उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, जौनपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद, मध्य प्रदेश के जबलपुर, रीवाँ आदि जिलों से संबंधित मान सकते हैं। यह इकार, उकार बहुल रूप वाली उपभाषा है। इसमें तीन बोलियाँ हैं - अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

(क) **अवधी** – 'अबध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'अवधी' नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्रयोग गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, इलाहाबाद, लखनऊ, जौनपुर आदि जिलों में होता है।

इसकी कुछ प्रमुख **विशेषताएँ हैं** -

1. इसमें 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग होता है- शंकर > संकर, शाम > साम आदि।
2. इसमें 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है; जैसे वन > बन, वाहन > बाहन आदि।
3. 'इ' और 'उ' स्वरों का बहुल प्रयोग होता है।

   इ आगम-स्कूल > इस्कूल, स्त्री > इस्त्री

   उ आगम-सूर्य > सूरज झ सूरूजु

4. 'ण' ध्वनि के स्थान पर प्रायः 'न' का प्रयोग होता है।

5. ऋ के स्थान पर 'रि' का उच्चारण प्रयोग होता है।

भक्तिकाल में सम द्ध साहित्य की रचना हुई है। तुलसीदास क त 'रामचरित मानव' और जायसी क त 'पद्मावत' महाकाव्यों की रचना अवधी में हुई है। सूफी काव्य-धारा के सभी कवियों ने अवधी भाषा को ही अपनाया। सम द्ध लोक-साहित्य मिलता है।

(ख) **बघेली** – इस बोली का केन्द्र रीवाँ हैं। मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, बालाघाट में और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में कुछ अंश तक बघेली का प्रयोग होता है। इस क्षेत्र पर अवधी का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। कुछ विद्वानों ने बघेली को स्वतंत्र बोली न कह कर अवधी का दक्षिणी रूप कहा है। इसमें अवधी की भांति 'व' ध्वनि 'ब' के रूप मे प्रयुक्त होती है।

(ग) **छत्तीसगढ़** – 'छत्तीसगढ़' क्षेत्र से संबंधित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी बोली नाम दिया गया है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है।

इसमें कहीं-कहीं पर 'स' ध्वनि 'छ' हो जाती है।

अल्पप्राण ध्वनियों के महाप्राणीकरण की प्रव त्ति विशेष रूप से मिलती है।

सम द्ध लोक-साहित्य मिलता है।

3. बिहारी हिंदी

बिहार प्रदेश में प्रयुक्त होने के आधार पर इसे बिहारी नाम दिया गया है। इसका उद्भव मागधी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बर्गीकरण में बिहारी को हिंदी से अलग वर्ग में व्यवस्थित किया है।

ये भाषाएँ आकार बहुल हैं।

बहुवचन बनाने हेतु नि या न का प्रयोग होता है; यथा- लोग > लागनि, लोगन

सर्वमान के विशेष रूप प्रयुक्त होते हैं- तोहनी हमनी आदि।

बिहारी की अनेक प्रव त्तियाँ पूर्वी हिंदी के समान मिलती हैं -

इससे मुख्यतः तीन बोली भागो में विभक्त करते है।

(क) **भोजपुरी** – भोजपुरी निश्चय ही बिहारी हिंदी का सबसे विस्त त क्षेत्र में पुयुक्त रूप है। भोजपुर बिहार का एक चर्चित स्थान है। इसी के नाम पर इसे भोजपुरी कहते हैं। इसका केन्द्र बनारस है। भोजपुरी का प्रयोग उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, बनारस, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर जिलों में पूर्ण या आशिंक रूप में और बिहार के छपरा, चम्पारन तथा सारन में प्रयोग होता है। इस भाषा में अवधी की कुछ प्रव त्तियाँ मिलती हैं।

इसमें 'र' ध्वनि का प्रायः लाप हो जाता है; यथा- लरिका >लरका (लड़का), करया >कइया (काला) 'ल' की ध्वनि की प्रबलता दिखाई देती है; जैसे खाइल्, चलल, पाइल आदि।

इकार और उकार बहुल रूप में मिलता है।

सम द्ध लोक-साहित्य मिलता है।

(ख) **मैथिली** – मिथिला क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे 'मैथिली' नाम दिया गया है। इसका प्रयोग दरभंगा, सहरसा, मुजफ्फरनगर, मुंगेर और भागलपुर में होता है।

इसमें शब्द स्वरांत होते है।

इसमें संयुक्त स्वरों (ए, ऐ, ओ, औ) के दीर्घ स्वर के साथ ह्रस्व रूप भी प्रयुक्त होता है।

इसमें सहायक क्रियाओं के विशेष रूप मिलते हैं; यथा- छथि, छल आदि।

इ, उ बहुला रूप अवधी के ही समान हैं।

मैथिली साहित्य में तत्सम शब्दाबली का आकर्षक प्रयोग साहित्यकारों के संस्क त ज्ञान का परिचायक है।

इसमें सम द्ध लोक-साहित्य और आकर्षक साहित्य रचा गया है। मैथिल कोकिल विद्यापति मैथिली भाषा को अपनाने वाले सुनाम धन्य कवि हैं।

(ग) **मगही –** 'मागधी' अपभ्रंश से विकसित होने और 'मगध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के आधार पर इसके नाम की इसके स्वरूप और भोजपुरी के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है।

इसमें सहायक 'हल्' से हकी, हथी, हलखिन आदि का रूप प्रयुक्त होते है।

कारक-चिह्नों में सामान्य के साथ अतिरिक्त चिह्न भी प्रयुक्त होते है; यथा- संप्रदान-ला, लेन, आधकरण-मों।

शब्दों में तद्भव या बहुल तद्भव रूप मिलते है; यथा- बच्चे के लिए 'बुतरू' का प्रयोग।

उच्चारण में अनुनासिक बहुल रूप है।

4. राजस्थानी हिंदी

राजस्थानी प्रदेश के नाम पर विकसित हिंदी को यह नाम मिला है। इसका उदगम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके प्रारंभिक रूप में डिंगल का प्रबल प्रभाव रहा है। इसकी कुछ प्रव त्तियाँ ब्रजभाषा के समान हैं।

इसमें टवर्गीय ध्वनियों की प्रधानता होती है; यथा- ड, ड़, ण, ळ।

महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण होने की भी प्रव त्ति है।

बहुबचन परिवर्तन में मुख्यतः 'आँ' का प्रयोग होता है।

तद्भव शब्दावली का प्रबल रूप मिलता है।

राजस्थानी में एक ओर वीर रस की ओजप्रधान रचनाएँ मिलती है, तो श्रंगार रासो, दूहा काव्य-ग्रंथो की रचना हुई है। इसमें सम द्ध साहित्य और लोक-साहित्य स जन क्रम चल रहा है।

राजस्थानी में चार प्रमुख बोलियों के रूप मिलते हैं- मेवाती, जयपुरी, मारबाड़ी और मालवी।

(क) **मेवाती –** मेव जाति के नाम पर इस बोली का नाम 'मेवाती' रखा गया है। इसका प्रयोग राजस्थान के अलवर और भरतपुर के उत्तर-पश्चिम भाग में होता है। हरियाणा के गुड़गाँव के कुछ भाग में भी इस बोली का रूप देखा जा सकता है। ब्रज क्षेत्र से लगा होने के कारण इस पर ब्रज का प्रभाव होना स्वाभाविक है। मेवती में सम द्ध लोक-साहित्य है।

(ख) **जयपुरी –** इस बोली का केन्द्र जयपुर है, इसलिए इसे जयपुरी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग पूर्वी राजस्थान, जयपुर, कोटा और बूँदी में होता है। इस बोली पर ब्रज का प्रभाव दिखाई देता है। परसर्गो में कर्म-संप्रदान-नै, कै; करण-अपादान-सूं, सौ; अधिकरण-मै, मालैं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें सम द्ध लोक-साहित्य मिलता है।

(ग) **मारबाड़ी –**ञ्इस बोली को 'मेबाड़' क्षेत्र के नाम पर 'मेबाड़ी' कहा गया है। राजस्थान के पश्चिमी भाग में प्रयुक्त प्रयुक्त होने के कारण इसे पश्चिमी राजस्थान नाम भी दिया जाता है। इसका मुख्य क्षेत्र जोधपुर है। पुरानी मारवाड़ी डिंगल कहते थे। मारवाड़ी व्यवसाय की द ष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध कवि नरपति नाल्ह, चन्दबरदाई इसी से संबंधित रहे हैं। मीराबाई की रचनाओं में यह रूप देख सकते हैं।

इसमे 'स' ध्वनि 'श' हो जाती है।

अनुनासिक ध्वनि का बहुल प्रयोग।

तद्भव शब्दावली का बहुल रूप है।

(घ) **मालवी–** मालवा क्षेत्र से संबंधित होने के आधार पर इसे मालवी नाम मिलता है। राजस्थान के दक्षिण में प्रयुक्त होने से दक्षिण नाम भी दिया जाता था। इसके प्रयोग क्षेत्र में उज्जैन, इन्दौर और रतलाम आते हैं।

हिन्दी और उसका विकास

इसमें 'ड़' ध्वनि का विशेष प्रयोग होता है।

इसमें 'ण' ध्वनि नहीं हैं।

विभिन्न ध्वनियों का अनुनासिक रूप सामने आता है। इसमें सम द्ध लोक-साहित्य मिलता है।

5. पहाड़ी हिंदी

पहाड़ी हिंदी का उद्भव 'खास' अपभ्रंश से हुआ है। पहाड़ी क्षेत्र में यातायात की शिथिलता के कारण भाषा में विविधता का होना निश्चित रहा। अध्ययन सुविधा के लिए इसे तीन उपवर्ग में विभक्त किया जाता है - पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी।

(क) **पश्चिमी पहाड़ी-** इसका केन्द्र शिमला है। इसमें चंबाली, कुल्लई, क्योंथली आदि मुख्य बोलियाँ आती है। यहाँ की बोलियों की संख्या तीस से अधिक है। ये मुख्यतः टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं। यहाँ हिंदी का मूलरूप हिंदी में ही मिलता है।

(ख) **मध्य पहाड़ी-** नेपाल पूर्वी पहाड़ी का केन्द्र है। नेपाली, गुरखाली, पर्वतिया और खसपुरा नाम भी दिए जाते है। इसमें सम द्ध लोक-साहित्य और संक्षिप्त-साहित्य भी मिलता है। नेपाल के संरक्षण मिलने के आधार पर इसका साहित्यिक रूप में विकास हो रहा है। इसकी लिपि नागरी है।

6. दक्खिनी हिंदी

दक्खिनी शब्द दक्षिण का तद्भव शब्द है। आर्यो का आगमन जब सिंध, पंजाब प्रांत में हुआ, तो यह भाग दाहिने हाथ की ओर था, उसे दक्षिण कहा गया है। हिंदी साहित्य के इतिहास पर प्राचीनकाल से यदि विचार करें, तो भारत में प्रचलित विभिन्न लिपियों में हिंदी साहित्य मिलता है। गुजराज और महाराष्ट्र में हिंदी का प्रयोग हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र के समान ही होता रहा है। मध्य युग में, हिंदी दक्षिण के प्रांतो में आर्कषक रूप में प्रयुक्त होती थी।

अकबर के समय में दक्खिन क्षेत्र में मालवा, बरार, खानदेश, औरंगाबाद, हैदराबाद, मुहम्मदाबाद और बीजापुर आ गए हैं। इस प्रकार दक्खिन क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे दक्खिनी हिंदी नाम दिया गया है।

उद्भव-विकास : चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली का शासक मुहम्मद-बिन-तुगलग था। उन्होंने दक्षिण की शासन व्यवस्था को अनुकूल रूप देने के लिए अपनी राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद करने का निर्णय लिया। मुहम्मद-बिन-तुगलक के जाने से पूर्व निजामुद्दीन चिश्ती ने 400 सूफी पहले ही दक्षिण भेज दिए थे। तुगलक अपने साथ सूफी फकीर भी ले गया। वहाँ शासन व्यवस्था अनुकूल होने पर राजधानी को पुनः दौलताबाद से दिल्ली लाने का निर्णय लिया। उस समय आज की तरह-यातायात सुविधा न थी। इस प्रकार अनेक सूफी-संत और सिपाही वहाँ से लौटे ही नहीं। इस निर्णय से तुगलक को 'पागल' की उपाधि उवश्य मिली, किन्तु इससे दक्षिण में प्रभावी प्रचार हुआ। दिल्ली से जाने वालों की भाषा खड़ी-बोली, ब्रज, अवधी, पंजावी आदि के मिश्रित के रूप में थी। वहाँ हिंदी का प्रचार होता गया। अलाउद्दीन खिलजी, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के समय तक दक्खिनी हिंन्दी विकसित होती गई है। दक्खिनी भाषा के स्वरूप के विषय में **डॉ. परमानंद पांचाल** का कथन इस प्रकार है -

''दक्खिनी हिंदी का वह रूप है, जिसका विकास 14 वीं सदी से अठारहवीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही आदि राज्यों के सुलतानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आसपास की हरियाणवी एवं खड़ी-बोली ही थी, जिस पर ब्रज, अवधी और पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात तेलगु, कन्नड़ और पूर्तगाली आदि का भी प्रभाव पड़ा था और इसने अरबी, फारसी, तुर्की तथा मलयालम आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किये थे। इसके लेखक और कवि प्रायः इस्लाम के अनुयायी थे। इसे एक प्रकार से सबसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है।'' **डा. श्रीराम शर्मा** के अनुसार, बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र और मैसूर में ही दक्खिनी हिंदी भाषा का उद्‌भव विकास हुआ है।

इसमें अव्यय शब्द 'और' के स्थान पर 'होर' का प्रयोग होता है।

नकारात्मक शब्द 'नही' के लिए 'नक्को' का प्रयोग होता है।

विविध भारतीय भाषाओं के तत्सम और तत्सम शब्दों के साथ अरबी, फारसी शब्दों का प्रभावी प्रयोग मिलता है। शब्द रूप में पर्याप्त विधिता मिलती है; यथा- एक >येक, यकी, यक्की, इक आदि

दक्खिनी हिंदी का भाषायी स्वरूप, भक्ति का तीन संत काव्य की भाषा से बहुत कुछ मेल खाता है-

''वे अरबी बोल न जाने,,
न फारसी पछाने
यूँ देखत हिंदी बोल
पन मानी है नफ्तोल''
- मीराँजी शम्सुल उश्शाक्

''ऐब न राखे हिंदी बोल,
माने तो चख देख घंडोल।''
- शेख बुराहानुददीन जानम

''तुलना-

''लूंचत मूंडत फिर फोकट तीरथ करे या हज।
थान देख जे भान भई मूरख भज॥''
- मीराँजी शम्सुल उश्शाक

''मूड़ मड़ाइ हरि मिले, तो सब कोउ लेठ मुड़ाय।
बार-बार के मूड़ते भेड़ न बैकुंठ जाय॥''
- कबीर

दक्खिनी हिंदी में सम द्ध साहित्य है। इसके कुछ प्रतिनिधि साहित्यकार हैं-
उश्शक्, शेख बुराहानुददीन जानम, काजी महमूद बहरी, गुलाम अली, और मुहम्मद अमीन आदि।

निश्चय ही दक्खिनी हिंदी में हिंदी भाषा का एक विशेष स्वरूप है और इसमें सम द्ध साहित्य है। इसलिए हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के इतिहास में दक्खिनी हिंदी का महत्व स्वतः सिद्ध है।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी की तुलना

हिंदी भाषा के विभिन्न छः भागों-पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाड़ी हिंदी और दक्खिनी हिंदी में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी का विशेष महत्व है। हिंदी भाषा के मध्य युग में इन्ही दो वर्गो की अवधी और ब्रज दो बोलियों को हिंदी के रूप में मान्यता मिली थीं। इसी में काव्य-रचना होती रही है। भक्तिकाल में अवधि और

ब्रज दोनों भाषाओं को काव्य-स जन में अपनाई जाती रही हैं और रीतिकाल में ब्रजभाषा प्रयुक्त होती थी। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना अवधी में की है। जायसी ने 'पदमावत' की रचना ठेठ अवधि में की है। 'प्रमाश्रयी काव्य' अवधी में ही लिखा गया है। भक्ति काल के समस्त अष्टछाप कवियों ने ब्रजभाषा को अपनाया है, तो रीतिकाल के केशव, घनानन्द, बिहारी आदि कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनाया है।

तुलनात्मक अध्ययन

1. पश्चिमी हिंदी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई, तो पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्थ-मागधी से हुआ।
2. पश्चिमी हिंदी की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं-कौरवी, हरियाणवी, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली। पूर्वी हिंदी की तीन प्रमुख बोलियाँ है - अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।
3. पश्चिमी हिंदी निकटवर्ती भाषा पंजाबी से यत्र-तत्र प्रभावित लगती है और पूर्वी हिंदी में बिहारी हिंदी से पर्याप्त समानता मिलती है।
4. पूर्वी हिंदी में 'इ' और 'उ' का बहुल रूप में प्रयुक्त पश्चिमी हिंदी में 'ई' और 'ऊ' के प्रयोग की प्रमुखता है।
5. पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा- बालक > बालक किन्तु पूर्वी हिंदी में पूर्ववत रहती है।
6. पूर्वी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा-और > क अउर ऐनक > अइनक। पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वर का बहुल रूप में प्रयोग होता है।
7. पूर्वी हिंदी में 'ल' के स्थान पर यदा-कदा 'र' का प्रयोग होता है, यथा-केला > केरा, फर > फल आदि। पश्चिमी हिंदी में 'ल' का प्रयोग होता है।
8. पूर्वी हिंदी में 'श' ध्वनि प्रायः 'स' के रूप में प्रयुक्त होती है, यथा-शंकर > संकर, शेर > सेर। पश्चिमी हिंदी में प्रायः मूल रूप प्रयुक्त होता है।
9. पूर्वी हिंदी में 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होता है; यथा-वन > बन, आशर्वाद > आसीर्वाद आदि। पश्चिमी हिंदी में प्रायः मूल रूप प्रयुक्त होता है।
10. पूर्वी हिंदी में कारक-चिह्न 'ने' का प्रयोग विरल रूप में होता है, जबकि पश्चिमी हिंदी का मुख्य चिह्न है।
11. पूर्वी हिंदी में उत्तम पुरुष सर्वनाम में एकवचन के लिए 'हम' और बहुवचन के लिए 'हम' या 'हम सब' प्रयुक्त होते हैं। जबकि पश्चिमी हिंदी में प्रायः एकवचन के लिए 'मैं' और बहुवचन के लिए 'हम' का प्रयोग होता है।
12. पूर्वी हिंदी में क्रिया के साथ यत्र-तत्र 'ब' का प्रयोग होता है-चलब, करब आदि तो पश्चिमी हिंदी (ब्रज) में ओकार रूप सामने आता है - चलना > चलनों, करना > करनो।
13. क्रिया के भविष्यत् काल के रूप निर्धारण में ग, गी, गे के प्रयोग पश्चिमी हिंदी में मिलते हैं, किन्तु पूर्वी हिंदी में रूप-विविधता है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हिंदी की प्रमुख उपभाषाओं-पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी की बोलियाँ की शब्द-संपदा में बहुत कुछ समानता है, वहीं उनकी ध्वन्यात्मक, शब्द-संरचनागत और व्याकरण आधार पर पर्याप्त भिन्नता है। यह भिन्नता ही संबंधित बोलियो की अपनी विशेषताएँ हैं। हिंदी की इन दोनों उप-भाषाओं और उनकी बोलियों का महत्त्व स्वतः सिद्ध है।

7.2 काव्य के रूप में अवधीः उद्‌भव और विकार

प्रत्येक युग की साहित्य भाषा और जन भाषा के स्वरूप में पर्याप्त भिन्नता होती है। इसी प्रकार काव्य-भाषा और गद्य-भाषा में भी पर्याप्त अन्तर होता है। वर्तमान समय में यह अन्तर कुछ सिमटता जा रहा है। मध्ययुग की दोनों भाषाओं में यह भिन्नता स्पष्ट रूप से देख सकते है। **भारतेन्दु हरीशचन्द्र** ने तो काव्य स जन के लिए ब्रज को चुना तो गद्य के लिए खड़ी-बोली का चयन किया है। आधुनिक काल में यत्र-तत्र काव्य-भाषा के रूप बोलचाल के लिए निकट दिखाई देता है, किन्तु काव्य भाषा और बोलचाल की भाषा में पद्धति के कारण सदा ही भेद रहेगा।

हिन्दी भाषा की विविध बोलियों में अवधी का महत्वपूर्ण स्थान है। अवधी को भी ब्रज के ही समान भाषा की संज्ञा दी गई है। ब्रज को जिस प्रकार ब्रजभाषा कहते हैं, उसी प्रकार अवधी को अवधी भाषा नाम से सम्बोधित किया जाता है। अवधी भाषा के रूप में प्रयोग करने के कारण 'अवधी बोली' मान लेना खटकता है। अवधी को भाषा नाम मिलने का कारण है कि इसमें पर्याप्त साहित्य की रचना हुई है और इसका व्याकरण भी निर्धारित हो चुका है। अवधि एकमात्र ऐसी बोली है जिसे भाषा के रूप में स्थान मिला और उसके साहित्यिक और ठेठ दो रूपों में साहित्यिक रचना हुई। इन दो रूपों को भक्तिकाल के दो प्रमुख महाकवियों ने काव्यभाषा के रूप में अपनाया है। **भक्त शिरोमणि सन्त तुलसीदास** ने अबधी के साहित्यिक रूप को अपनाया है, तो प्रेमाश्रयी काव्यधारा के सूफी कवि **मलिक मुहम्मद जायसी** आदि ने अवधी के ठेठ रूप को अपनाया है। सन्त तुलसी की रचना **'रामचरितमानस'** राजमहल से लेकर रंक की झोपड़ी तक ससम्मान पहुँच चुकी है, तो **जायसी** का पद्मावत महाकाव्य विद्वत् वर्ग के मस्तिष्क पर छा चुका है।

अवधी बोली के प्रारम्भिक साहित्यिक प्रयोग का पुट प्राक त अपभ्रंश के ग्रंथ 'राउटन बेल' और प्राक त 'पैंगलग' में मिलता है। इसके आधार पर अवधी के साहित्यिक स्वरूप के प्रारम्भ को बाहरवीं से चौदहवीं शताब्दी के मध्य मान सकते हैं। खड़ी बोली के प्रथम कवि माने जाने वाले **अमीर खुसरो** की भाषा में अवधी की छाया देख सकते हैं। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार अमीर खुसरो का काल 1255 से 1324 ई० है।

तरूवर से तिरिया उतरी, उनने बहुत रिझाया।
बाप का उसने नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली गोरी।
अमीर खुसरो यो कहें, अपने नाम न बोली-निबोरी।

इन पंक्तियों में 'इक' विशेषण और उतरी क्रिया पदों में अवधी का संरचनात्मक स्वरूप दिखाई देता है।

मुल्ला दाऊद की रचना 'चन्दयान' (1379 ई०) में अवधी बोली का साहित्यिक रूप मिल गया हैं। यह अवधी की प्रथम साहित्यिक रचना है।

कुतुबन-क त म गावती (1503 ई०) दोहे और चौपाई छन्दों पर आधारित अवधी रचना है। यह सूफी काव्यधारा का श्रेष्ठ, सरल और सरस काव्यक ति है।

मलिक मुहम्मद जायसी क त पद्मावत (1540ई०) प्रमाश्री काव्यधारा की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अवधी भाषा का ही नहीं हिन्दी साहित्य के चर्चित महाकाव्यों में से एक और प्रमुख ग्रन्थ है। **जायसी** की भाषा में अपूर्व माधुर्य है। ठेठ भाषा का जैसा रूप **जायसी** ने हिंदी साहित्य के लिए अपनाया है, वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं अपनाया है।

सँवरौ आदि एक करतारू। जेहँ जिए दीन्ह कीन्ह संसारू।
कीन्हेसि प्रथम जोति परमासू। कीन्हेसि तेहि पिरीति कविसासू॥
कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुतई रंग उरेहा।
कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन बरन अवतारू।
कीन्ह सबइ अस जाकर दोसरहि छाज न काहु।
पहिलेहि तेहिक नाऊँ लई कथा कहौं अवगाहु॥

(स्तुति खण्ड - 1)

इस पद्यांश में आदि, प्रथम, पवन, जल आदि कुछ एक तत्सम शब्दों को छोड़कर अन्य शब्दों में ठेठ अवधी का रूप देश सकते हैं। इन पंक्तियों में इकार, उकार, आकार बहुला रूपों के साथ अनुनासिका का भी गहरा रंग दिखाई देता है।

जायसी ने पद्मावत में फारसी पद्धति का अनुसरण करते हुए काव्य भाषा में विभिन्न पदों को विपरीत क्रम में प्रयोग किया है -

(1) **भौहें स्याम धनुकू जनु ताना।**
जासौं हेर मार बिख बाना।। – नखशिख खण्ड (102)

(2) **नैन बांक सरि पूज न कोऊ।**
मान समुंद्र आस उलथहिं दोऊ।। – नखशिख खण्ड (103)

इन पंक्तियों में 'स्याम भौहें' और 'बांक नैन' न कहकर 'भौंहें स्याम' और 'नैन बांक' रूप में विपरीत क्रम से प्रयोग करने से भाषा में भावात्मक गम्भीरता आ गई है।

जायसी ने अवधी भाषा में भारतीय निर्गुण साधना की प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण में अपूर्व सफलता प्राप्त की है-

"मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा।।"
"तनि चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।।
मुरू सुआ जेहि पन्थ देखावा। बिन गुरू जगत को निरगुन पावा।
नागमती यह दुनिया-धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानु॥
प्रेमकथा यहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु॥"

जायसी ने भाषा और भाव के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए प्रेम को भाषा की सरसता, दिव्यता और महत्ता के आधार रूप में स्वीकार किया है-

तुरकी अरबी हिन्दूई, भाषा जेती आहिं।
जेहिं महँ मारग प्रेमकर, सबै सराहैं ताहि।

ठेठ अवधी में रचित काव्य भाषा की एक प्रमुख विशेषता है कि इसमें उकार बहुत शब्दों का प्रयोग है। इस ध्वनि विशेष के बहुल प्रयोग से ध्वन्यात्मकता का विशिष्ट रंग उभरता है-

तपै लाग अब जेठ आसाढ़ी। मैं मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।
तन तिनुवर भा झूरौं खरी। मैं बिरहा आगरि सिर परी।
साँठि नाहिं लगि वात को पूँछा। बिनु जिय मएउ मूँज तन छूँछा।
बंध नहिं और बंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।
ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न थूनी।
बरिसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन हाँहाँ।
कों रे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।
अबहू दिस्टि मया करू छन्हिन तनु घर आउ।
मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ।
भागवती वियोग खण्ड - 356

नागमती वियोग खण्ड के बारहमासा संदर्भ में जायसी ने झूरौं, पूँछा, मूँज, छूँछा, दूबरि, बिहूनी, धूली, अबहू शब्दों का चयन ऊकार आधार पर किया। अवधि की मुख्य प्रव त्ति इकार और बहुला रूप भी स्पष्ट रूप में देख सकते हैं -

इकार प्रयोग

छाजनि	तिनुबर	बिरहा	आगरि
सिर	नाहि	लगि	बिनु
जिय	नाहिं	केहि	ररि
दूबरि	बिहूनी	नाहिं	उठि
बरिसहि	चुअहिं	बिनु	बिनु
दिस्टि	छान्हिन	मंदिल	आनि

उकार प्रयोग

तिनुवर	तिबनु	भएउ
चुअहिं	तुम्ह	बिनु
तुम्ह	बिनु	करू

जायसी ने जनभाषा का सहज प्रयोग किया है। इनकी भाषा कबीर की भाषा के समान तद्भव शब्द बहुला है। सूफी कवि ने दर्शन और आध्यात्म के संदर्भ को भी तद्भव शब्दावली में आकर्षक अभिव्यक्ति प्रदान की है -

नवौं पंवरि पर दसौं दूआरू। तेहि पर बाज राज धरिआरू।
घरी सो बैठि गनै घरिआरी। पहर पहर सो आपनि बारी।
बजहि घरी पूजी वह मारा। घरी-घरी घरिआर पुकारा।
परा जो डाडं जगत सब डाँडा। का निचिंत मांटी कर भांडा।

मुहम्मद जीवन जन भरन रहँट धरी की रीति।
घरी सो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति।।
— सिंहलदीप वर्णन खण्ड - 42

जायसी की सरल और सुगम भाषा में जीवन रहस्य को प्रकट करने की सराहनीय क्षमता थी। सहज चिन्तन और सीधी-साधी भाषा में आकर्षक बिम्ब-विधान जायसी की अपनी विशेषता है। इनकी काव्य भाषा की अन्य रेखांकन योग्य विशेषता है-वाक्य में लघु आकारीय पदों की योजना और साथ ही उनका असामासिक रूप। सामासिक रूप इनकी काव्य-भाषा में अत्यन्त विरल है। काव्य-भाषा का सरल और बोधगम्य रूप द्रष्ठव्य है-

नैन जो देखे कँवल भरनिरमर नीर सरीर।
हंसत जो देख हंस दसन ज्योति नगहीर।।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि 'श' से 'स' (शरीर - सरीर) होना अवधी की सामान्य प्रव त्ति है, जो तुलसी की काव्य भाषा में भी मिलती है, जबकि ल से (निर्मल-निमर), म से व (कमल-कवल) और अनुनासिक रूप (कँवल) जायसी काव्य भाषा की अपनी विशेषता है।

भावानुकूल भाषा-योजना में जायसी का अपना आकर्षक स्थान है। जायसी ने ठेठ अवनी के आधार पर हिन्दी साहित्य को चिरस्मरणीय रूप से सम द्ध किया है।

मंझनकृत मधुमालती (1545 ई०) अवधी का एक चर्चित प्रेमाख्यान काव्य है। इस रचना में प्रेम का गम्भीर और एकोन्मुख रूप प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी के प्रेमाख्यान काव्यों में प्रायः बहु पत्नीवादी विचारधारा दर्शायी जाती है जबकि यह कृति इसके विपरीत सामने आती है। दोहा चौपाई में रची गई यह कृति सरसता और विशिष्ट चिन्तन के लिए चर्चित है।

आलम कृत माधवानल-कामकन्दला (1584 ई०) अवधी में रचित मार्मिक प्रेमाख्यान काव्य है। इसमें अनेक जन्मों की प्रेम घटनाओं को समायोजित कर रचना को एक विशिष्ट रूप दिया गया है। चौपाईयों, दोहे अथवा सोरठे की योजना से काव्य को लयात्मकता और गेयता प्रदान की गई है।

उसमान गाजीपुरी कृत चित्रावली (1613 ई०) प्रेमाख्यान काव्य की रचना अवधी में की गई है। इस कृति में श्रं गार के दोनों पक्षों के साथ अर्चना-पूजा, द्वन्द्व-संघर्ष और प्रेम सौन्दर्य आदि विभिन्न पक्षों का सुन्दर चित्रण किया गया है। इस रचना में अवधी के परम्परागत प्रिय छन्द, चौपाईयों, दोहे को आधार रूप में स्वीकार किया गया है। इस रचना का भाषायी स्वरूप सरल और प्रवाहमय होने से विशेष रोचक है।

पुहकरकृत रसखन (1618) ई०) में राजकुमारी रम्भा और सोम की प्रेमकथा है। यह प्रेमाख्यान सरल अवधी में रचा गया है। रचना अर्चना में सूफी काव्य-परम्परा का निर्वाह किया गया है। पहुकार ने इस रचना परम्परा के बहु प्रचलित छन्दों-चौपाई और दोहे को अपनाया है।

शेखनबी कृत ज्ञानदीप ने परम्परागत प्रेमाख्यानों से भिन्न रूप देने का प्रयत्न किया है। ज्ञानदीप ने अवधी में रचित इस कृति में श्रंगार के दोनों पक्षों के साथ योग और वीर संदर्भों को समुचित स्थान दिया है। अवधी की रचना के विशेष चर्चा में होने का मुख्य तथ्य है कि मुसलमान होने पर भी शेखनबी ने उदार द ष्टि से वेद की भरपूर प्रशंसा की है। इस रचना में भी चौपाई और दोहे को अपनाया गया है।

यह निर्विवाद तथ्य है कि जायसी आदि सूफी सन्त कवियों ने अवधी के ठेठ रूप को काव्य रचना में अपना कर इसे व्यापक, माधुर्ययुक्त और आकर्षक काव्य भाषा रूप देने का अनुकरणीय कार्य किया है।

अवधी का दूसरा रूप जायसी आदि सूफी कवियों की भाषा से भिन्न है।

तुलसीदास कृत रामचरित्मानस अवधी के सहित्यिक स्वरूप के अप्रतिम रचना है। तुलसी ने ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं में सशक्त रचनाएँ की हैं। हिन्दी के पूर्वी और पश्चिमी दोनों रूपों पर उनका समान अधिकार था। तुलसीदास की अवधी में रचित अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं-

रामलालानहछु, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्नावली।
जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, रामचरित्मानस आदि।

तुलसी की भाषा में संस्कृत की कोमलकांत पदावली को प्रेरक रूप से स्थान मिला है। इसी कारण है कि तुलसी द्वारा प्रयुक्त अवधी को 'साहित्यिक अवधी' नाम दिया जाता है। तुलसीदास को संस्कृत भाषा पर भी प्रशंसनीय अधिकार प्राप्त था। रामभक्त सहृदय कवि ने रामचरित्मानस के प्रत्येक खण्ड के मंगलाचरण में संस्कृत भाषा में श्लोकों को निबद्ध किया है।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दो वाणीविनायकौ॥

नाना पुराणनिगमागमनसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यते पि
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषा निबन्धमतिमजुलमातनोति॥

इस महाकाव्य का उपसंहार भी संस्कृत श्लोक से संस्कारित है। इस रचना की काव्य-भाषा हिन्दी में 'उपकार' बहुला रूप आद्योपान्त दिखाई देता है-

बदऊँ गुरू पदुम परागा। सुरूचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिय भूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रज परिवारू।

उघरहिं बिमल बिलोचन ही कै। मिटाहिं दोष दुख भव रजनी कं
सूझाहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जा जेहि खनिक।

इन पंक्तियों के बदउँ, गुरू, पटुम, सुरूचि, सुबास, अनुरागा, रूप, उघरहिं दुःख, गुपुत पदों में 'उकार' का प्रयोग ध्वन्यामकता और लयात्मकता प्रदान कर रहा है।

अयोध्या काण्ड के प्रथम दोहे के विभिन्न पदों में 'उकार' के प्रयोग से साहित्यिक अवधी की लयात्मकता और भावगम्भीरता का गुरूतर होता स्वरूप द्रष्टव्य है-

श्रीगुरू चरन सरोज रज निज मनु मुकुर सुधारि।
बरनऊँ रघुवर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि॥

अवधी में ह्रस्व स्वरों की प्रधानता होती है। 'उ' के साथ प्रयुक्त होने वाला ह्रस्य स्वर के प्रयोग से भाषा जहाँ सरलता गुण संजो लेती है वहीं भाषा में माधुर्यगुण भी अपने आकर्षक रूप में उभरता है।

निज इच्छाँ प्रभु अवरतइ सुर महि गो द्वित लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहि मोच्छ सब त्यागी॥
(किष्किन्ध काण्ड - 26)

इस पंक्तियों में निज, महि, द्विज में 'इ' का सामान्य प्रयोग है, तो अवरतइ (अवतार), लागि, (लगना), रहहि (रहना), त्यागि (त्याग) में अवधी का इकार स्वरूप है।

हिन्दी साहित्य में चर्चित महाकाव्य रामचरित्मानस की काव्य-भाषा अवधी में 'श' व्यंजन के स्थान पर 'स' का प्रयोग प्रमुख भाषायी प्रव त्ति के रूप में देख सकते हैं।

वोहि सुख लागि नारि तेहि सुख महु बेस कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन॥
सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जनसुमति॥

इस पद्यांश में सिव (शिव), लवलेस (लवलेश) और खगेस (खगेश) में 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग अवधी की भाषायी प्रव त्ति को प्रकट करता है।

रामचरित्मानस की काव्य-भाषा में 'व' के स्थान पर 'ब' और अनुनासिक बहुल भी रेखांकन योग्य है।

(1) **मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर विधि करि परिपोषू॥**
चले बिपिल मुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥

(2) **सरल सुभाव मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ तम फिरि आर।**
मंटतु बहुरि लघु आई। सोकु सनेह न ह्रदयँ समाई॥

द्वितीय पद्यांश में मायँ, हियँ, मनहुँ, भेटहुँ और ह्रदयँ अनुनासिक स्वरूप उल्लेखनीय है। अवधी का प्रयोग अनेक काव्य-कृतियों में काव्य-भाषा के रूप में हुआ है, किन्तु तुलसीदास कृत जगप्रसिद्ध महाकाव्य रामचरित्मानस से अवधी को सहित्यिकता और लोकप्रियता के उच्चतम शिखर पर पहुँचने का अवसर मिला है।

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में अवधी का काव्य भाषा रूप बहुत कुछ सिमट गया है। कुछ कवियों की काव्य भाषा (ब्रज) में अवधी पुट मात्र दिखाई देता है। उदाहरणार्थ रीतिमुक्त कवि ठाकुर की रचना में यत्र-तत्र अवधी प्रव त्ति देख सकते हैं।

भारतेन्दु युग में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी-बोली काव्यभाषा के रूप में उभरी है। इसी युग में अवधी को पुनः काव्यभाषा के रूप में अपनाया गया है। प्रतापनारायण मिश्र, बलभद्र मिश्र, जानकीप्रसाद ने अवधी में कुछ

फुटकर रचनाओं को प्रस्तुत कर अवधी के आधुनिक युग के साहित्य का द्वार खोला है। इसके पश्चात् सीतला सिंह 'गहरवारधी', द्वारिका प्रसाद मिश्र, वंशीधर शुक्ल और चन्द्रभूषण त्रिवेदी, 'रमई काका' जैसे अनेक प्रमुख कवियों ने अवधी में श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत की है। 'रमई काका' ने अवधी में भिनसार, बौछार, गुलछर्रा, फुहार और नेता जी आदि चर्चित रचनाओं का स जन किया है। महाकवि तुलसीदास के पश्चात् रमई काका ने अवधी क्षेत्र में सर्वाधिक लोकप्रियता अर्जित की है। इनकी हास्य-व्यंग्य प्रधान रचनाएँ विशेष चर्चित हैं।

हिन्दी साहित्य को सम द्ध करने में अवधी काव्य-भाषा की सम द्ध परम्परा का विशेष योगदान है। अवधी काव्य-भाषा की दो धाराओं में महाकवि तुलसी दास और मलिक मुहम्मद जायसी का नाम शीर्षस्थ है। इन दो महान् साहित्यकारों की महाकाव्यात्मक कृतियाँ रामचरित्मानस और पद्मावत हिन्दी साहित्य की चर्चित और अपूर्व धरोहर स्वरूप हैं।

7.3 काव्य के रूप में ब्रज : उद्भव और विकास

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हिन्दी का विशेष स्थान है। हिन्दी का महत्व उनके प्रयोक्ताओं की संख्या, विस्त त भौगोलिक सीमा और सम द्धि के आधार पर है। हिन्दी के विस्तीर्ण फलक पर प्रयोग होने के कारण इसे पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी मान से दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है। पश्चिमी हिन्दी का उद्भव शोरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत ब्रज भाषा का अध्ययन किया जाता है। भाषा वैज्ञानिक द ष्टि से ब्रज निश्चय ही हिन्दी की एक बोली है। इस पर गम्भीर चिन्तन करने से इसके साहित्यिक और महत्त्वपूर्ण भाषायी स्वरूप का ज्ञान होता है। इसकी साहित्यिक सम द्धि के कारण इसे 'ब्रजभाषा' की संज्ञा दी जाती है 'ब्रज बोली' का प्रयोग स्वयं में खटकने वाला है। यहाँ यह चौंकाने वाला तथ्य है कि आज 'खड़ी-बोली' में साहित्यिक रचना की जाती है, किन्तु इसे 'खड़ी भाषा' कोई नहीं कहता है, सभी खड़ी-बोली कहते हैं।

हिन्दी में सबसे अधिक और सम द्ध साहित्य ब्रज में ही उपलब्ध है। काल और क्षेत्र की द ष्टि से भी ब्रज साहित्य का इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। साहित्य की स ष्टि के लिए इस भाषा का प्रयोग एक बहुत बड़े भू-भाग पर दीर्घकाल से होता है। कहा जा सकता है कि काव्य-भाषा के रूप में इसका प्रचार समस्त उत्तरी भारत में रहा है। सोलहवीं शताब्दी से अट्ठारहवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य मुख्यतः ब्रजभाषा पर आधारित है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ सन् 1519 ई० से मानते हैं। बल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ के शिष्यों ने कृष्ण-भक्ति में विभोर होकर जो साहित्य स ष्टि की है वह ब्रजभाषा में ही है। सूरदास और अन्य अष्टछाप के कवियों ने ब्रज को सहित्य-भाषा का रूप प्रदान किया है।

ब्रजभाषा की रेखांकन योग्य कुछ प्रमुख **विशेषताएँ** इस प्रकार हैं -

1. क्रिया, संज्ञा और विशेषणों में ओकारान्त/औकारान्त बहुल रूप।
2. कर्म तथा सम्प्रदान में को, कों, कौ कारक चिह्नों का प्रयोग।
3. सम्बन्ध कारक में मेरो, तेरो, हमरो, तिहारो आदि का प्रयोग।
4. निश्चयार्थक में के होहुतो, हुते का प्रयोग।
5. बहुवचन में 'न' प्रत्यय प्रयोग-चरनन, नैनन आदि।
6. उ का विपर्यय रूप में प्रयोग-कुछ > कछु।

कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का नाम सर्वप्रथम लिया जात है। इसकी ब्रजभाषा की भावभूमि पर माधुर्य का दिव्य रूप दिखाई देता है। सूरदास विरचित सुरसागर, सूर सरावली, साहित्य लहरी की परम निधि हैं। भक्त कवि अपने आराध्य की अर्चना करता हुआ कितना भाव-विभोर हो रहा है -

अवगति गति कछु कहत न आवै।
जयों गूंगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावैं।
सब विधि आगम विचारहिं ताते सूर सगुन-लीला पद गावैं।

कृष्ण की बालसुलभ क्रीड़ा का चित्रण अत्यन्त मार्मिक और आकर्षक है
मैया! मैं नाहि माखन खायो।
भोर भये गइयन के पीछे मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर वंशी वट भटक्यों सांझ परे घर आयो।
मैं बालक बहियन को छोटी छीको केहि विधि पायो।

भ्रमरगीत का प्रसंग गोपी और उद्धव, हृदय और बुद्धि से व्यवहारिक संवाद को प्रस्तुत कर हृदय की विजय के साथ प्रेम के जीवनाधार होने का तथ्य प्रकट करता है।

ब्रज भाषा के सहज प्रवाह में गोपियाँ कहती हैं -

ऊधौ मन नाही दस बीस।
एक हुतो सो गयो श्याम संग को आराधै ईश।

जिन लताओं के झुरमुट में गोपियों के साथ कृष्ण विचरण करते थे, आज कृष्ण के मथुरागम पर वे गोपियों के लिए अत्यन्त कष्टप्रद हो गई हैं। कृष्ण के वियोग में ये लताएँ अग्नि वर्षा करती हैं। सूर की ब्रज शब्दावली का मनोहारी रूप द्रष्टव्य है -

बिन गोपाल बैरिन भई कुंजै।
तब ये लता लगत अलि सीतल ऊब भई विषम ज्वाल की पुंजै।

सूरदास की ऊपर प्रस्तुत पंक्तियों में ब्रजभाषा के प्रमुख अभिलक्षण इस प्रकार देख सकते हैं।

उ बहुल रूप (विपर्यय)	-	कुछ	>	कछु
न प्रत्यय बहुवचन	-	बांह	>	बहियन
		बैरी	>	बैरिन
ए > ऐ	-	पावे	>	पावै
		आवे	>	आवै
ो, आकार बहुल रूप	-	खाया	>	खायो
		मेरा	>	मेरो
		छोटा	>	छोटो
		छीका	>	छीको
		पाया	>	पायो
		गया	>	गयो
ौ, औकार बहुल रूप	-	उद्धव	>	ऊधौ
		लपटाना	>	लपटायौ

अष्टछाप के द्वितीय भक्त कवि कुम्भनदास हैं। इनकी कोई स्वतन्त्र रचना प्राप्त नहीं है। कृष्ण भक्ति इनके जीवन का लक्ष्य था। इसीलिए इन्होंने सीकर आमंत्रण को विरक्ति भाव से ठुकराते हुए कहा था -

भक्तजन को कहाँ सीकरी सो काम।
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गये हरि नाम।

परमानन्द दास ने ब्रजभाषा के माध्यम से प्रेम के पीर का हृदयास्पर्शी काव्य प्रस्तुत किया है। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं - परमानन्द सागर, दानलीला, परमानन्द के पद आदि।

ब्रज के विरही लोग विचारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन हारे।

परमानन्द स्वामी बिन ऐसे, ज्यों चन्दा बिनु तारे।

कृष्णदास श्री वल्लभाचार्य के चतुर्थ शिष्य थे। गुजरात प्रान्त में जन्में कवि के आराध्य कृष्ण को अपने सर्वस्व रूप में ग्रहण किया है। उन्होंने सुगम ब्रजभाषा में कृष्णभक्ति काव्य की रचना की है -

मो मन गिरधर छवि पर अटक्योउ।

कृष्णदास किया प्राण निछावर यह तन जग सिर पटक्यो।

नन्ददास की ब्रजभाषा में अनूठा माधुर्य भाव है। इनकी लेखनी से ब्रजभाषा की सुदामारचित, भंवरगीत, रसमंजरी, रूपमंजरी, मानमंजरी आदि कृतियों की रचना हुई है। ब्रजभाषा में किया गया रोचक कृष्ण - गान द्रष्टव्य हैं -

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ ते।
बीज बिना तरू जमे, मोहि तुम कहौ कहाँ ते।

इनकी रचना श्रोतिमधुर, मनोहारिणी और कोमलकान्त पदावली आधारित है।

गोविन्दस्वामी मूलतः राजस्थान प्रदेश के भरतपुर से थे। इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। कृष्ण और ब्रज के प्रति इनके मन में अपूर्व अनुराग था। ब्रजभाषा की इनकी पंक्तियों में उक्त भाव-भंगिमा देख सकते हैं।

कहा करें बैकुण्ठहिं जाय।
जहँ नहिं कुंज लता अलि कोकिल मन्द सुगन्ध न वायु सहाय।
गोविन्द प्रभु गोपी चरनन को ब्रजरज तजि वहँ जाय बलाय।।

छीतस्वामी स्वभाव से चंचल थे, किन्तु उनमें ब्रज के प्रति मोहक लगाव और कृष्ण के प्रति अटल भक्ति थी। ब्रजभाषा में उनका भाव कितने सहज और गम्भीर रूप से प्रस्तुत हुआ है -

हे विधना! तो सौं अँचरा पसारि माँगो।
जन्म - जन्म दीजो मोहि याही ब्रज बसियों

चतुर्भुजदास अष्टछाप के अन्तिम भक्त कवि हैं। इनकी कोई स्वतन्त्र कृति उपलब्ध नहीं है। संगीत में इनकी विशेष रूचि थी। ये पूर्व रचित पंक्तियों की लयात्मक नकल पर कृष्णभक्ति के पद बना कर गाया करते थे।

मैया मोहि माखन मिश्री भावै।
मीठो दधि मधुध त अपने कर क्यों नहीं मोहि खवावै।

इन पंक्तियों में 'सूर' के निम्नपद की अनुकरणात्मकता स्वतः प्रकट होती है।।

''मैया मोहि दाऊञ्ऽबहुत खिझायौ।
मोसो कहत मोल को लीन्हों तूं जसमति कब जायो।'' -सूर

कृष्ण भक्ति काव्यधारा में ब्रजभाषा के प्रयोग के विषय में डॉ० कणिका तोमर ने अपने शोध-कार्य में लिखा है-''पन्द्रहवीं शताब्दी में जो कृष्ण भक्ति का प्रवर्तन और प्रसार हुआ, उसने बड़े व्यापक भाव से भाव-विस्तार किया और ब्रजभूमि कृष्ण भक्तों का केन्द्र बनी। यह भक्तिधारा आने वाली नई शताब्दियों तक काव्य रचना को प्रेरणा देती रही। इन भक्त कवियों में बल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों का स्थान काव्य की द ष्टि से श्रेष्ठ है। इन्होंने एक अपूर्व साहित्य की स ष्टि की और ब्रजभाषा काव्य को एक अभिनव माधुर्य से परिपूर्ण कर दिया। उपर्युक्त दो सम्प्रदायों के अलावा गोस्वामी हित हरिवंश द्वारा प्रवर्तित राधास्वामी सम्प्रदाय और गोस्वामी हरिदास द्वारा वरही सम्प्रदाय का भी महत्व-साहित्य की द ष्टि से उल्लेख योग्य है। इन दोनों सम्प्रदायों के भक्तों और उनके शिष्यों ने ब्रजभाषा में काव्य-रचना की। यह परम्परा बहुत दिनों तक चलती रही। इसी के साथ सखी सम्प्रदाय का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस सम्प्रदाय के भक्तों में सखी भाव की साधना है। सत्रहवीं शताब्दी के बाद के भक्ति साहित्य में सखी भाव की प्रधानता दिखाई पड़ती है।''

रामकाव्य धारा के प्रमुख कवि तुलसीदास का रामचरितमानस अवधी भाषा में अवश्य है, किन्तु कवितावली, गीतावली और विनय पत्रिका ब्रजभाषा में हैं। कवितावली में नवगमन प्रसंग की पंक्तियों में ब्रजभाषा का भावानुकूल स्वरूप दर्शनीय है।

सीस जटा पर बाहु विसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौहें।
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यौं हमरो मन मोंहैं।
पूछति ग्रामबधू सिय सों कहौ सांवरे से सिख रावरे को हैं।

ग्रामबधू के प्रश्नों के उत्तर में सीता का आदर्श रूप प्रस्तुत होता है। भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था और उनका चातुर्य, ब्रजभाषा और काव्य को भाव-गम्भीर रूप प्रदान करता है-

सुनि सुंदर बैन सुधारस साने सयानी है जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें समुझाइ कछु मुसकाइ चली।

'गीतावली' की रचना से ब्रजभाषा को सुन्दर साहित्यिक आधार मिला है। यह तुलसीकृत ब्रजभाषा का श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसमें भक्ति रस की तरंगिणी प्रवाहित होती है-

विनती भरत करत कर जोरे।
दीनबन्धु। दीनता दीन की कबहुं परै जिनि भोरे।
तुम्ह से तुम्हहिं नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे।
तौ प्रभु चरन सरोजसपथ जीवत परि जबहि न पै हो॥

विनयपत्रिका की कुछ चर्चित पंक्तियां उद्‌ध त हैं-

तू दयालु दीनहौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तो सो॥

श्रीकृष्ण गीतावली तुलसीकृत भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र पर आधारित एकमात्र रचना है यह विशुद्ध ब्रजभाषा-ग्रन्थ है। इसमें इकसठ पद हैं। कहा जाता है इस ग्रन्थ की रचना तुलसीदास ने तब की, जब वे व न्दावन की यात्रा पर थे। यह माधुर्यगुण सम्पन्न श्रेष्ठ कृति है-

कृष्ण पर यशोदा माता का क्रोध देख कर गोपियां निवेदन करती हैं-

खायौ, कै खवायो, कै बिगार्‌यौ ढार्‌यो लरिकारी,
ऐसे सुत पै कोह कैसो तेरा हियो है।

निश्चय ही भक्त- शिरोमणि तुलसीदास कृत रामचरितमानस अवधी भाषा का अनुपम ग्रन्थ है, तो कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका और श्रीकृष्ण गीतावली ब्रजभाषा की बहुमूल्य साहित्यिक निधि हैं।

रीतिकाल के कवियों केशव, बिहारी, मतिराम, घनानन्द, रसखान, सेनापति और पद्‌माकर आदि ने ब्रजभाषा-काव्य को पर्याप्त सम द्ध किया है। रीतिकालीन ब्रजभाषा के काव्य में श्र ंगार की प्रचुरता अवश्य है, किन्तु इसमें भक्ति, नीति, वैराग्य, ज्योतिष और आलौकिक प्रेम आदि विषयों को सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है। सत्रहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध से इन प्रव तियों की गतिशीलता दिखाई देती है। इस काल के कवियों ने संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर लक्षण ग्रन्थों की रचना की है। उनकी लेखनी से रचित नायिका भेद की अनेक कृतियां प्रकाश में आई हैं। इन कवियों ने यत्र-तत्र राधा -कृष्ण का नाम लिया है, किन्तु श्र ंगारिकता का रंग पर्याप्त गहरा है।

केशव रीतिकालीन ब्रजभाषा के प्रथम और चर्चित कवि हैं। केशव संस्कृत के चर्चित विद्वान थे। इन्होंने छन्दों का अद्‌भुत प्रयोग करते हुए रस और अलंकार की आकर्षक विवेचना की है। रावण-अंगद संवाद में भुजंगप्रयास छन्द का प्रयोग ब्रजभाषा को लयात्मक रूप प्रदान कर रहा है-

निक्रयो जु मैया लियो राज जाको,
दियो काढिंकै जू कहा त्रास ताको।
लिये बानराली कहौं बात तोसों,
सु कैसे बुरै राम संग्राम मोसों॥

संवादात्मक संदर्भ केशव के ब्रजभाषा-काव्य की अपनी विशेषता है। छोटे-छोटे वाक्यों में भावात्मक गम्भीरता मनोहारी है।

कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि? न जानिए?
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये।
है कहाँ वह? बीर अंगद देवलोक बताइयो।
रघुनाथ-बान-विमान बैठि सिधाइयो।।

बिहारी की बहुज्ञता सर्वविदित है। उनके दोहों की भाषा और भाव- गम्भीरता उनकी महत्ता को चरितार्थ करती है। इसी तथ्य को द ष्टि में रखकर कहा गया है-

''सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर''

बिहारी ने ब्रजभाषा में रचित सतसई के प्रथम दोहे में रीतिकालीन भक्ति भाव को संजोया है-

मेरी भव बाधा हरौ, राधा रागरि सोइ।
जा तन की झाई परै, स्यामु हरित दुति होइ॥

बिहारी ने ब्रजभाषा के दोहे में मन की एकाग्रता में सफलता और प्रसन्नता निहित होने की बात आकर्षक रूप में कही है

या अनुरागी चित की गति, समुझै नहि कोई।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्जलु होई॥

बा ाडम्बर से बचने के लिए कवि ने कबीर की तरह निर्भय होकर संसार को सचेत किया है-

''जप माला छाया तिलक सरै न एकौ काम।
मन कांचै नाचै व था, सांचै-सांचै रामु॥''

कवि ने ब्रजभाषा के दोहे की दो पंक्तियों से राजा की अंतःचक्षु को खोजने का अनुकरणीय उद्बोधन किया है-

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल
अली कली ही सौं बन्ध्यो, आगै कौन हवाल॥

बिहारी संयोग श्र गार चित्रण में सर्वोपरि हैं। उनकी सशक्त लेखनी के एक ही दोहे में बहुआयामी चित्र प्रस्तुत हुए हैं। बिहारी द्वारा काव्य-भाषा रूप में अपनाने से ब्रज भषा पर्याप्त सम द्ध हो गई है-

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत है नैनन ही सौं बात॥

घनानन्द रीतिकाल के स्वच्छन्द प्रेमधारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी रचना में 'प्रेम की पीर' का हृदयस्पर्शी रूप है। ब्रज-भाषा आधारित इनकी भावात्मक रचना से हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा मिली है-

अति सूधों स्नेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे पले तजि आपनुपौ, झिझकैं कपटी जे निसांक नहीं।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो यहाँ एकते दूसरों आँक नहीं।
तुम कौन धो पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पर देहु छटांक नहीं॥

इन पंक्तियों में ब्रजभाषा का उकार, ओकार, औकार, अनुनासिकता बहुल रूप में और 'से' कारक चिह्न के आकर्षक प्रयोग के साथ भाव-गम्भीरता दर्शनीय है।

भूषण रीतिकाल के ऐसे ब्रजभाषी कवि हैं जिनकी कविता में जिजीविषा को आकर्षक अभिव्यक्ति मिली है। भूषण ने शिवाजी को हिन्दुत्व-रक्षक-रूप में प्रतिष्ठित किया है। कवि के मन में अपने धर्म के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और धर्म-विरोधियों के प्रति गम्भीर प्रतिक्रिया का वेग है। शिवाजी के लिए चुने गए अनगिनत उपमान इस भाव के प्रमाण हैं -

इन्द्र जिमि जंम पर बाडव सुअंम पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुलराज हैं।
पौन बारिवाह पर संभु रतिनाह पर,
दावा द्रुम-दंड पर चीता म गझुण्ड पर,
भूषण बितुंड पर जैसे म गराज हैं।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
यौं ग्लेच्छ बंस पर सेर विराज हैं॥

ध्वन्यात्मकता, अनुप्रास अलंकार, छन्दबद्धता और आकर्षक लयात्मकता में वीर रस का अनुकरणीय प्रभाव ब्रजभाषा के भूषण-काव्य की अपनी विशेषता है-

भूषन सिवा जी गाजी खग्ग सों खपाए खल,
खाने खाने खलन के खेरे भए खीस हैं।
खड़ग खजाने खरगोस खिलवत खाने,
खोसैं खोल खसखाने खूसत खबीस हैं।

रसखान रीतिकाल के अनन्य कृष्ण भक्त हैं। उन्होंने सवैया छन्द में ब्रजभाषा को सुन्दर साहित्यिक रूप प्रदान किया है।

या लकुटी अरू कामरिया पर राज तिहूँ पुर की तजिडारौं।
कोटिक की कलधैंत के धाम करील के कुंजनि उपर बारौं।
आठौ सिद्ध नवौ निधि के नित नन्द की गाय चराय बिसारौं।

रसखान को कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा है। भक्तकवि ब्रज भूमि को पुण्यस्थली के रूप में याद करता है। वह तन, मन और धन सब कुछ अपने आराध्य पर न्योछावर करना चाहता है-

मानुष हौं तो वही रसखन, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हों तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मझारना।
जो खग हो तो बसेरो कौ नित कालिंदी कूल कदंब की डारन।।

ठाकुर अपने काव्य में जीवन के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए जन-जन को प्रेरित करना चाहते हैं। इनकी ब्रजभाषा में सहजता और सुगमता का अनुकरणीय स्वरूप मिलता है-

दान दया बिन दीबो कहा अरू लीबो कहां जब आपुतें मांगे।
प्रान गए रस पीबो कहा पग छीबो कहा उर प्रेम न जागे॥
नीर कहा जहिलाज तजी, गुरू कीबो कहा भ्रम दूरि न भागो।
वा जग में फिर जीबो कहा जब आंगरी लोग उठावन लागी।

रीतिकाल का रामकाव्य भी ब्रजभाषा में रचा गया है। गुरू कोबिन्द सिंह की 'गोबिन्द रामायण' में राम का आकर्षक वर्णन उद्धरणीय है-

भेंटि भुजा भर अंक भले भरि नैन दोउ निरखै रघुराई।
गूंजत भंग कपोलन उपर नाग लवंग रहे लव लाई।
कुजं कुरंग कलानिधि के ही कोकिल हेरी हिये हहराई।
बाल लखै छवि खाट थरै नहिबाट चलै निरखै अधिकाई।

ब्रजभाषा साहित्य की द ष्टि से आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु हरीश्चन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके साहित्य में एक ओर भाषा परम्परा का सुन्दर निर्वाह किया गया है, तो दूसरी ओर ब्रजभाषा को नया रूप भी मिला है। इस युग में ब्रजभाषा-साहित्य के अनेक प्रबन्ध एवं फुटकर काव्य लिखे गये है। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने ब्रजभाषा काव्य को नई भस्वरता और भावसमन्विता प्रदान की है। इनके ब्रजभाषा साहित्य में राष्ट्रीय भावना के साथ कृष्णभक्त कवियों की भाँति कृष्ण-लीला और उनके प्रभाव का मनमोहक वर्णन है-

सखी ये नैना बहुत बुरे
तब तें भये पराये हरि सो जब ते जाइ जुरे।
मोहन के रूप में बस है डालत, तलफल तनिक बुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छाड़ि, ऐसे ये निगुरे॥
जग खीझयो बरज्यौ पे ये नाहिं, हठ सों तनिक मुरे।
अम त भरे देखत कमलन-से, विष से बुते धुरे।

इनकी रचना में बहुप्रचलित सरल शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसलिए इनकी भाषा बोधगम्य और सरल है। भारतेन्दु हरीश्चद्र ने ब्रज को काव्यभाषा के रूप में ग्रहण किया है, तो खड़ी-बोली को गद्य-भाषा के रूप में अपनाया है। भारतेन्दु की राष्ट्रीयता और उनका हिन्दी प्रेम प्रशंसनीय है-

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति की मूल।'

जगन्ननाथ दास रत्नाकर के समय तक खड़ी-बोली का प्रयोग तीव्रता से चल चुका था, किन्तु इन्होंने काव्य-रचना के लिए ब्रज भाषा को ही अपनाया है। रत्नाकर का ब्रजभाषा प्रेम ही उन्हें इसमें काव्य-रचना के लिए प्रेरित करता रहा है। इस समय तक खड़ी-बोली काव्य भाषा का उपयोगी स्थान ले चुकी थी।

भेजे मन-भावन के उद्धव के आवन की,
सुधि ब्रज-गावनि में पावन जबै लगी।
कहै रत्नाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि,
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि पद पैजनि के पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगी।
हमकौं लिख्यो हैं कहाँ, हमकौं लिख्यो है कहाँ,
हमकौं लिख्यो हैं कहाँ, कहन सबै लगी॥

रत्नाकर की ब्रजभाषा संस्कृतिनिष्ठ होकर समास बहुला बन गई है। इनके ब्रजभाषा साहित्य में अन्य ब्रजभाषा के कवियों के माधुर्य के स्थान पर ओज भाव विकसित हो गया है। 'गंगावतरण' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

कान्ह दूत कैधों ब्रम्हदूत है पधारे आप,
धनि प्रन फेरत कौ मति ब्रजवासी की।
जैहैं जनि बिगरि न बारिधता बारिधि की
हैं बूंद बिस बिचारी की॥

बाबू गुलाबराय ने आधुनिक काल में ब्रजभाषा के प्रयोग-संदर्भ में अपना विचार 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास' में इस प्रकार व्यक्त किया है- ''काव्य के विषय में परिवर्तन के लिए द्वार तो खुला, किन्तु काव्य की भाषा

वही ब्रजभाषा रही, क्योंकि ब्रजभाषा ने साहित्य में ऐसा स्थान प्राप्त कर लिया था कि उसको काव्य-भाषा के पद से च्युत करना कठिन था। रीतिकाल के आदर्श नायक-नायिका राधा-कृष्ण ही थे। इस नाते से रीतिकाल में ब्रजभाषा का ही प्राधान्य रहा। ब्रजभाषा प्रान्तीय भाषा न रही, वरन् साहित्य की व्यापक भाषा हो गई थी। कुछ काल तक तो ब्रजभाषा का ही साम्राज्य रहा, उसके पश्चात् धीरे-धीरे कुछ समय पश्चात् लोगों ने अपनी रूचि के अनुकूल अलग-अलग क्षेत्र चुन लिए।

मिश्रबन्धु हिन्दी साहित्य के इतिहासकार और समीक्षक रहे हैं, किन्तु इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी-बोली दोनों में ही काव्य-स जन किया है।

आचार्य रामाचन्द्र शुक्ल शुद्ध ब्रजभाषा को काव्य-भाषा के रूप में अपनाने वाले प्रमुख कवि हैं। इनकी काव्य-भाषा में माधुर्य का मोहक रूप मिलता है। 'मधुश्रोत' इनकी चर्चित काव्य रचना है।

हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रजभाषा का योगदान सर्वोपरि है। भक्तिकाल में ब्रजभाषा का प्रयोग अवधी भाषा के साथ होता रहा है, जबकि रीतिकाल की काव्यभाषा ब्रज बन गई है। आधुनिककाल के प्रथम चरण अर्थात् भारतेन्दु युग में अनेक कवियों ने ब्रज को काव्य-भाषा के रूप में अपनाया है। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने भी ब्रज को काव्य भाषा के रूप में अपनाया तो खड़ी-बोली को गद्यभाषा के रूप में ग्रहण किया है। यह निर्विवाद तथ्य है कि भक्तिकाल से आधुनिककाल के भारतेन्दु युग तक की काव्य भाषा मुख्यतः ब्रज ही थी और उस समय का यह ब्रजभाषा रूप ही उस समय की हिन्दी का मूल एवं मुख्य स्वरूप था।

7.4 साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी बोली का उद्‌भव और विकास

खड़ी-बोली: नामकरण

हिंदी के सर्वमान्य स्वरूप को खड़ी-बोली नाम दिया गया है। हिंदी भाषा के इस स्वरूप की अनुकूलता अर्थात् खरेपन के कारण 'खरी-बोली' कहा गया और फिर 'खड़ी-बोली; नाम दिया गया। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि शब्द-भण्डार के प्रमुख वर्ग क्रिया की संरचना को नामकरण का आधार बनाया गया होगा अर्थात हिंदी की समस्त क्रिया की रचना में अंतिम ध्वनि 'आ' की मात्र 'ा' खड़ी पाई होती है; यथा-जाना, आना,धोना, खोना, चलना, फिरना, हँसना आदि । सभी क्रिया-शब्द के अन्त में 'ा' खड़ी पाई का प्रयोग है। इसी के आधार पर 'खड़ी पाई' का प्रयोग है। इसी के आधार पर 'खड़ी-बोली' नामकरण की संभावना व्यक्त की गई है।

खड़ी - बोली : क्षेत्र

खड़ी-बोली का क्षेत्र मुजफ्फर नगर और दिल्ली के आस-पास माना गया है। सर्वेक्षण के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि 'खड़ी-बोली' के रूप में प्रयुक्त हिंदी भाषा का रूप उक्त क्षेत्र के किसी भी गाँव में प्रयुक्त नहीं होता। गंभीर चिंतन करने से यह तथ्य सामने आता है कि हिंदी भाषा के विस्त त क्षेत्र और उसकी विविधता देखकर जो एकरूपता देने का प्रयास किया गया, उसमें इस क्षेत्र की बोली को आधार बनाया गया है। 'खड़ी-बोली' का उक्त क्षेत्र वास्तव में पश्चिमी हिन्दी की कौरवी बोली का क्षेत्र है। इस प्रकार खड़ी-बोली के विषय में कहा जा सकता है- ''कौरवी बोली के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की बोधगम्यता के लिए जो संकल्पनात्मक रूप विकसित हुआ, उसे खड़ी-बोली नाम दिया गया है।

खड़ी-बोली का प्रभाव धीरे-धीरे विस्त त होता जा रहा है। वर्तमान में मेरठ, मुजफ्फर नगर, बिजनौर, सहारनपुर, हरिद्वार, गाजियाबाद, मुरादाबाद और दिल्ली तक देख सकते हैं। हरियाणा के करनाल, यमुना नगर, पानीपत, सोनीपत के कुछ भागों में खड़ी-बोली का स्पष्ट प्रभाव मिलता है।

खड़ी - बोली : उद्‌भव

हिन्दी में गद्य-रचना के विकास-काल से खड़ी-बोली का प्रभावी रूप में विकास हुआ है। आदि काल में डिंगल-पिंगल में रचना होती थी, तो मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा काव्य-रचना की आधार भाषा थी। आधुनिक युग में

हिंदी का यही रूप साहित्य-स जन का आधार बना है। हिंदी भाषा में एकरूपता और बोधगम्यता बढ़ाने का प्रयास एक लम्बे समय से चल रहा था। जैन, सिद्ध और नाथ साहित्य में खड़ी-बोली का प्रारंभिक रूप देख सकते है। संत कवियों की भाषा में खड़ी-बोली का प्रभाव सामने आता है।

''पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथ।
आगे ते सतगुरू मिला, दीपक दीया हाथ।''

इस दोहे में शब्दों का तद्भव रूप और कारक-चिह्नों का प्रयोग खड़ी-बोली के प्रभव को प्रदर्शित करता है।

अमीर खुसरो के काव्य में खड़ी-बोली का प्रभावी रूप सामने आता है। डॉ० भोलानाथ तिवारी, अमीर खुसरो को खड़ी-बोली का प्रारंम्भिक और श्रेष्ठ कवि मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अमीर खुसरो को खड़ी-बोली में रचना करने वाले सहृद शुरूआती साहित्यकार की मान्यता दी है।

अकबर के दरबार के दरबारी कवियों में भी खड़ी-बोली की झलक रूप में दिखाई देती है। इन कवियों में 'रहीम' का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

''एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
रहिम सींचहि मूलहिं, फूलहिं फलहिं अधाय॥''

सत्रहवीं शताब्दी में रचित जटमल कृत गोरा-बादल की कथा' खड़ी-बोली की पहली रचना मानी गई है। भक्तिकाल के गद्य में ब्रज, अवधी और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। रीतिकाल के गद्य पर ब्रज और फारसी का प्रभाव अवश्यमेव पड़ा है।

राम प्रसाद निंरजनी कृत अट्ठारहवीं शताब्दी की भाषायोग वशिष्ठ खड़ी-बोली की प्रथम प्रमाणिक रचना मानी गई है। आचार्य शुक्ल ने रामप्रसाद निरंजनी को खड़ी-बोली का प्रौढ़ रचनाकार घोषित किया है। इनकी भाषा योग व शिष्य का एक गद्यांश अंवलोकनीय है-

''जो पुरुष अभिमानी नहीं है, वह शरीर के इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष नहीं करता। क्योंकि इसकी शुद्ध वासना है।''

इसी समय से खड़ी-बोली के प्रयोग की एक परम्परा बनी और साहित्य-स जन की आधार बनी।

खड़ी-बोली: विकास

19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही खड़ी-बोली का प्रभाव रूप विकसित हुआ। मुंशी सदासुख लाल और इंशा अल्लाह खाँ ने खड़ी-बोली को साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की अनुप्रेरक भूमिका निभाई।

सदासुख लाल की हिंदी सरल तथा वाक्य-रचना छोटी-छोटी होने को कारण विशेष लोकप्रिय हुई। इनकी भाषा में सुन्दर संप्रेषणीयता है।

इंशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' ने अपनी लोकप्रियता के आधार पर खड़ी-बोली के स्वरूप को जन-सामान्य तक पहुंचाया। ये अपनी भाषा को सरल तथा शुद्ध रूप देना चाहते थे, किन्तु उनका चमत्कारिक और सौंदर्य प्रिय मन ऐसा न कर सका। इनकी भाषा में यत्र-तत्र मुहावरों के साथ हास्य-व्यंग्य के पुट मिल जाते हैं।

सन् 1803 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कलकत्ते में हुई। इस कॉलेज में जॉन गिलक्राइस्ट हिंदी और उर्दू पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए। इस कॉलेज में अंग्रेजी के साथ भारतीय भाषाओं के अध्यापन की भी व्यवस्था की गई। लल्लूलाल ने जानॅ गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से वर्षों तक इस कॉलेज से जुड़कर शकुंतला, प्रेमसागर, बैताल, पचीसी, और सिंहासन बतीसी आदि कृतियों की रचना की है। इनकी रचनाएं शुद्ध खड़ी-बोली में न होकर ब्रज अथवा उर्दू प्रभवित हैं। इनकी भाषा में संस्कृत के साथ अरबी, फारसी, ब्रज का प्रभाव है। इनके गद्य में काव्यात्मकता भी दिखाई देती है। लोकोक्ति और मुहावरों का यत्र-तत्र प्रयोग है। हिंदी के लगभग सभी कारक-चिह्नों - ने, से, को, का, के, की, में और पर आदि के प्रयोग मिलते हैं।

फोर्ट विलियम कॉलेज में कार्यरत लल्लूलाल के समाकालीन पं. सदल मिश्र का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने नासिकेतोपाख्यान' और रामचरित' नाम से मशः 'कठोपनिषद्' और अध्यात्म रामायण' का हिंदी में अनुवाद किया। इनकी भाषा पर पूर्वी हिंदी का प्रभाव है, किन्तु तत्सम बहुला भाषा होने से खड़ी-बोली के विकास में एक सीमा तक सहयोगी सिद्ध होती है। इनकी भाषा में खड़ी-बोली के अनुरूप कारक-चिह्नों का प्रयोग है। ब्रजभाषा का वचन परिवर्तन रूप यत्र-तत्र मिल जाता है; यथा- बात (एक वचन) > बातन (बहुवचन)। भोजपुरी-अवधी शब्द भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं। इनकी रचना में छोटे-बड़े सभी प्रकार के वाक्य मिलते हैं। इनके वाक्य गद्यात्मक वाक्य-रचना सिद्धांत पर प्रायः शिथिल है, किन्तु कर्ता, कर्म, क्रिया का क्रमशः प्रयोग मिलता है और गद्य में काव्यात्मक रूप नहीं है।

हिंदी गद्य के विकास-आधार पर खड़ी-बोली को दिशा देने में 19वीं शताब्दी के इन लेखकों की महत्वपूर्ण भूमिका के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

''गद्य की एक साथ परंपरा चलाने वाले उपयुक्त, चार लेखकों में से आधुनिक हिंदी का पूरा-पूरा आभास मुंशी सदासुख लाल और सदल मिश्र की ही भाषा में मिलते हैं। व्यवहारोपयोगी इन्हीं की भाषा ठहरती है। इन दो में भी मुंशी सदासुख लाल की साधु भाषा अधिक महत्व की है। मुंशी सदासुख लाल ने लेखनी भी चारों से पहले उठाई। अतः गद्य का प्रवर्तन करने वालों में उनका विशेष स्थान समझना चाहिए।''

ईसाईयों का खड़ी-बोली के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान रहा है। अंग्रेजी शासन में ईसाई धर्म-प्रचार जोरों पर था। उनके द्वारा जन-जन तक ईसाई धर्म-साहित्य को पहुंचाने के लिए उसे खड़ी-बोली में अनुवाद किया गया।

राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना कर वेदांत-सूत्रों का खड़ी-बोली में हिंदी भाष्य प्रस्तुत किया। ये राष्ट्रीय आन्दोलन और हिंदी के प्रवल प्रेमी थे। इन्होंने सन् 1829 में 'बंगदूत' समाचार-पत्र का प्रकाशन कर हिंदी प्रचार-प्रसार की दिशा प्रदान की है।

सामाजिक और राष्ट्रीय आन्दोलनों से जुड़े सितारे हिंद राजा शिव प्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह का नाम खड़ी-बोली प्रयोग-संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सितारे हिंद राजा शिव प्रसाद उर्दू प्रभावित हिंदी अर्थात हिंदुस्तानी के पक्षधर थे। उनकी चर्चित मुख्य रचनाएं हैं- 'राजा भोज का सपना', मानव धर्मसार'। राजा भोज का सपना' में खड़ी-बोली का उपयोगी रूप है। राजा शिव प्रसाद सिंह ने शिक्षा में हिंदी को उचित स्थान दिलाने के लिए प्रयत्न किया। हिंदी शिक्षा की पुस्तकें लिखवाई। राजा लक्ष्मण सिंह खड़ी-बोली को श्रेष्ठ रूप देने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में आगरा से प्रजा-हितैषी' समाचार-पत्र का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' और 'मेघदूत' का खड़ी-बोली में अनुवाद किया। इनकी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

समाज-सुधारक नवीन चन्द्र राय ने उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में पंजाब में रह कर शिक्षा जगत् के विभिन्न पाठ्यक्रमों की पुस्तकें खड़ी-बोली में लिखीं और अपने साथियों से लिखवाई। पंजाब में ही श्रद्धाराम फुल्लौरी ने अपने मनमोहक स्वर में रामायण और महाभारत की कथा हिंदी में सुनाई। ओम जै जगदीश हरे.... की ध्वनि से हिंदी का प्रचार हुआ।

महर्षि दयानन्द ने अपना व्याख्यान हिंदी में देकर खड़ी-बोली के प्रचार-प्रसार को बल दिया है। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश' की रचना हिंदी में करके एक ओर समाज-सुधार आन्दोलन को जन-सामान्य से जोड़ा है, तो दूसरी ओर खड़ी-बोली के प्रयोग के सुद ढ़ आधार प्रदान किया है। सन् 1875 में, बम्बई में आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द के द्वारा हुई। आर्य समाज से खड़ी-बोली प्रयोग को उत्तम आधारभूमि मिली है।

आधुनिक हिंदी के जन्मदाता भारतेन्दु हरीश्चन्द्र हिंदी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने मुक्त कंठ से कहा है-

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूला
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिअे न हिय को सूल।''

इनकी कविता में जनभाषा का स्वरूप अवश्य दिखाई देता है, किन्तु उनके द्वारा रचित गद्य खड़ी-बोली के आधार पर सामने आता है। उनके रामकालीन साहित्यकारों ने खड़ी-बोली को गंभीरता से अपनाया है। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने हिंदी-प्रयोग में गति लाते हुए हिंदी को दिशा प्रदान की है। उन्होंने 1868 में 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका, 1873 में हरीश्चन्द्र मैगजीन नामक मासिक पत्रिका निकाला। उसका नाम बाद में हरीश्चन्द्र चन्द्रिका हो गया। इसके बाद भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने खड़ी-बोली में अनेक नाटकों की रचना की और निबंध लिखे।

खड़ी-बोली में अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होनी शुरू हुई। पं. प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, पं. राधाकृष्ण गोस्वामी आदि ने साहित्य और पत्रकारिता में खड़ी-बोली को प्रतिष्ठित किया।

सन् 1893 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना से खड़ी-बोली के प्रचारार्थ इसे सुद ढ़ आधार मिला। बाबू श्याम सुन्दर दास और मदन मोहन मालवीय आदि हिंदी-प्रेमियों से इस संस्था की भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही है। इसके पश्चात् खड़ी-बोली प्रयोग में हिंदी साहित्य सम्मेलन, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद; प्रार्थना सभा, बम्बई आदि साहित्यिक संस्थाओं के साथ ब्रह्म समाज आर्य समाज, सनातन धर्म सभा आदि सामजिक संस्थाओं का हिंदी - प्रेम विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है।

हिंदी प्रचार-प्रसार में समय-समय पर प्रकाशित होने वाले पत्र और पत्रिकाओं की विशेष भूमिका रही है। इनमें कुछ प्रमुख हैं- उदन्त मार्तण्ड', बंगदूत, बनारस अखबार', 'प्रजा-हितैषी', 'कविवचन सुधा', प्रदीप सुधाकर, आदि।

खड़ी-बोली के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान मुद्रण-व्यवस्था का रहा है। जैसे-जैसे हिंदी-प्रेम बढ़ा, मुद्रण का आधार मिला, वैसे-वैसे हिंदी -प्रसार को गति मिलती गई है। खड़ी-बोली के माध्यम से सम्प्रेषणीयता का विकसित रूप सामने आया है। द्विवेदी युग से हिंदी-साहित्य स जन मुख्यतः खड़ी-बोली में होने लगा।

''मानस भवन में आर्य जन जिसकी उतारें आरती॥
भगवान भारत वर्ष में गूंजे हमारी भारती॥''
—गुप्त

छायावाद में प्रवेश कर खड़ी-बोली को आकर्षक रूप मिला।

''ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक - दूसरे से न मिल सकें,
यह विडम्बना है जीवन की।।''
- प्रसाद

इसके पश्चात खड़ी-बोली हिंदी साहित्य-स जन का आधार बन गई। वर्तमान समय में 'खड़ी-बोली' को हिंदी के पर्याय रूप में ग्रहण किया जाने लगा है। संविधान में हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने हेतु हिंदुस्तानी (उर्दू मिश्रित हिंदी) और हिंदी (संस्कृत विकसित-परिनिष्ठित हिंदी) का विवाद चलता रहा है, किन्तु इसका भी निश्चय अंत में- संविधान में हिंदी राजभाषा और देवनागरी उसकी लिपि बनी।''

वर्तमान समय में खड़ी-बोली की पर्याय बनी हिंदी (मानक हिंदी) न केवल भारत में प्रयुक्त हो रही है, वरन् गयाना, सूरीनाम, मॉरीशस, ट्रिनीडाड, टुबैगो, फिजी, कनाडा और अमेरिका आदि देशों में प्रयुक्त हो रही है।

7.5 मानक हिंदी : रूप गत विवेचना

रूप-अध्ययन के समय आचार्य यास्क कृत निरूव्त में नाम आख्यात, उपसर्ग और निपात की चर्चा की गई है- ''चत्वरि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपातश्च। ''नाम के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण, अख्यत के अन्तर्गत क्रिया का अध्ययन किया जाता है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया शब्दों को अर्थ तत्व की संज्ञा दी जाती

है। इन्हें मूल शब्द का भी नाम दिया जाता है। इन शब्दों को वाक्य में प्रयोग के लिए विविध उपसर्ग तथा प्रत्ययों को प्रयोग किया जाता है। रूप परिवर्तन की प्रक्रिया में उपसर्ग तथा प्रत्यय की बहुकोणीय भूमिका होती है। इस दिशा में कारक व चिह्नों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है।

हिन्दी भाषा में समय, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार रूप प्रक्रिया के अवयवों में पर्याप्त परिवर्तन हो गया हैं ऐसे अवयवों में यदि कुछ परंपरागत स्वरूप मिलता है, तो बहुत कुछ नवीनता भी दिखाई देती है।

(अ) **उपसर्ग**

रूप-रचना प्रक्रिया में जिन अक्षर या अक्षर-समूह का प्रयोग शब्द के पूर्व किया जाता है, उन्हें उपसर्ग यह पूर्वसर्ग नाम दिया जाता है यथा-आचार्य में 'प्र' उपसर्ग लगाकर प्राचार्य की रचना होती है। उपसर्ग के प्रयोग से शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। यथा-आचार्य का अर्थ है। शिक्षक तो प्राचार्य का अर्थ है मुख्य या प्रधान शिक्षक। हिन्दी उपसर्गों को निम्न वर्गो में विभक्त कर सकते है।

1. **तत्सम उपसर्ग** - साहित्यिक हिन्दी में परंपरागत तत्सम शब्दों के साथ तत्सम, उपसर्गो का प्रयोग कर अनुकूल रूप-रचना की जाती है। संस्कृत के प्र, परा, अप, सम, अनु, अब, स, निर, दुस, दूर, वि, अधि, अपि, अति, शु, कल, अभि, प्रति, परि, उप आदि के यत्र-तत्र प्रयोग मिलते है। इनका अपना स्वतंत्र अर्थ नहीं होता किन्तु शब्द का साथ पाकर विशेष अर्थ देते हैं। ना ही उनका अर्थ होता है; यथा-सुगंध >सु + गंध = अनुकूल या मनभावन गंध। निर्जन निर + जन = जहां कोई न हो अर्थात् जनरहित। उपसर्ग को अव्यय की कोटि में रखा जाता है, क्योंकि इनके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

2. **तद्भव उपसर्ग** - हिन्दी की रूप-रचना में संस्कृत के उपसर्ग परिवर्तित होकर भी प्रयुक्त होते हैं। इनकी अर्थ अभिव्यक्ति की शक्ति और प्रयोग तत्सम उपसर्ग के ही समान हैं। ऐसे उपसर्गो का प्रयोग प्रायः तद्भव शब्दों के साथ लगता है। हिन्दी के कुछ प्रमुख तद्भव उपसर्ग द्रष्टव्य हैं-

   अ- यह उपसर्ग तत्सम शब्दों के साथ तद्भव शब्दों में भी लगता है; यथा -

   थाह > अ + थाह = अथाह

   जान > अ + जान = अजान

   अन- यह 'अ' के स्थान पर प्रयुक्त किया जाने वाला उपसर्ग है-

   कही > अन + कही = अनकही

   थक > अन + थक = अनथक

   मोल > अन + मोल = अनमोल

   अध- यह संस्कृत अर्ध से परिवर्तित हुआ उपसर्ग है-

   पका > अध + पका = अधपका

   खिला > अध + खिला = अधखिला

   कपार > अध + कपार = अधकपार

   औ- यह तत्सम उपसर्ग 'अव' ओ परिवर्तित हो कर बना है। इसका प्रयोग ही उए 'बुरा' अर्थ में किया जाता है। इस उपसर्ग के प्रयोग से जो रूप रचना होती है। वह अपकर्ष अर्थ देने लगता है;

   यथा- गुन > औ + गुन = औगुन

   घट > औ + घट = औघट

दु- इसका प्रयोग संस्कृत के दुर उपसर्ग के स्थान पर उसके अर्थ में किन्तु तद्भव शब्दों में साथ किया जाता है;

यथा- बली > दु + बली = दुबली

काल > दु + काल = दुकाल

नि- यह संस्कृत के उपसर्ग निर् से परिवर्तित हो कर बना है। यह उसी अर्थ में प्रयुक्त भी होता है।

डर > नि + डर = निडर

पूता > नि + पूता = निपूता

3. **विदेशी उपसर्ग** - भारत पर एक लम्बे समय से विदेशियों का शासन रहा है। उनकी भाषा यहां की राजभाषा या धर्म भाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही है। इस कारण उन विदेशी भाषाओं के विविध प्रभावों में उपसर्ग प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। इस उपसर्ग का प्रयोग विदेशी भाषा के शब्दों के साथ परम्परागत शब्दों के साथ भी होता रहा है। विदेशी उपसर्गो को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं-

(क) **अरबी-फारसी उपसर्ग**

कम (थोड़ा)	-	कमजोर, कमसमझ
गैर (भिन्न)	-	गैरजिम्मेदार, गैरहाजिर
ना (नहित/अभाव)	-	नालायक, नापसंद
बद (बुरा)	-	बदमाश, बदनाम, बदतमीज,
बे (रहित/बिना)	-	बेईमान, बेरहम, बेकाम
हम (साथ)	-	हमदर्द, हमउम्र, हमसफर
हर (प्रत्येक)	-	हरदम, हरघड़ी, हरकाम

(ख) **अंग्रेजी उपसर्ग**

वर्तमान समय की हिन्दी में अंग्रेजी के उपसर्गों से भी रूप-संरचना का निर्धारण किया जाता है। इन उपसर्गो का प्रयोग मुख्यतः अंग्रेजी शब्दों के साथ होता है किन्तु यद-कदा परंपरागत हिन्दी शब्दों के साथ भी किया जाता है।

सब	-	सब-इंस्पेक्टर, सब-ओवरसियर
हेड	-	हेड मास्टर, हेड पादरी

रूप-संरचना की प्रक्रिया में उपसर्गो की विशेष भूमिका होती है। इससे विविध भावों की अभिव्यक्ति को दिशा मिलती है।

उपसर्गों के प्रकार्य- हिदी रूप-संरचना में उपसर्ग की विशेष भूमिका होती है। इनके द्वारा नवीन श्ब्दों की रचना, व्युत्पादन, अर्थद्योतन तथा संबंध, द्योतन की अनुकूल भूमिका सम्पन्न होना महत्वपूर्ण है। नए शब्दों के निर्माण से भाषा-सम द्ध होती है; यथा महां > महाद्वीप, महाधिवक्ता, सम > समकश, समतोल। वर्ग-विशेष के शब्द में परिवर्तन से व्युत्पादन कार्य समान होता है; यथा-

संज्ञा		**विशेषण**	**क्रिया**		**विशेषण**
अन-मेल	>	अनमेल	अ-टलना	-	अटल
दुर-मुख	>	दुर्मुख	अ-सहना	-	असह
बे-दद्र	>	बेदर्द	अन-पढ़ना	-	अनपढ़
ला-पता	>	लापता			

उपसर्ग के प्रयोग से विविध रूपों की रचना और विविध भावों को अभिव्यक्ति मिलती है।

प्रत्यय – प्रत्यय के लिए परसर्ग नाम भी दिया जाता है। रूप की संरचना में प्रत्यय की विशेष भूमिका होती है। प्रत्यय उस अक्षर या अक्षर समूह को कहते है जो शब्द के अंत में लगता है। इसके प्रयोग से मूल शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। प्रत्येक भाषा में प्रत्यय की रचना होती है, किन्तु सभी भाषाओं की प्रत्यय की प्रव त्ति में भिन्नता होती है। हिन्दी में संस्कृत के अनेक तत्सम प्रत्यय आ गए हैं, तो अनेक तद्भव बन गए हैं। विदेशी भाषा के प्रत्यय भी हिन्दी में प्रयुक्त होते है। अनेक विदेशी प्रत्यय तो परम्परागत शब्दों के साथ भी प्रयुक्त होते है। हिन्दी में बहुल रूप से प्रयुक्त प्रत्ययों को निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) **परम्परागत प्रत्यय**

संज्ञावाची प्रत्यय – जिन प्रत्ययों के योग से संज्ञा रूप की संरचना होती है, उन्हें उसी आधार पर संज्ञावाची प्रत्यय कहते हैं। हिन्दी में ऐसे प्रत्ययों का पर्याप्त रूप में प्रयोग होता है।

- अक्कड़		>	पियक्कड़, बुझक्कड़, भुल्क्कड़।
- अन्त	(- अन्त)	>	रटन्त, भिड़न्त, गढ़न्त।
- आई	(- आपिका)	>	चढ़ाई, जुताई, पढ़ाई, तिलाई।
- आपा	(- त्व)	>	रंडापा, बुढ़ापा, मोटापा।
- आव	(- अभ्य)	>	घुमाव, छिड़काव, बचाव।
- आगट	(- आप + वति)	>	थकावट, बनावट, मिलावट, सजावट।
- हाहट	(आप + वति)	>	गड़गड़ाहट, घबराहट, थर्थराहट।
- ईला		>	पथरीला, रंगीला, गंठीला।
- औती	(- पत्री)	>	चुनौती, बपौती, मनौती।
- पन	(- त्व)	>	लड़कपन, गोरापन, गंवारपन।

(ख) **विदेशी प्रत्यय** – हिन्दी में अरबी और फारसी के कुछ प्रत्यय ग्रहण कर लिए गए हैं। रूप-संरचना में इनका प्रयोग किया जाता है। बोलचाल की भाषा में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु साहित्यिक हिन्दी में विरल प्रयोग मिलता है। कुछ प्रमुख प्रत्यय और उनसे आधारित रूप संरचना द्रष्टव्य है।

ई	-	खुश	>	खुशी
		नवाब	>	नवाबी
		दोस्त	>	दोस्ती
कार	-	जानना	>	जानकार
		पेश	>	पेशकार
		साहू	>	साहूकार
दानी	-	गोद	>	गोददानी
		मच्छर	>	मच्छरदानी
		चाय	>	चायदानी
दान	-	इत्र	>	इत्रदान
		पान	>	पानदान

		चाय	>	चायदान
खाना	-	छपाई	>	छपाईखाना
		डाक	>	डाकखाना
ची	-	मशाल	>	मशालची
		नकल	>	नकलची
बाज	-	पतंग	>	पतंगबाज
		कबूतर	>	कबूतरबाज
बंद	-	नजर	>	नजरबंद
		मोहर	>	मोहरबंद
		हथियार	>	हथियारबंद
साज	-	घड़ी	>	घड़ीसाज
		घोड़ी	>	घोड़ीसाज

(ग) **अन्तःसर्ग - रूप** – संरचना में उपसर्ग और प्रत्यय के साथ यदा-कदा अन्तःसर्ग का भी उपोग किया जाता है। जब किसी शब्द के विभिन्न अक्षरों के मध्य कुछ अक्षरों की योजना की जाती है, तो उसे अन्तःसर्ग कहते है। हिन्दी भाषा की रूप संरचना में ऐसे प्रयोग यत्र-तत्र मिल जाते हैं। ऐसी रूप-संरचना प्रायः साहित्यिक संदर्भ में उपयोगी होती है। यह परंपरा संस्कृत भाषा से ही ग्रहित है। संस्कृत भाषा में इसका बहुल रूप में प्रयोग होता है। हिन्दी में प्रयुक्त ऐसी रूप-संरचना के कुछ उदाहरण उल्लेख हैं।

पुत्र	>	पौत्र		सुहृद	>	सौहाद्र
भरत	>	भारत		व्याकरण	>	वैयाकरण

हिन्दी में अन्तःसर्ग की मुख्य संरचना प्रेरणार्थक क्रिया में मिलती है; यथा-

लिखना	>	लिखाना, लिखवाना
पढ़ना	>	पढ़ाना, पढ़वाना
निकलना	>	निकालना, निकलवाना
लूटना	>	लुटाना, लुटवाना

प्रथम प्रेरणार्थक में 'अ' अन्तःसर्ग की योजना से लिखना, पढ़ना, निकालना, लुटाना की संरचना हुंई है, तो द्विप्रेरणार्थक रूप संरचना में 'वा' अन्तःसर्ग की योजना से लिखवाना, पढ़वाना, निकलवाना, लुटवाना शब्द बने हैं। इस प्रकार रूप संरचना में अन्तःसर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका है।

(घ) **कारक संकल्पना** – कारक चिह्नों को परसर्ग (Portposition) नाम दिया जाता है। क्रिया के निष्पादन को कारक कहते हैं। इनका प्रयोग संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के साथ शब्दों में भी किया जाता है। इसलिए इन्हें परसर्ग (पर + सर्ग) कहते है।। हिदी में संज्ञा के साथ इनका प्रयोग स्वतंत्र रूप में होता है;

यथा -

ने	>	श्याम ने, मोहन ने
से	>	कलम से, वायुयान से
पर	>	पेज पर, हल पर

हिन्दी में सर्वनाम के साथ इनका प्रयोग कभी मिलाकर होता है, कभी स्वतंत्र रूप में होता है। इससे रूप भिन्नता सामने आती है; यथा-

ने > तुम ने या तुमने
आप ने या आपने

से > मुझ से या मुझसे

को > हम को या हमको

हिन्दी में का कारक चिह्न की विशेष प्रव त्ति है। यह विशेष संदर्भों में अन्य कारकों के अर्थ की भूमिका का वहन करता है। जब संप्रदान और अपादान आदि वाक्य में गुणीभूत होकर आते हैं, तब की से उसकी अभिव्यक्ति होती है; यथा-

1. उसने गुलशन से कलम मांग ली।
   उसने गुलशन की कलम मांग ली।
2. रामसिंह को दौड़ने की इच्छा है।
   रामसिंह की दौड़ने की इच्छा है।
2. रमेश को आशा है कि आज धूप होगी।
   रमेश की आशानुसार आज धूप होगी।

रूप-संरचना में अर्थ और संबंध - तत्व की महत्वपूर्ण योजना होती है ; यथा-

	अर्थतत्व	**सम्बन्धतत्व**	**रूप-रचना**
संज्ञा	गनोहर	ने,को, पर	मनोहर ने, मनोहर को, मनोहर पर
	लता	से, में, की	लता से, लता में, लता की
सर्वनाम	मैं	को, ए, ऐ, मैं	मुझको, मुझे, मुझसे, मुझमें
	तुम	ने, को, से, मैं	तुमने, तुमको, तुमसे, तुममें
	वह (उस)	ने, को, से, की	उसने, उसको, उससे, उसकी
	यह (इस)	ने, ए, को, से	इसने, इसे, इसको, इससे
	कौन (किस)	ने, ए, को, से	किसने, किसे, किसको, किससे

हिन्दी की रूप-संरचना में उपसर्ग, प्रत्यय और अन्तःसर्ग की विशेष भूमिका होती है। रूप-विकास से विभिन्न भावों को अभिव्यक्ति मिलती है।

अध्याय - 8
हिन्दी की भाषिक संरचना

8.1 हिन्दी स्वनिम का वर्गीकरण

मनुष्य में विविध ध्वनियों के उच्चारण की क्षमता होती है। इसका ज्ञान वार्तालाप के समय होता है और विविध गानों के आरोह-अवरोह के संदर्भ से ध्वनि की विविधता का सुस्पष्ट ज्ञान होता है। भाषा विज्ञान में मानव द्वारा प्रयुक्त प्रयुक्त उन ध्वनियों का ही वर्गीकरण तथा विश्लेषण किया जाता है, जिनका भावाभिव्यक्ति में महत्व होता है।

ध्वनि-भेद – सभी भाषाओं में स्वर तथा व्यंजन दो प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं। ध्वनि सम्बन्धी यह विभाजन अत्यन्त पुराना है। आचार्य पतंजलि ने महाभाष्य में स्वर और व्यंजनों के दो वर्गों का उल्लेख किया है – "स्वयं राजन्ते स्वराः। अन्वग् भवति व्यंजनम् इति।" (महाभाष्य 1/2/29.30) अर्थात् स्वर ये ध्वनियाँ हैं जो स्वयं उच्चारित हो सकती है। व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जो स्वरों की सहायता के बिना उच्चारित नहीं हो सकती।

पतंजलि ने स्वरों की प्रधानता और व्यंजनों की अप्रधानता को भी रेखांकित किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि उनके अनुसार व्यंजनों का उच्चारण स्वर के सहयोग के बिना नहीं हो सकता है।

ब्लाक तथा ट्रेगर ने स्वर और व्यंजन को इस प्रकार परिभाषित किया है – "A vowel is a sound for whose production the oral pass age is unobstructed, so that the air current can flow the lungs to the lips and beyond without being stopped." अर्थात् जिन ध्वनियों के उच्चारण में, मुख में किसी प्रकार का अवरोध न हो, उन्हें स्वर ध्वनि कहते हैं। ऐसे में फेफड़े से आने वाला वायु-प्रवाह ओष्ठ और उसके आगे कहीं भी अवरुद्ध नहीं होता है।

"A consonant, conversely, is a sound for whose production the air current is completely stopped by an occlusion of the larynx or the oral passage."

1. स्वर का उच्चारण अकेले सम्भव है, किन्तु स्, ज्, श् व्यंजन अपवाद हैं।
2. सभी स्वरों का उच्चारण देर तक कर सकते हैं, किन्तु व्यंजन में केवल संघर्षी व्यंजन ऐसे होते हैं।
3. ई तथा ऊ को छोड़कर सभी स्वरों के उच्चारण में आवाज मुख-विवर में गूँजकर सीधे निकलती है, किन्तु व्यंजन में अवरोध होता है।
4. प्रायः सभी स्वर व्यंजनों की अपेक्षा अधिक मुखर होते हैं।
5. ऑसिलोग्राफ से लहर सम्बन्धी प्रयोग करने पर ज्ञात होता है कि स्वर-लहरें व्यंजन से भिन्न होती हैं, किन्तु र्, म् दोनों के मध्य आने वाली ध्वनियाँ हैं।

स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों को सरल और वैज्ञानिक रूप से इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं –

स्वर – वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण के समय निःश्वास की वायु अवरोध रहित अवस्था में अबोध गति से बाहर आती है।

व्यंजन – वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण के समय निःश्वास की वायु कहीं न कहीं बाधित होकर बाहर आती है।

8.1.1 स्वर वर्गीकरण

जिन ध्वनियों के उच्चारण में अन्य किसी ध्वनि का सहयोग आवश्यक न हो उच्चारण अबोध गति से जितनी देर चाहें कर सकते हैं, उन्हें स्वर ध्वनि कहते हैं;

यथा - अ, इ, उ आदि।

	अग्र	**मध्य**	**पश्च**
सर्वोच्च	ई		ऊ
उच्च	इ		उ
निम्नतम उच्च	ए		ओ
उच्चतर मध्य	ऐ		औ
निम्नतर मध्य		अ	
निम्न		आ	

हिन्दी स्वरों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत कर सकते हैं –

1. **जीभ का कौन-सा भाग करण का कार्य करता है –** फेफड़े से बाहर आने वाली निःश्वास वायु से मुख-विवर के विभिन्न रूपों के कारण विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण होता है। स्वर उच्चारण-प्रक्रिया में जीभ का अग्र, मध्य अथवा पश्च भाग उठकर सहायक सिद्ध होता है। इसी आधार पर हिन्दी स्वरों को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

   (क) अग्र स्वर - इ, ई, ए, ऐ।

   (ख) मध्य स्वर - अ।

   (ग) पश्च स्वर - उ, ऊ, ओ, औ।

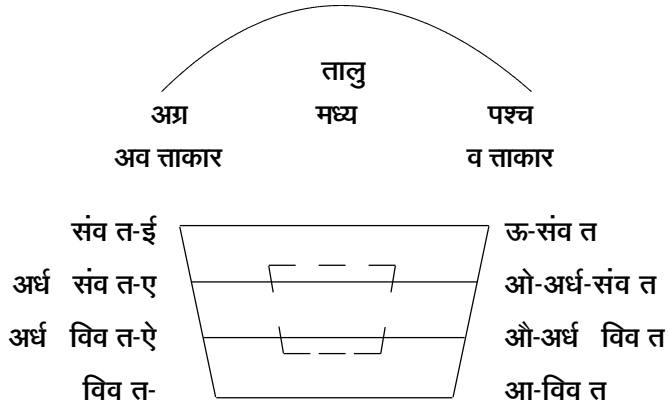

हिन्दी स्वर : वर्गीकरण

2. **जीभ का का व्यवहृत भाग कितना उठता है –** स्वर उच्चारण प्रक्रिया में जीभ के अल्पाधिक रूप से उठने के कारण मुख की खुलने वाली स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन कर सकते हैं।

(क) **विवृत** – जब मुख-विवर पूरा खुला हो, जीभ निश्चेष्ट पड़ी हो; यथा – आ, ऑ,

(ख) **अर्ध-विवृत** – जब मुख-विवर लगभग पूरा खुला हो जीभ एक तिहाई उठी हो; यथा – ऐ, औ।

(ग) **अर्ध-संवृत** – जब मुख-विवर संकरा हो, जीभ दो तिहाई उठी हो; यथा – ए, ओ।

(घ) **संवृत** – जब मुख-विवर अत्यन्त संकरा हो, जीभ बहुत ऊपर उठी हो या सर्वाधिक चंचल हो; यथा – इ, ई, उ, ऊ।

3. **ओष्ठों की स्थिति के अनुसार** – उच्चारण में ओठों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्चारण हेतु निःश्वास का भीतरी नियंत्रण जीभ के द्वारा होता है, तो उनका बाहरी नियन्त्रण ओठों के द्वारा होता है। ओठों की स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं –

(क) **वर्त्ताकार** – इसे वर्तमुखी स्वर भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओंठ अल्पाधिक रूप में वर्त्ताकार खुलते हैं। ऐसे स्वर हैं – उ, ऊ, ओ, औ।

(ख) **अवर्त्ताकार** – इसे अवर्तमुखी भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओंठ खुलकर वर्त्ताकार रूप नहीं धारण करते हैं वरन् सामान्य रहते हैं। ऐसे स्वर हैं – इ, ई, ए, ऐ।

(ग) **उदासी** – जिन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओंठ खुलकर लगभग उदासी रहते हैं; यथा – अ।

4. **मात्रा के अनुसार** – उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। मात्रा के आधार पर स्वरों का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। संस्कृत में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन प्रकार के स्वर मिलते हैं। हिन्दी में इनकी संख्या मुख्यतः तीन है – ह्रस्व-अ, इ, उ; दीर्घ-आ, ई, ऊ और प्लुत-ओ (ओउम)।

5. **कोमल तालु और अलिजिह्वा की स्थिति के अनुसार** – ये दोनों अंग कभी नासिक-विवर के मार्ग को पूरी तरह बन्द कर देते हैं, जिससे हवा केवल मुख मार्ग से निकलती है। ऐसे में उच्चारित होने वाला स्वर मौखिक होता है। ये अंग कभी मध्य स्थिति में रहते हैं, जिससे वायु मुख तथा नासिका दोनों ही मार्गों से निकलती है। ऐसी ध्वनि को अनुनासिक ध्वनि कहते हैं। इस तरह स्वरों के दो वर्ग बना सकते हैं।

(क) **मौखिक** – अ, आ, ए आदि सभी स्वर।

(ख) **अनुनासिक** – आँ, एँ।

अनुनासिक स्वर ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं –

पूर्ण अनुनासिक – पूर्ण अनुनासिकता को अनुनासिक चिह्न द्वारा लिपिबद्ध किया जाता है; यथा – हाँ > आँ, एँ।

अपूर्ण अनुनासिक – स्वरों की अपूर्ण अनुनासिक नासिक्य व्यंजनों के आधार पर होती है। नासिक्य व्यंजन के पूर्व का स्वर उच्चारण में आंशिक अनुनासिक हो जाता है। लेखन में अपूर्ण अनुनासिक चिह्न नहीं लगाया जाता है; यथा – राम > राँम् > र् आँ म्।

6. **स्वर-तंत्रियों की स्थिति के आधार पर** – विभिन्न स्वरों के उच्चारण में स्वर–तंत्रियाँ भिन्न-भिन्न स्थिति धारण करती हैं। इस आधार पर भी स्वरों को वर्गीकृत कर सकते हैं। हिन्दी के सभी स्वर मूलतः घोष है। विशेष प्रयोग-स्थिति में और कुछ अन्य भाषाओं में अघोष स्वर मिलते हैं।

(क) **घोष** – जिन स्वरों के उच्चारण में स्वर-तंत्रियों के निकट आने के कारण वायु घर्षण के साथ बाहर आती है, उन्हें घोष कहते हैं। प्रायः सभी स्वर घोष होते हैं।

(ख) **अघोष** – जिनके उच्चारण के समय स्वर-तंत्रियों के एक-दूसरे से दूर होने के कारण वायु बिना घर्षण के, सरलता से बाहर आती है, उन्हें अघोष स्वर कहते हैं; यथा – विभिन्न बोलियों में प्रयुक्त इ, उ, ए विशिष्ट ध्वनियाँ।

(ग) **जपित** – जब बीमार या कमजोर व्यक्ति फुसफस करता है, तो वायु स्वर-तंत्रियों से साधारण संघर्ष करती हुई बाहर आती है। इस प्रकार से उच्चरित स्वर ध्वनियाँ जपित होती हैं।

7. **मुख की मांसपेशियों की द ढ़ता के आधार पर** – विभिन्न स्वरों के उच्चारण में कभी तो मुख की मांसपेशियां द ढ़ हो जाती हैं, तो कभी शिथिल हो जाती हैं। कुछ ध्वनियों के उच्चारण-समय मांसपेशियों में हल्की द ढ़ता होती है। इस आधार पर स्वरों के शिथिल, द ढ़ और मध्यम तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं –

(क) **शिथिल** – अ, इ, उ।

(ख) **द ढ़** – औं, ऑ।

(ग) **मध्यम** – ए, ओ।

8. **संयुक्त के आधार पर** – स्वरों के एक स्थान और एक से अधिक स्थानों के उच्चारण को ध्यान में रखकर उन्हें दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) **मूल स्वर** – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्थान पर रहती है, यथा – अ, आ, इ, ई आदि।

(ख) **संयुक्त स्वर** – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्वर उच्चारण स्थान से दूसरे उच्चारण स्थान पर पहुँच जाती है, तो संयुक्त स्वर होते हैं; यथा – ए > अइ, ओ > अउ, ऐ > अए, औ > अओ आदि।

8.1.2 व्यंजन वर्गीकरण

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में स्वर ध्वनि का सहयोग अनिवार्य हो, निःश्वास की वायु मुख-विवर से, अबोध गति से, निकल नहीं पाती है वरन् बाधित होने के कारण घर्षण करती हुई बाहर आती है। व्यंजनों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर करते हैं –

स्थान/ प्रयत्न	स्वर यंत्र मुख	कंठ्य	तालव्य	मूर्द्धन्य	दन्त्य	वर्त्स्य	दन्तोष्ठ	द्वयोष्ठ्य
स्पर्श		क् ख् ग् घ्		ट् ठ् ड् ढ्	त् थ् द् ध्			प् फ् ब् भ्
स्पर्श			च् छ्					
संघर्षी			ज् झ्					
नासिक्य		ङ्	ञ्	ण्	न्	न्		म्
पार्श्विक				ळ्		ल्		
प्रकंपी					र्			
उत्क्षिप्त				ड् ढ्				
संघर्षी	ह्	ख़ ग़	श्		स्	स् ज़	व् फ्	
अर्धस्वर			य्					व्

(क) **प्रयत्न के आधार पर** – इस आधार पर व्यंजनों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. **स्पर्श** – जिनके उच्चारण-समय में मुख के दो भिन्न अंग-दोनों ओष्ठ, नीचे का ओष्ठ और ऊपर के

दांत, जीभ की नोक और दाँत आदि एक-दूसरे से स्पर्श की स्थिति में हों, वायु उनको स्पर्श करती हुई बाहर आती हो, तो उन्हें व्यंजन कहेंगे; यथा – क्, ट्, त् तथा प् वर्गों की प्रथम चार ध्वनियाँ।

2. **संघर्षी –** जिनके उच्चारण में मुख के दो अवयव एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं और वायु निकलने का मार्ग संकरा हो जाता है, तो वायु घर्षण करके निकलती है, उन्हें संघर्षी व्यंजन कहते हैं; यथा – ख्, ग्, ज्, फ्, श्, ष्, स् आदि।
3. **स्पर्श संघर्षी –** जिन व्यंजनों के उच्चारण में पहले स्पर्श फिर घर्षण की स्थित हो; यथा – च्, छ्, ज्, झ्।
4. **नासिक्य –** जिन व्यंजनों के उच्चारण में दांत, ओष्ठ, जीभ आदि के स्पर्श के साथ वायु नासिक मार्ग से बाहर आती है, उन्हें नासिक्य ध्वनि कहते हैं, यथा – पाँचों वर्गों की पाँचवीं (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) ध्वनियाँ।
5. **पार्श्विक –** जिन व्यंजनों के उच्चारण में मुख के मध्य दो अंगों के मिलने से वायु-मार्ग अवरुद्ध होने के बाद जीभ के एक या दोनों ओर से वायु बाहर आती है; उन्हें पार्श्विक कहते हैं; यथा – ल्।
6. **लुण्ठित –** जिनके उच्चारण में जीभ बेलन की भांति लपेट खाती है; यथा – र्। 'र्' ध्वनि यदा-कदा प्रकम्पित रूप में भी प्रयुक्त होती है।
7. **उत्क्षिप्त –** जिनके उच्चारण में जीभ की नोक झटके से तालु को छूकर वापस आ जाती है, उन्हें उत्क्षिप्त व्यंजन कहते हैं, यथा – ड़, ढ़।
8. **अर्ध-स्वर –** जिन ध्वनियों की उच्चारण प्रकृति स्वर और व्यंजन के मध्य होती है, उन्हें अर्ध-स्वर कहते हैं। इनका उच्चारण स्वर के समान ही शुरू होता है, किन्तु व्यंजन के निकट होता है। स्वरों के समान इनकी मात्रा भी नहीं होती है, इसलिए इन्हें व्यंजनों में रखते हैं; यथा – य्, व्।

(ख) **स्थान के आधार पर –** इस आधार से व्यंजनों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. **स्वर यन्त्रमुखी –** जिन व्यंजनों का उच्चारण स्वर-यन्त्रमुख से हो; यथा – ह्, अंग्रेजी का एच (H) है।
2. **जिह्वामूलीय –** जिनका उच्चारण जीभ के मूल भाग से होता है; यथा – क्, ख्, ग्।
3. **कण्ठ्य –** जिन व्यंजनों का उच्चारण कण्ठ से होता है, उन्हें कण्ठ्य कहते हैं। इनके उच्चारण में जीभ का पश्च भाग कोमल तालु को स्पर्श करता है; जैसे – कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्)।
4. **तालव्य –** जिनका उच्चारण जीभ की नोक या अग्रभाग के द्वारा कठोर तालु के स्पर्श से होता है जैसे – च्, छ्, ज्, ञ्, श्।
5. **मूर्द्धन्य –** जिन व्यंजनों का उच्चारण मूर्धा से होता है। इस प्रक्रिया में जीभ मूर्धा का स्पर्श करती है; जैसे – ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ष्।
6. **वर्त्सर्य –** जिन ध्वनियों का उद्‌भव जीभ के द्वारा वर्त्स या ऊपर मसूढ़े के स्पर्श से हो; यथा – न्, ल्, र्।
7. **दन्त्य –** जिन व्यंजनों का उच्चारण दाँत की सहायता से होता है। इसमें जीभ की नोक ऊपर दाँत-पंक्ति का स्पर्श करती है; यथा – त्, थ्, द्, ध्, न्, ल्, स्।
8. **ओष्ठ्य –** दोनों ओष्ठों के मिलने से उच्चारित होने वाली ध्वनि को ओष्ठ्य व्यंजन कहते हैं; यथा – प्, फ्, ब्, भ्, म्।

(ग) **स्वर-तन्त्रियों के आधार पर –** इस आधार पर व्यंजनों के दो वर्ग बना सकते हैं –

1. **घोष –** जिन ध्वनियों के उच्चारण-समय में स्वर-तन्त्रियाँ एक-दूसरे के निकट होती हैं और निःश्वास वायु निकलने से उसमें कम्पन हो। प्रत्येक वर्ग की अन्तिम तीन (तीसरी, चौथी, पाँचवी) ध्वनियाँ; यथा – ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ् आदि।
2. **अघोष –** जिनके उच्चारण-समय स्वर-तंत्रियों में कम्पन न हो। प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो (पहली, दूसरी) ध्वनियाँ; यथा – क्, ख्, च्, छ् आदि।

(घ) **प्राणत्व के आधार पर –** प्राण का अर्थ है – वायु। इस आधार पर व्यंजन के दो वर्ग बना सकते हैं –

1. **अल्पप्राण –** जिनके उच्चारण में सीमित वायु निकलती है, उन्हें अल्पप्राण व्यंजन कहते हैं। ऐसी ध्वनियाँ 'ह' रहित होती हैं। प्रत्येक वर्ग की प्रथम, त तीय और पंचम व्यंजन ध्वनियाँ; यथा – क्, ग्,, ङ्, ज्, च्, ञ् आदि।
2. **महाप्राण –** जिनके उच्चारण में अपेक्षाकृत अधिक वायु निकलती है। ऐसी ध्वनि ह्-युक्त होती; जैसे – ख = कह् (kh), घ = (Gh) आदि। प्रत्येक वर्ग की दूसरी, चौथी ध्वनियाँ; यथा – ख्, घ्, छ्, झ्, ठ्, ढ् आदि।

(ङ) **अनुनासिकता के आधार पर –** मुख और नासिका मार्ग से निकलने वाली निःश्वास वायु के आधार पर व्यंजनों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. **मौखिक –** जिसके उच्चारण में वायु मुख-मार्ग से निकलती है; यथा – क्, च्, ट्, त् आदि।
2. **नासिक्य –** जिसमें निःश्वास वायु मुख्यतः नासिका मार्ग से बाहर आती है; यथा – ङ्, ञ्, ण्, न्, म्।

(च) **संयुक्तता के आधार पर –** इस आधार पर व्यंजनों के तीन वर्ग बना सकते हैं –

1. **असंयुक्त –** इन्हें मूल व्यंजन भी कहते हैं। जो व्यंजन अकेले स्वतन्त्र रूप में प्रयुक्त हों; यथा – क्, ख्, च्, त् आदि।
2. **संयुक्त –** जब दो भिन्न व्यंजन ध्वनियाँ एक साथ प्रयुक्त हों। इनमें एक अर्ध और दूसरी पूर्ण ध्वनि होती है; यथा – क्त (रक्त), प्य (प्यारा), न्त (अन्त) आदि।
3. **द्वित्व –** जब किसी एक व्यंजन का एक अर्ध तथा दूसरा पूर्ण रूप एक साथ प्रयुक्त होता है; यथा – त्त (पत्ता), प्प (गप्प), क्का (पक्का) आदि।

(छ) **मांसपेशियों की द ढ़ता के आधार पर –** विभिन्न व्यंजनों के उच्चारण में मुख की मांसपेशियों की स्थिति में भिन्नता होती है। इस आधार पर व्यंजनों के तीन वर्ग बना सकते हैं –

1. **द ढ़ –** जिनके उच्चारण में मुख की मांसपेशियों द ढ़ हो जाती हैं; यथा – ड्, ढ्, स्, ट्।
2. **मध्यम –** जिनमें मुखकी मांसपेशियां न तो विशेष द ढ़ होती हैं, न ही विशेष शिथिल होती हैं; यथा – च्, श्।
3. **शिथिल –** जिनके उच्चारण में मुख की मांसपेशियां शिथिल होती हैं, यथा – प्, क्।

8.2 हिन्दी शब्द-समूह

शब्द-समूह के लिए 'शब्दावली' और 'शब्द-भण्डार' शब्दों का भी प्रयोग होता है; अतः इसके लिए 'हिन्दी-शब्दों' और 'हिन्दी शब्द-भण्डार' नाम भी प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को समग्र रूप में हिन्दी का शब्द-समूह कहते हैं। भाषा चिरपरिवर्तनशील है, इसलिए अन्य भाषाओं के ही समान हिन्दी के शब्द-समूह के शब्दों

की निश्चित संख्या का निर्धारण अत्यन्त कठिन कार्य है। समय-परिवर्तन के साथ हिन्दी में कुछ शब्दों का लोप होता है, तो पर्याप्त संख्या में नए शब्दों का आगमन भी होता रहता है। शब्द कोषों के विभिन्न संस्करणों में शब्दों की बढ़ती हुई संख्या इसका प्रमाण है। ऐतिहासिक द ष्टि से हिन्दी शब्द-भण्डार पर विचार करें, तो पाएँगे कि आदिकाल के प्रारम्भिक चरण में तद्भव शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग होता था। इसी काल में मुसलमानों के भारत आगमन के कारण अरबी, फारसी तथा तुर्की के शब्दों का प्रयोग होने लग गया। हिन्दी भाषा के मध्यकाल में मुस्लिम प्रभावशाली भाषाओं के शब्दों का प्रयोग बहुल रूप में होने लग गया था, तो भक्ति-आन्दोलन से परम्परागत तत्सम शब्दों के प्रयोग में भी पर्याप्त व द्धि हुई है। हिन्दी की आधुनिक शब्दावली में अंग्रेजी के शब्दों का विशेष महत्व है।

वर्गीकरण

(क) स्त्रोत आधार पर हिन्दी भाषा के विभिन्न शब्दों का इस प्रकार वर्गीकरण सम्भव है –

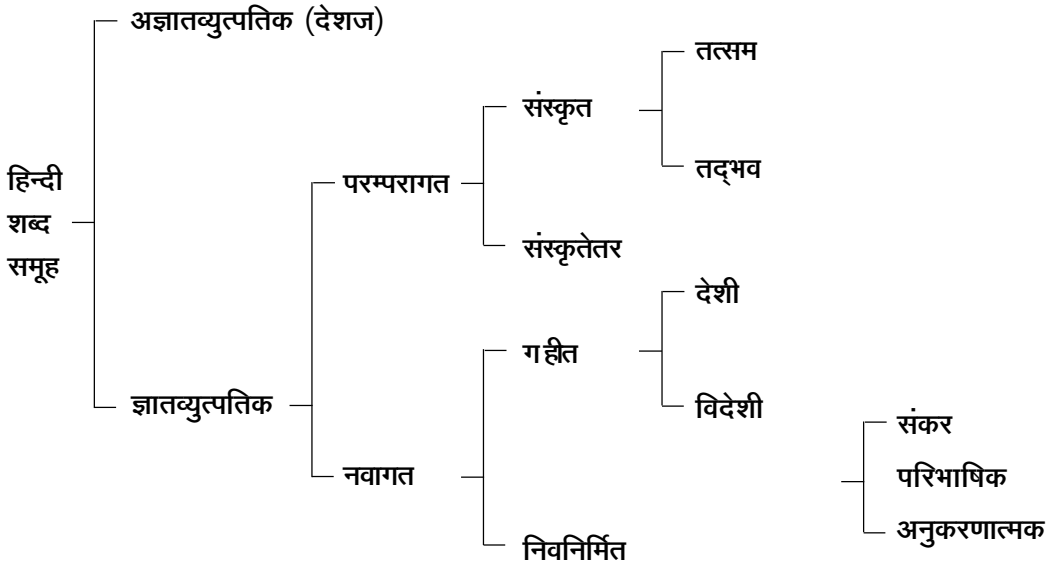

1. **अज्ञातव्युत्पतिक शब्द –** इस शब्द वर्ग के लिए 'देशज' नाम भी दिया जाता है। ऐसे शब्द प्रायः लोक-व्यवहार में स्वतः ही विकसित होते हैं, इसलिए इनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं होता है। ऐसे शब्दों की गति अज्ञातव्युत्पतिक से ज्ञातव्युत्तिक की ओर होती है, अर्थात् एक काल में जो शब्द देशज होता है, वही परवर्ती काल में व्युत्पति के ज्ञान होने परपरम्परागत तद्भव देशी अथवा अनुकरणात्मक शब्द वर्ग में जा सकता है। 'पपीहा' शब्द देशज माना गया है, किन्तु मेरे विचार से यह शब्द अनुकरणात्मक है, क्योंकि यह शब्द एक पक्षी-विशेष की 'पी-पी-हु' या 'पी कहाँ-पी कहाँ' के अनुकरण पर बना है। ऐसे शब्द क्षेत्रीय भाषा में अधिक मिलते हैं। इस वर्ग के कुछ शब्द है – सुथनी, तेंदुआ, पुआल रूई आदि।

2. **तत्सम शब्द (परम्परागत) –** हिन्दी का उद्भव संस्कृत से हुआ है, इसलिए हिन्दी में संस्कृत के शब्दों का बहुत अधिक रूप में आना स्वाभाविक ही है। संस्कृत के जो शब्द हिन्दी में मूल रूप में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें परम्परागत तत्सम शब्द कहते हैं। भक्तिकाल में भक्ति-आन्दोलन से ऐसे शब्दों के प्रयोग को बल मिला हैं आधुनिक काल के आर्य समाज और सनातन धर्म के प्रचार से ऐसे शब्दों के प्रयोग में गति आई है, तो वर्तमान काल में साहित्यिक-परिनिष्ठित भाषा-प्रयोग से विशेष गति आ गई है। ऐसे कुछ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं – गो, जल, दिन, पुस्तक, सूर्य आदि।

3. **तद्भव शब्द (परम्परागत) –** संस्कृत के शब्द जो अपने मूल रूप से परिवर्तित होकर हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें तद्भव शब्द कहते हैं; यथा – सूर्य > सूरज, कृष्ण > कन्हैया आदि। हिन्दी भाषा में आदिकाल से ही ऐसे शब्दों का सर्वाधिक महत्व रहा है। हिन्दी की विभिन्न बोलियों में तथा वार्तालाप में ऐसे शब्द भावाभिव्यक्ति के मूलाधार हैं, साथ ही मानक हिन्दी में इस शब्द वर्ग की सर्वाधिक महत्ता है। संख्या की द ष्टि से भी यह शब्द-वर्ग सबसे बड़ा है।

4. **देशी शब्द –** अधिकांश विद्वानों ने इस शब्द-वर्ग को स्वीकार किया है, किन्तु इस वर्ग में रखे जाने वाले शब्दों के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान इसमें हिन्दी की विभिन्न बोलियों के शब्दों को रखना चाहते हैं। मेरे विचार से इस वर्ग में हिन्दी से उत्तर क्षेत्र की भाषाओं; यथा – पंजाबी, बंगला, मराठी आदि शब्दों को रखना चाहिए। क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द तद्भव, अनुकरणात्मक आदि शब्द वर्ग में रखे जा सकते हैं।

5. **विदेशी शब्द –** हिन्दी में आगत विदेश की भाषाओं के शब्दों को विदेशी शब्द कहते हैं। हिन्दी में विदेशी भाषा के पर्याप्त शब्दों का प्रयोग होता है। इस वर्ग के कुछ शब्द तो अपने मूल रूप में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें विदेशी तत्सम शब्द कह सकते हैं; यथा – अगर, आराम (फारसी); अमीर, जरूर (अरबी); जेल, टीम (अंग्रेजी)। जो शब्द हिन्दी में परिवर्तित होकर प्रयुक्त होते हैं, उन्हें विदेशी तद्भव शब्द कहते हैं; यथा – मर्दानः > मरदाना (फारसी); किरायः > किराया, नुक्सान > नुकसान (अरबी); टावेल > तौलिया, बोगि > बग्घी (अंग्रेजी) आदि। हिन्दी में आगत विदेशी शब्दों को विदेशियों के प्रभाव को ध्यान में रखकर दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम वर्ग में मुस्लिम प्रभाव वाली अरबी, फारसी तथा तुर्की के शब्दों को और द्वितीय वर्ग में यूरोपीय प्रभाव वाले अंग्रेजी शब्दों को रख सके हैं। मुस्लिम प्रभाव वाली भाषाओं के अधिकांश शब्द उनकी सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावना से जुड़े हैं, तो अधिकांश शब्द आविष्कारों, पाश्चात्य सभ्यता और आधुनिक सुविधा-साधनों से सम्बन्धित है।

6. **संकर शब्द –** इसके लिए दोगला, द्विज और मिश्रित आदि शब्दों का प्रयोग होता है। शब्द के दो या दो से अधिक वर्गों के शब्दों या शब्दांशों से बने शब्द को संकर शब्द कहते हैं; यथा – अजायबघर = अजायब (अरबी) + घर (हिन्दी), जेलखाना = जेल (अंग्रेजी) + खाना (फारसी) आदि। हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले संकर शब्दों में अरबी और फारसी भाषा के शब्दों या शब्दाशों-आधारित शब्दों की संख्या सर्वाधिक है और दूसरे स्थान पर हिन्दी, फारसी संकर शब्द हैं। इन शब्दों के प्रयोग से दो भाषाओं के एक साथ प्रयोग की बात भी स्पष्ट होती है।

7. **पारिभाषिक शब्द –** आधुनिक हिन्दी भाषा में पारिभाषिक शब्दों का विशेष महत्व है। ऐसे शब्दों का निर्माण बौद्धिक वर्ग के द्वारा विज्ञान, ज्योतिष, चिकित्सा, कृषि आदि विषयों के सन्दर्भ में किया जाता है। ऐसे शब्द मुख्यतः अंग्रेजी शब्दों के आधार पर बनाए जाते हैं। इन शब्दों से भावाभिव्यक्ति सन्दर्भ के हिन्दी-शब्द के अभाव की पूर्ति होती है। एक भाव के लिए एक ही शब्द के प्रयोग सम्बन्धी एकरूपता के लिए भारत सरकार के अधीन केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय कार्य कर रहा है। हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले ऐसे कुछ एक शब्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत हैं –

   Abnormal > असामान्य, Actor > अभिनेता, Bombast > शब्दाडम्बर, Comedy > कामदी, Tragedy > त्रासदी। हिन्दी भाषा विज्ञान के कुछ पारिभाषिक शब्द द्रष्टव्य हैं – Interdependent > अन्योन्याश्रित। Seantics > अर्थ-विज्ञान, Stem > धातु, Phrase > पदबंध, Transformation > रचनान्तरण आदि।

8. **अनुकरणात्मक शब्द –** अनुकरण के आधार पर बने शब्दों को अनुकरणात्मक शब्द कहते हैं। हिन्दी की विभिन्न बोलियों में अनुकरणात्मक शब्दों की काफी संख्या मिलती है। वार्तालाप सन्दर्भ में भी ऐसे शब्दों का पर्याप्त प्रयोग होता है। मानक हिन्दी में भी यत्र-तत्र इनका प्रयोग होता है। स्वभाव के अनुसार हिन्दी में प्रयुक्त अनुकरणात्मक शब्दों के चार वर्ग हैं –

1. **ध्वन्यात्मक –** ध्वनि के अनुकरण आधार पर बने शब्दों को ध्वन्यात्मक शब्द कहते हैं; यथा – कड़-कड़, कॉव-काँव, खन-खन, छन-छन, फट-फट आदि।
2. **प्रतिध्वन्यात्मक –** हिन्दी में शब्दों की प्रतिध्वनि आधार पर बने प्रतिध्वन्यात्मक शब्दों का भी पर्याप्त प्रयोग होता है। बोल-चाल में इनका प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। हिन्दी में प्रयुक्त तत्सम, तद्भव, विदेशी सभी प्रकार के शब्दों की प्रति ध्वनि पर ऐसे शब्द बनते हैं; यथा – जल-वल, बालक-वालक (तत्सम); छुरा-उरा, ठीक-ठाक (तद्भव); सैर-वैर, कैद-वैद, पुलिस-वुलिस (विदेशी)।
3. **दृश्यात्मक –** हिन्दी में कुछ ऐसे शब्दों के प्रयोग मिलते हैं जो दृश्य-अनुकरण आधार पर बने होते हैं; यथा – जगमग, झिलमिल, जगर-मगर आदि।
4. **विशेष भावात्मक –** विशेष भावों के अनुकरण पर बने शब्दों का भी हिन्दी में प्रयोग होता है; यथा – चोंचला, धाँधली, भोंड़ी आदि।

(ख) रचना आधार पर हिन्दी शब्द-समूह के शब्दों को मुख्यः तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

1. **मूल शब्द –** ऐसे शब्द जिनके सार्थक खण्ड न किए जा सकें, उन्हें मूल शब्द कहते हैं। ऐसे शब्द हिन्दी भाषा के मुख्याधार हैं। मूल शब्द, वचन, लिंग तथा कारक के परिवर्तनों से मुक्त होते हैं; यथा – गाय, मैं नीला, पीला, मन्द, आना, जाना, खाना आदि।
2. **यौगिक शब्द –** जिन शब्दों के सार्थक खण्ड किए जा सकें, उन्हें यौगिक शब्द कहते हैं। हिन्दी में ऐसे शब्द उपसर्ग या प्रत्यय के योग से बनते हैं; यथा – सुगंध (सु + गंध), कुमति (कु + मति), बेतुक (बे + तुक), सफलता (सफल + ता), बुढ़ापा (बूढ़ा + पा) आदि।
3. **योगरूढ़ –** जिन शब्दों के सार्थक खण्ड तो किए जा सकें, किन्तु अर्थ की दृष्टि से रूढ़ होते हैं, अर्थात् अर्थ की दृष्टि से ऐसे शब्दों के खण्ड नहीं हो सकते; यथा – लम्बोदर (लम्बा + उदर), दशानन (दश + आनन)। ये दोनों शब्द क्रमशः गणेश तथा रावण के अर्थ में प्रचलित हैं।

8.3 हिन्दी शब्द-संरचना

शब्दभंडार के सम्बन्ध में किया गया विवेचन अपना अभिप्राय बोध कराने में अधूरा ही रहता जब तक शब्दों की संरचनात्मक प्रक्रिया को इसके साथ अध्ययन न कर लिया जाये। शब्दों की विपुल मात्रा में विनिर्मित ही शब्द-संपदा अथवा शब्द-भंडार की अभिवृद्धि करेगी। वस्तु शब्द भण्डार के सम्पूर्ण अर्थबोध के लिए शब्दों की संरचनात्मक प्रक्रिया पर सापेक्षिक दृष्टि से विवेचन किया जाता है।

'शब्द' एक धातु है जिसका अर्थ है शब्द करना अर्थात् बोलना। इस प्रकार जिससे बोलने का अर्थ ज्ञान हो, वही शब्द है। वंशानुक्रम की दृष्टि से पद से छोटी इकाई शब्द है।

विशुद्ध रूप से शब्द-व्युत्पत्ति को ही शब्द-रचना कहा जायेगा। इस प्रकार शब्द-रचना की परिधि में यौगिक शब्द ही आते हैं, न कि रूढ़ शब्द। शब्द-रचना से यही प्रतिभाषित होता है कि प्रचलित शब्द भाषा के अन्य प्रचलित शब्द से किस प्रकार बना हुआ है। शब्द संरचना के सम्बन्ध में कामताप्रसाद गुरु कहते हैं –

"एक ही भाषा के किसी शब्द से जो दूसरे शब्द बरते हैं वे बहुधा तीन प्रकार से बनाये जाते हैं। किसी-किसी शब्द के पूर्व एक-दो अक्षर लगाने के लिए शब्द बनाये जाते हैं और किसी-किसी शब्द के पश्चात एक-दो अक्षर लगाकर नये शब्द बनाये जाते हैं और किसी-किसी शब्द के साथ दूसरा शब्द मिलने से नये संयुक्त शब्द तैयार होते हैं।" (हिन्दी व्याकरण प .-278-79)। साधरणतया इसे उपसर्ग, प्रत्यय समास जैसा नाम दिया जाता है।

उपसर्ग

उपसर्ग उस भाषिक इकाई को कहते हैं जिसका भाषा विशेष में स्वतंत्र प्रयोग न होता हो किन्तु जिसे विभिन्न प्रकार के शब्दों के आरम्भ में जोड़कर शब्द-रचना की जाती हो। जैसे सुनिश्चित। यहाँ 'सु' उपसर्ग है।

हिन्दी में आये हुए उपसर्गों में तत्सम्, तद्भव तथा इतर भाषीय हैं। इनका विवेचन निम्न है –

तत्सम

हिन्दी में बहुत से संस्क त के तत्सम शब्दों का प्रयोग होता है। उन शब्दों में संस्क त के उपसर्ग व्यवहृत होते हैं। इस द ष्टि से संस्क त स्त्रोत से आय उपसर्गों का विवरण निम्न है -

प्र	-	(अधिक) प्रयत्न, प्रख्यात, प्रबल, प्रक्रिया, प्रगति।
परा	-	(पीछे, उल्टा) परभाव, पराक्रम, पराजय।
अप	-	(दूर या बुरा) अपमान, अपकर्ष, अपरूप, अपक ति।
सम्	-	(साथ, पूर्णता) सम्मान, संपूर्ण, सम्मोहन, संविधान।
अनु	-	(अनुसारता अथवा साथ) अनुगमन, अनुरूप, अनुगत, अनुमान।
अव	-	(विरोध एवं विक ति) अवचेतन, अवशेष, अवगुण, अवरूद्ध।
निस्	-	(बिना, बाहर) निस्तार, निष्कासन, निस्सन्देह।
निर्	-	(बाहर) निर्जन, निरपराध, निर्दोष, निर्गम।
दुस्	-	(कठिन) दुस्सह, दुष्काल।
दुर्	-	(बुरा) दुर्गंध, उदुर्गुण, दुर्गम, दुर्लभ।
अति	-	(अधिक, उल्लंघन) अतिरिक्त, अत्याधिक, अत्यन्त।
अधि	-	(विशिष्टता, अधिकता) अधिनियम, अधिभास, अधिभौतिक।
अभि	-	(विशिष्टता, उन्मुखता) अभिमत, अभ्यंतर, अभीष्ट।
अपि	-	(निकट) अपिधान, अपिकर्ण।
उप्	-	(नैकट्य, सहकार्य, लघुत्ता) उपनगर, उपमंत्री, उपनाम, उपजाति।
प्रति	-	(ओर, उल्टा) प्रतिकार, प्रतिगमन, प्रतिष्ठा।
वि	-	(अभाव एवं विशिष्टता) विक्रम, विज्ञान, विनाश।
नि	-	(नीचे) निक्षेप, निपात।
सु	-	(श्रेष्ठता) सुगंध, सुकर्ण, सुगम।
परि	-	(परिधि, पूर्णता) परिजन, परिवर्तन, परितोष।

कुछ अव्यय और विशेषण भी उपसर्गों की भाँति व्यवहार में लाये जाते हैं -

अन्नत	-	अन्तर्धान, अन्तर्हित।
अलं	-	अलंकार।
आवि	-	आविर्भाव।
तिर	-	तिरोहित, तिरोधान।
कु	-	कुसंग।
किं	-	किंचित।
चिर	-	चिरायु।
तद्	-	तदकार।
पुनः	-	पुनर्विवाह, पुनर्मिलन।

तद्भव

ये उपसर्ग हिन्दी के तद्भव शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं। वस्तुतः ये उपसर्ग संस्क त से आकर हिन्दी के अपने हो गये हैं। इनका विवेचन निम्न है -

अन्	-	(नहीं) अनभल, अनबन, अनजान।
कु	-	(विकृति) कुचाल, कुसाज।
उन्	-	(एक कम या एक नहीं) उजड्ड, उचक्का उन्नीस, उनतीस।
अध	-	(आधा) अधपका, अधेसरा।
औ	-	(हीनता) औघट, औगुन।
क	-	(हीनता) कपूत।
दु	-	(बुराई) दुबला, दुकाल।
नि	-	(अभावधोतक) निहत्था, निडर।
भर	-	(पूर्णत्वबोधक) भरकस, भरपेट।
सवा	-	(चौथाई अधिक) सवा पाँच, सवा सात।

इतरभाषीय उपसर्ग

ये उपसर्ग अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी से आये हुए हैं। इनमें अरबी-फारसी उपसर्गों की संख्या अधिक है।

अरबी - फारसी

कम	-	(हीनत्वबोधक) कमजोर, कम उम्र।
ना	-	(अभाव तथा निषेध) नापसंद, नामंजूर।
फी	-	(प्रत्येक) फी आदमी।
बद	-	(विकृति) बदनाम, बदचलन।
बे	-	(अभाव) बेइमान।
ला	-	(अभाव) लावारिश, लापरवाह।
गैर	-	(नकारात्मक) गैरवाजिब।
दर	-	(में) दर किनार, दर असल।
ब	-	(से) बदस्तूर, बखूबी।

अंग्रेजी

डिप्टी	-	(उप) डिप्टी कलेक्टर, डिप्टी कमिश्नर।
वाइस	-	(उप) वाइस चांसलर।
सब	-	(उप) सबडिवीजन।
हाफ	-	(आधा) हॉफ पैण्ट, हाफ शर्ट।
हेड	-	(प्रधान) हेड मास्टर, हेड क्लर्क।

प्रत्यय

शब्दों के पश्चात् जो अक्षर व अक्षर-समूह लगाया जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं। भाषिक व्यवस्था में प्रत्यय

का महत्त्व निर्विवाद है प्रत्ययों के सहयोग से हो आशय तथा अर्थ, अनेकानेक शब्दों के रूप में प्रकट हो भाषा को समर्थ बनाते हैं।

प्रत्यय के कई भेद किये जाते हैं। कुछ लोग प्रत्यय को देशी और विदेशी भेदों में बाँटते है और कुछ लोग संस्क त की परिपाटी को मानते हुए प्रत्यय को क त तथा तद्धित के रूप में विभाजन करते हैं। किन्तु स्वीक त परिपाटी का समग्रतः अनुपालन हिन्दी प्रत्यय परंपरा में कुछ व्यावहरिक नहीं लगता है, क्योंकि ऐसे भी प्रत्यय हैं जो क त और तद्धित दोनों ही रूपों में प्रयुक्त होते हैं। जैसे- आई। प्रस्तुत प्रत्यय से पढ़ाई (क त) तथा चतुराई (तद्धि) दोनों ही बनते हैं। क्योंकि पढ़ना धातु है और चतुर शब्द है।

हिन्दी भाषाविदों ने प्रयोग के अर्थ को द ष्टि में रखकर प्रत्यय के निम्न भेद किए हैं- (1) संज्ञा विधायक, (2) विशेषण विधायक, (3) क्रिया विधायक, (4) क्रिया विशेषण विधायक, (5) स्त्री प्रत्यय आदि। हिन्दी प्रत्ययों को निम्नतः विवेचित किया जा सकता है-

संज्ञा विधायक प्रत्यय

इन प्रत्ययों में देशी-विदेशी दोनों का समावेश है क्योंकि हिन्दी भाषा में उपसर्गों की भाँति अरबी-फारसी के प्रत्यय भी प्रविष्ट हो चुके हैं। संज्ञा विधायक प्रत्यय के कुछ उदाहरण निम्न हैं।

देशी	प्रत्यय	शब्द
	- अक	पाठक
	- अत	खपत
	- अट	जीवन
	- अन	चलन, सड़न
	- अन्त	रटन्त, गढ़न्त
	- आन	थकान
	- आई	लड़ाई
	- आर	लोहार, चमार, कुम्हार
	- आरा	निपटारा
	- आरी	भिखारी
	- आस	मिठास
	- आव	छलाव, छिड़काव, बचाव
	- आवा	पछतावा
	- आवन	बिछावन
	- आवट	लिखावट
	- आहट	गरमाहट
	- ई	बोली, हँसी
	- ऐत	लठैत
	- औता	समझौता
	- पन	लड़कपन, बाल्पन
	- ता	सुन्दरता
	- त्व	वीरत्व

	- नी	करनी
	- वान	हाथीवान
	- वारा	बंटवारा
	- शाला	धर्मशाला इत्यादि
विदेशी	**प्रत्यय**	**शब्द**
	- इश	आजमाइश
	- इयत	इन्सानियत
	- कार	पेशकार
	- खाना	छापाखाना
	- गीर	राजगीर, रहगीर
	- दान	पायदान
	- दानी	मच्छरदानी
	- नीवस	अर्जीनवीस
	- बन्द	बिस्तरबन्द
	- वार	माहवार

विशेषण विधायक प्रत्यय

विशेषण विधायक प्रत्यय उन्हें कहते हैं जहाँ प्रत्ययों के संयोग से विशेषण शब्दों की निर्मिति हो। यथा -

- अक्कड़	पियक्कड़, घुमक्कड़
- ओड़	हँसोड़
- इयल	सडियल
- आउ	बिकाऊ
- एक	तीनेक
- इया	दुखिया
- उआ	भडुआ
- ऐल	रखैल
- औटा	कजरौटा
- था	चौथा
- ला	पिछला इत्यादि

क्रिया विधायक प्रत्यय

इन प्रत्ययों के योग से क्रिया पदों की रचना होती है। यथा-

- अ = तैरा, जगा, घुमा
- वा = पड़ता, पिलवा आदि।

इसी प्रकार - आड़ी, - ए, ब प्रत्यय के योग से क्रिया विशेषण विधायक प्रत्यय की निर्मित होती है, यथा - अगाड़ी, पीछे, अब, तक इत्यादि।

स्त्री प्रत्यय

प्रयोगार्थ की द ष्टि से किये गये प्रत्यय विभाजन के अर्न्तगत स्त्री प्रत्यय को भी समाहित किया जाता है। पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने वाले प्रत्ययों को स्त्री प्रत्यय कहते हैं। संस्क त के टाप (आ) डीप (ई) प्रत्ययों का प्रयोग हिन्दी में भी होता है। हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले स्त्री प्रत्यय अन्, इन्, नी, इया, आइन हैं। कुछ नमूने द्रष्टव्य हैं -

- आ	=	बाला, प्रियतमा
- ई	=	नर्तकी, हिरणी
- अन	=	दुल्हन
- इन	=	नाइन, चमारिन
- नी	=	मोरनी, उँटनी
- इया	=	बिटिया, चुहिया
- आनी	=	देवरानी, जेठानी
- आइन	=	सुहआइन, ठकुराइन

8.4 समस्त पद

समस्त पद व्याकरिणक योग्यता प्राप्त भाषा की ऐसी इकाई है जो पद से बड़ी और पदबन्ध से छोटी होती है। जब दो या दो से अधिक शब्द मिलकर एक सामाजिक शब्द की रचना करते हैं, तो उसे समस्त पद कहते हैं। समस्त पद के दोनों शब्दों में कुछ सम्बन्ध होन आवश्यक है। समस्त पद के पूर्वांश को पूर्व पद और बाद के दूसरे अंश या शब्द को उत्तर पद कहते हैं; यथा - राजा का पुत्र > राजपुत्र। 'राजा' और 'पुत्र' दो शब्दों के योग से बना समस्त पद 'राजपुत्र' एक स्वतंत्र शब्द है।

समस्त पद से पदबन्ध में प्रमुख भेद यह है कि वह वाक्य का एक भाग है और उसमें एकाधिक पद का साथ मिलकर एक पद के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जबकि समस्त पद में दो शब्दों से एक स्वतंत्र शब्द - रचना होती है यथा - 'राम वन गए' में 'राम' एक पद है। इसके साथ एकाधिक पद जोड़ कर पदबन्ध बना सकते हैं - 'दशरथ के पुत्र राम' या 'महाप्रतापी राजा दशरथ के पुत्र राम'।

हिन्दी की समस्त पद प्रक्रिया संस्क त भाषा से आई है। संस्क त भाषा सामाजिक शैली के लिए प्रसिद्ध है। इसे भाषा की संश्लिष्ट प्रवत्ति कहते हैं। वैसे हिन्दी वियोगात्मक या विसंश्लिष्ट भाषा है, किन्तु प्रयत्नलाघव सम्बन्धी व्यावाहारिक द ष्टि से समस्त पद का पर्याप्त रूप में प्रयोग होता है।

सभी भाषाओं में समस्त पद की रचना हो सकती है, किन्तु प्रत्येक भाषा के समस्त पदों की संरचना भिन्न होगी।

समस्त पद के खण्डों के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए उनको प थक् करते हैं। इस प्रक्रिया को 'विग्रह' कहते हैं; यथा-

समस्त पद	विग्रह
घुड़दौड़	घोड़ों की दौड़
फुलवारी	फूलों की बाड़ी

वर्गीकरण

समस्त पद के अर्थ अभिव्यक्ति में उनके दोनों अंशों - पूर्वा पद तथा उत्तरपद की विशेष भूमिका होती है। समस्त पद में भी कभी पूर्वपद प्रधान होता है, कभी उत्तरपद। कभी दोनों पद समान रूप से प्रधान होते हैं, तो कभी

दोनों से भिन्न कोई अन्य पद प्रधान होता है। इस आधार पर समस्त पद रचना-प्रक्रिया को मुख्यतः चार भागों में विभक्त करते हैं -

1. **अव्ययीभाव** - जब समस्त पद का पूर्वपद अव्यय हो तो इस पद की प्रधानता होती है। ऐसे में पूर्ण समस्त पद अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है; यथा-

   प्रतिदिन (दिन-दिन) यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार)
   आजन्म (जन्म से लेकर)

   अव्ययीभाव समस्त पद का प्रयोग क्रिया-विशेषण के रूप में होता है।
   वह विद्यालय प्रतिदिन जाएगा।
   आपका कार्य यथाशक्ति करूंगा।

2. **तत्पुरूष** - जिस समस्त पद में अर्थ की द ष्टि से प्रथम पद गौण और उत्तरपद प्रधान हो उसे तत्पुरूष समस्त पद कहते हैं। ऐसे समस्त पद की संरचना में दोनों शब्दों के मध्य से परसंर्गों का लोप हो जाता है। तत्पुरूष समस्त पद संरचना के चार भेद हैं -

   (क) लुप्त पद तत्पुरूष - जब दो शब्दों के मध्य के शब्द लुप्त हो जाते हैं, यथा -

   पनचक्की - पानी से चलने वाली चक्की
   रेलगाड़ी - रेल पर चलने वाली गाड़ी

   (ख) नञ् तत्पुरूष - जब अभाव या निषेध अर्थ प्रकट करने के लिए पूर्व पद रूप में 'अ' या 'अन' का प्रयोग करते हैं; यथा-

   अस्थिर - अ स्थिर
   अनश्वर - अ नश्वर
   अनावश्यक - अन आवश्यक

   (ग) कर्मधारय - इस समस्त पद का उत्तर पद प्रधान होता है। पूर्व पद विशेषण तथा उत्तरपद विशेष्य है; यथा -

   लाल टोपी - लाल है जो टोपी
   नीलकमल - नीला है जो कमल

   (घ) द्विगु - इस समस्त पद का पूर्व पद संख्यावाचक होता है। विशेषण – विशेष भाव के साथ समस्त पद समूहवाची भी होता है।

   नौरत्न - नौ रत्नों का समाहर (समूह)
   चौराहा – चार राहों का समूह
   अठन्नी - आठ आनों का समूह

3. **द्वन्द्व** - जब दो समान रूपी प्रधान पदों के योग से समस्त पद की रचना हो, तो द्वन्द्व समस्त पद होगा। पूर्व तथा उत्तर पदों के मध्य से समुच्चय बोधक अव्यय का लोप कर दिया जाता है; यथा -

   माता-पिता - माता और पिता
   चार-पाँच - चार या पाँच
   नर-नारी - नर और नारी

4. **बहुब्रीहि** - जिस समस्त पद की रचना में पूर्व और उत्तर दोनों पद गौण हों, साथ ही कोई अन्य पद प्रधान हो, तो बहुब्रीहि समस्त पद संरचना होगी; यथा -

   नीलकंठ - नीला है कंठ जिसका (शिव)
   दशानन - दस है आनन जिसके (रावण)

हिन्दी भाषा में समस्त पद की रचना मुख्यतः प्रयत्नलाधव की देन है। समस्त पद के पूर्व तथा उत्तर पद प्रायः एक भाषा-स्रोत के शब्दों पर आधारित होते हैं, किन्तु यदा-कदा भिन्न स्त्रोत के शब्दों से भी ऐसी रचना हो जाती है; यथा – रेलगाड़ी, डाकघर।

हिन्दी में समस्त पद के दोनों (पूर्व और उत्तर) पदों को एक शिरोरेखा से लिखते हैं। दोनों पदों की प्रधानता पर बीच में योजक (–) चिह्न का प्रयोग करते हैं।

8.5 व्याकरणिक कोटियाँ

भाषा की सहज तथा लघुतम इकाई वाक्य है। वाक्य में व्याकरणिक योग्यता प्राप्त एक या एक के अधिक पद होते हैं। लेखन तथा उच्चारण में शुद्धता-यथार्थता लाने के लिए पदों को व्याकरण के कई अनुशासनों पर चलना पड़ता है। व्याकरण के इस अनुशासनात्मक आधार को व्याकरणिक कोटियाँ कहते हैं। ये व्याकरणिक कोटियाँ भाषानुसार अपने-अपने ढंग की होती हैं। प्रत्येक वाक्य में पद -विभाग की कई कोटियाँ सम्मिलित होती हैं। इनके पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए ही व्याकरणिक कोटियों का अध्ययन करते है। इससे भावाभिव्यक्ति की स्पष्टता, सशक्ता के साथ निश्चयात्मक रूप सामने आता है। 'व्याकरणिक कोटियाँ' के कुछ उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार हैं –

1. प्रत्येक भाषा की व्याकरणिक कोटियों में भिन्नता होती है।
2. सभी भाषाओं की व्याकरणिक कोटियाँ काल सापेक्ष होती हैं।
3. भाषा की रचना प्रक्रिया के अनुसार व्याकरणिक कोटियों का निर्धारण किया जाता है; यथा - अंग्रेजी में चार लिंगों, संस्कृत में तीन लिंगों और हिन्दी में दों लिंगों की प्रक्रिया के अनुसार उनकी लिंग सम्बन्धी व्याकरणिक कोटि निर्धारित की गई है। व्याकरणिक कोटियों के आधार पर भाषा का विश्लेषण किया जाता है।

हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों में लिंग, वचन, पुरूष, काल, व त्ति, पक्ष और वाक्य आदि प्रमुख हैं।

1. **लिंग (Gender) :** लिंग का शाब्दिक अर्थ है - चिह्न अर्थात् वह माध्यम जिससे किसी की पहचान की जा सके। लिंग के दो भेद हैं - 1. प्राकृतिक, 2. व्याकरणिक।

   प्राकृतिक लिंग निर्धारण में कोमलता, लज्जाशीलता और शान्तिप्रियता को देखकर सम्बन्धित प्राणी को स्त्रीलिंग कहा गया है। इसके विपरीत कठोर, पौरूषेय तथा शक्तिशाली गुणों से सम्पन्न देखकर उसे पुल्लिंग वर्ग में व्यवस्थित किया गया है।

   सभी भाषाओं में लिंग-निर्धारण प्रक्रिया और उनकी संख्या अलग-अलग हो सकती है। एक ही व्यक्ति या वस्तु के लिए प्रयुक्त विभिन्न नामों के लिंगों में भिन्नता हो सकती है; यथा-संस्कृत में दार (पत्नी) पुल्लिंग बहुवचन है। इसके पर्यायी स्त्री, नारी, भार्या आदि शब्द स्त्रीजिंग हैं तो कलत्र नपुंसक लिंग है। इस तरह स्पष्ट है कि व्याकरणिक तथा प्राकृतिक लिंग में पर्याप्त भिन्नता है। अंग्रेजी में (Masculine, Feminine, Neuter, Common) चार लिंग (Gender) हैं। संस्कृत में पुल्लिंग, स्त्रिलिंग और नपुसंक, तीन लिंग हैं, तो हिन्दी में मात्र पुल्लिंग की व्यवस्था है।

   हिन्दीं में लिंग की अभिव्यक्ति मुख्यतः क्रिया से होती है। किसी शब्द के लिंग की ज्ञान-प्राप्ति, उसको वाक्य में प्रयोग कर सम्बन्धित क्रिया के रूप से करते हैं। कभी कभी लिंग निराकरण कारकों चिह्नों से भी होता है; तथा - 'उनका कुत्ता था', 'मेरी लाठी थी'। इन दो वाक्यों में 'उनका' के 'का' और 'मेरी' के 'री' से कुत्ता और लाठी के क्रमशः पुल्लिंग, स्त्रीलिंग होने का ज्ञान है। हिन्दी में लिंग भाव दो प्रकार से व्यक्त करते हैं –

   (क) **प्रत्यय लगाकर**

   हिन्दी के पुल्लिंग शब्दों में प्रत्यय लगा देने से वे स्त्रीलिंग बन जाते हैं; तथा -

आ = बाल > बाला, बालक > बालिका ई = नर > नारी, लड़का > लड़की

इन = धोबी > धोबइन, नाई > नाइन इया = कुत्ता > कुतिया

आनी = नौकरानी नी = शेर > शेरनी

(ख) **स्वतन्त्र शब्द लगाकर**

हिन्दी में ऐसे प्रयोग सीमित ही मिलते हैं। संस्कृत में 'वह के लिए स्त्रीलिंग सा, तो पुल्लिंग सः का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी में 'वह' के लिए He और स्त्रीलिंग के लिए She का प्रयोग करते हैं।

2. **वचन (Number) :** वचन के द्वारा संख्या की सूचना मिलती है। हिन्दी के एक वचन में एक व्यक्ति या वस्तु के अर्थबाधक शब्द होते हैं, तो बहुवचन में दो या दो से अधिक व्यक्ति या वस्तु के अर्थ बोधक शब्द होते हैं। हिन्दी में एकवचन और बहुवचन दो वचनों की व्यवस्था है। संस्कृत में एकवचन, द्विवचन, बहुवचन तीन वचन हैं। इनके संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया आदि शब्द तथा धातु रूपों में वचनों का निर्धारण प्रत्यय लगाकर करते हैं; यथा -

पठ् (पढ़ना) - पठति (पढ़ता है), पठतः (दो पढ़ते हैं), पठन्ति (वे पढ़ते हैं)।

हिन्दी शब्दों के एकवचन से बहुवचन परिवर्तन में कई प्रत्ययों का सहारा लिया आता है, तथा

ए = लड़का > लड़के घोड़ा > घोड़े एँ = गाय > गायें

इयाँ = चिड़िया > चिड़ियाँ स्त्री > स्त्रियाँ ओं = घोड़ा > घोड़ों, बैल > बैलों

समूहवाचक शब्द प्रायः एकवचन में ही प्रयुक्त होते हैं, क्योंकि समूह रूप में उनकी एकता मानी जाती है; यथा - दर्जन, दम्पति, जोड़ा आदि।

जातिवाचक शब्द अनेक से सम्बन्धित होकर भी एकवचन में प्रयुक्त होते हैं; यथा - गाय पालतू जानवर है। कुत्ता स्वामिभक्त जानवर है।

हिन्दी में ऐसे कई शब्द हैं, जिनके एक ही रूप का प्रयोग एकवचन और बहुवचन दोनों में ही होता है। ऐसे मुख्य शब्द हैं - छात्र, कवि, मुनि, साधु आदि। वचन - परिवर्तन में संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया ही नहीं, विशेष शब्द भी प्रभावित होते है; यथा - अच्छा > अच्छे, गन्दा > गन्दे आदि।

3. **पुरुष :** भारत में पुरुष की कल्पना दो या दो से अधिक व्यक्तियों के आमने-सामने होने और वार्तालाप करने से हुई है। ऐसे समय वक्ता, श्रोता और अन्य व्यक्ति या वस्तु का अस्तित्व होता है। इसी संदर्भ में अन्य पुरूष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष का सैद्धान्तिक रूप में निर्धारण किया गया है, अर्थात् वक्ता - उत्तम पुरुष, श्रोता - मध्यम पुरुष, दोनों से भिन्न अन्य पुरुष। संस्कृत में प्रथम ईश्वर को माना गया है। इसलिए प्रथम पुरुष सबसे पहले और उत्तम पुरुष अन्त में रखा गया है।

प्रायः सभी भाषाओं में तीन पुरुषों की व्यवस्था है; यथा -

	हिन्दी	संस्कृत	अंग्रेजी
अन्य पुरूष	वह, वे	सः, तौ, ते, सा, ते, ताः	He, She, They
मध्यम पुरूष	तुम, आप, तुम, सब	त्वं, युवाम, युयम्	You
उत्तम पुरूष	मैं, हम	अंह, आवाम् वयम्	I, We

4. **कारक (Case) :** क्रिया के निष्पादक को कारक कहते हैं। क्रिया की निष्पत्ति के साधनों में भेद होने के कारण कारकों में भेद होता है। प्रत्येक भाषा के, कारकों की अपधारणा और उनकी संख्या भिन्न-भिन्न होती है। संस्कृत में कर्ता, कर्म, कारक, सम्प्रदान, आपादान, अधिकरण, सम्बोधन, सात कारक पाये गए हैं। कुछ विद्वान सम्बन्ध को कारक की कोटि में नहीं रखते, क्योंकि क्रिया की निष्पत्ति में इसका सीधा योग नहीं होता है, यथा - दशरथ के पुत्र राम बन गए। यहाँ दशरथ का सम्बन्ध राम से है न कि गए (क्रिया)

से। सम्बोधन का रूप प्रथमा पर आधारित होता है। इस प्रकार सम्बोधन की पूर्ण स्वतंत्र सत्ता नहीं है। कुछ आचार्यो तथा विद्वानों ने सम्प्रदान और अपादान को भी कारक श्रेणी में स्वीकार नहीं किया है। उनका कहना है कि इनका भी क्रिया से सीधा योग नहीं होता है। इसी प्रकार कर्त्ता, कर्म, कारण और अधिकरण चार कारक हुए। कारको में लगने वाले चिह्नों को विभक्ति कहते हैं। विभक्ति नामकरण का आधार है कि इससे कारक एक-दूसरे से विभक्त हो जाते हैं।

5. **काल (Tense) :** समय की स्थिति को काल कहते हैं। सभी भाषाओं में काल के मुख्यतः तीन भेद हैं - भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल। इससे कार्य निष्पति के समय का बोध होता है। भाषा-विकास के अनुसार काल की धारणा में परिवर्तन होता रहता है। सामान्यतः भाषा में बीते हुए काल को 'भूतकाल'; जो काल चल रहा हो, उसे वर्तमान काल; जो काल अभी आया न हों, उसे भविष्यत् काल कहते हैं। विभिन्न कालों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

भूतकाल	-	वह जा रहा था।	मैं वहाँ गया था।
वर्तमानकाल	-	वह जा रहा है।	मैं वहाँ जा रहा हूँ।
भविष्यत् काल	-	वह जा रहा होगा।	मैं वहाँ जाऊँगा।

कभी-कभी काल-सिद्धान्तों के विपरीत प्रयोग मिल जाते हैं; यथा-माली प्रतिदिन पौधों को सींचता है। इस वाक्य में भूतकाल में माली के पौधों के सींचने, वर्तमान में पौधों को सीचने के साथ भविष्य में भी सींचते रहने का भाव स्पष्ट होता है। उक्त वाक्य को देखने से वर्तमान काल से सम्बन्धित वाक्य लगता है, किन्तु है काल - निरपेक्ष। यदा-कदा भविष्यत् काल के लिए भूतकाल के पदों का निर्माण करते हैं, यथा - आप रूकें, मैं आया। यहाँ 'आया' शब्द आना का भूतकालिक रूप हैं, किन्तु भविष्यत् काल के रूप में प्रयुक्त है। भविष्यत् काल के वर्तमान काल के रूप भी प्रयुक्त होते हैं; यथा मैं आपके घर शाम को पहुँच रहा हूँ। यहाँ पहुँच रहा हूँ वर्तमान काल का रूप है, किन्तु भविष्यत् काल के लिए प्रयुक्त है।

6. **वत्ति :** हिन्दी में व त्ति के लिए क्रियार्थ, क्रियाभाव और क्रिया प्रकार आदि शब्दों के प्रयोग होते हैं। अंग्रेजी में इसे Mood कहते हैं। डॉ. रमानाथ सहाय के अनुसार व त्ति को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं, '''मूड' की अभिवाजना मुख्यतया विशिष्ट लकारों द्वारा अथवा और व त्तिघोतक सहायक क्रियाओं द्वारा होती है गौणतया विशिष्ट निपातो का भी प्रयोग होता है और पदक्रप और अनुतान विशेष भी सीमित मात्रा से इसे घोषित करता है।''

स्वरूप - इसके द्वारा मनुष्य के मानसिक भाव साथ कर्त्ता और कर्म के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। पाणिनि के अनुसार लिङ् लकार व त्ति का मुख्य आधार है। इसके द्वारा वक्ता के मानसिक व्यापक और भाषिक तत्त्वों का ज्ञान होता है। व त्ति और वक्ता के सम्बन्ध को रेखांकित करते हुए डॉ. सूरजभान सिंह ने कहा है, ''कार्य-व्यापार के प्रति वक्ता की व त्ति वस्तुतः एक व्यापक व्याकरणिक लक्षण है जिसे अगर व्याकरणिक व त्ति की परंपागत परिभाषा से अधिक विस्त त आयाम दें तो इसमें वे सभी भाषिक तत्त्व या लक्षण शामिल हो सकते हैं, जो किसी भी प्रकार वाक्य में वक्ता के विशिष्ट द ष्टिकोण या अभिव्यक्ति को प्रकाशित करते है।''

वर्गीकरण - व त्ति को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

(क) **व त्ति प्रत्यय**

इसमें मुख्यतः आज्ञार्थक, संभावनार्थक, संकेतार्थक और भविष्यत् सम्बन्धी प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

1. **आज्ञार्थक** को दो उपवर्गो में बाँट सकते हैं -

प्रत्यय आदेश	-	मेरे लिए कलम लाओ।
अप्रत्यक्ष आदेश	-	मुझे एक कलम चाहिए।

ऐसे में 'ऐगा' प्रत्यय लगा देने से निवेदन भाव आता है - चाय दीजिएगा, साथ चलिएगा आदि।

2. **सम्भावनार्थक** व त्ति के साथ क्रिया में 'ए' प्रत्यय लगाते हैं इससे इच्छा, कामना, अनुरोध का भाव प्रकट होता है -

   शायद वह चला जाए। ईश्वर तुम्हें खुश रखें।

3. **संभाव्य** निश्चित तथा अनिश्चित सम्भावनाओं में क्रमशः तो होगा, रहा होगा और 'ता हो', 'रहा हो' के प्रयोग होते है; यथा -

   वह लिखता होगा। वह जग रहा होगा।,

   शयद वह पढ़ता हो। शायद वह जाग रहा हो।

4. **संकेतार्थक** हिन्दी में संकेत व त्ति की सूचना शर्त और इच्छा के सन्दर्भ में 'ता' प्रत्यय से होती है - अगर अंकुर कहता तो वह जरूर आता। (शर्त)

   काश, मैं भी लौट आता। (इच्छा)

5. **भविष्यत् :** भविष्यत् व त्ति क्रिया में 'एगा', एगी, एँगे, 'ऊँगा' आदि प्रत्यय लगाने से बनती है -

   वह घर जाएगा। मैं घर जाऊँगा।

(ख) **सहायक व त्तिक क्रियाएँ**

हिन्दी में मुख्य क्रिया के साथ सहायक क्रिया लगाने से व त्ति का बोध होता है।

सकना - कार्य व्यापार की पूर्णता का ज्ञान होता है - मैं नदी पार कर सकता हूँ।

पाना - सामर्थ्य का बोध होता है - वह पत्र लिख पाया। तुम गा पाए।

ते बना - सामर्थ्य बोध होता है - यहाँ नकारात्मक रूप होते है - उससे कहते न बना।

ना है - बाध्यतासूचक व त्ति क्रिया है - मुझे अभी लिखना है।

ना चाहिए - इससे परामर्श का बोध होता है - मुझे घर चलना चाहिए। तुम्हें अवश्य लिखना चाहिए।

8.6 हिन्दी वाक्य संरचना : मूलाधार

भारतीय आचार्यो एव भाषा-वैज्ञानिकों ने समय-समय पर वाक्य के अनिवार्य तत्त्वों पर विचार किया है। आचार्य कुमारिल भट्ट ने वाक्य के तीन अनिवार्य तत्त्व बताए हैं - आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति। आचार्य विश्वनाथ ने भी साहित्य दर्पण में इन्हीं तीन अनिवार्य तत्त्वों की ओर संकेत किया है -

''वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः।''

1. योग्यता

वाक्य के संदर्भ में योग्यता का अर्थ है - वाक्य के विभिन्न पदों में पारस्परिक योग्यता अर्थात् अर्थ की द ष्टि से एक पद का दूसरे पद के साथ सम्बन्ध भाव में बाधा न होना योग्यता है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वाक्य के विभिन्न पदों के अन्वय में कोई बाधा न होना योग्यता है। वाक्य के पदों के अन्वय में दो प्रकार की बाधाएँ होती हैं।

(क) **अर्थमूलक अयोग्यता :** जब कोई वाक्य व्याकरण की द ष्टि से योग्य हो, किन्तु अर्थ-प्रतीति की द ष्टि से अनुपयुक्त हो, तो वह वाक्य नहीं होगा; यथा - वह आग से पौधों को सीच रहा है। वह पानी खा रहा है। दोनों ही वाक्य व्याकरण की द ष्टि से योग्य हैं; किन्तु अर्थ की द ष्टि से अयोग्य हैं, क्योंकि आग से सिंचने कार्य नहीं होता है और न ही पानी खाया जाता है। सिंचने का कार्य पानी से होता है और पानी पीया जाता है। इस प्रकार दोनों पद समूह तभी वाक्य की योग्यता प्राप्त

कर पाएँगे जब इन रूपों में होंगे - वह पानी से पौधों को सींच रहा है। वह पानी पी रहा है। ऐसे वाक्यों को ही समाज की स्वीकृति प्राप्त होती है।

(ख) **व्याकरणमूलक अयोग्यता :** ऐसे वाक्य जिन्हें समाज में यत्र-तत्र मान्यता मिल जाने से अर्थ अभिव्यक्ति सम्भव होती है, किन्तु व्याकरणिक द ष्टि से उनकी संरचना अशुद्ध होती है, तो मानक भाषा में उेस वाक्य नहीं माना जाएगा। यह व्याकरणिक अयोग्यता लिंग, वचन, विभक्ति आदि किसी भी रूप में हो सकती है; यथा -

रमेश घर जाती है। - लिंग अयोग्यता।

तुमने बोले - विभक्ति अयोग्यता

हम जाता हूँ। - वचन।

2. आकांक्षा

आकांक्षा का शाब्दिक अर्थ है - इच्छा, अपेक्षा या जिज्ञासा की असमाप्ति। वाक्य में शब्द या पद एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। यह सम्बन्धन भाव वाक्य के आकांक्षा तत्त्व के ही कारण सम्भव होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की अर्थ अभिव्यक्ति संदर्भ में एक-दूसरे की अपेक्षा रहती है। मानक हिन्दी में प्रायः कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रमिक प्रयोग होता है, किन्तु वाक्य में इनको एक दूसरे की अपेक्षा होती है। कर्ता कर्म को क्रिया की अपेक्षा होती है, तो कर्म को कर्ता और क्रिया की। क्रिया को कर्ता और कर्म की अपेक्षा हेाती है। इस अपेक्षा की पूर्ति पर ही वाक्य की संरचना और अर्थ की अभिव्यक्ति सम्भव है। इस प्रकार आकांक्षा की अपूर्णता पर वाक्य अपूर्ण होता है; यथा - ''रजनी'' कहने से वाक्य पूरा नहीं होता है। इससे मन में जानने की इच्छा होती है कि वह क्या करती है? ''गाती है'' कहने से कर्त्ता सम्बन्ध में जिज्ञासा होती है कि कौन गाती है? क्या गाती है? इसी प्रकार ''गीत'' कहने से कर्त्ता और क्रिया के विषय में जिज्ञासा होती है। उक्त तीनों पद - ''रजनी'', ''गीत'' और ''गाती है'' एक साथ साकांक्ष प्रयुक्त होने से - ''रजनी गीत गाती है'', पूर्ण वाक्य की संरचना होती है। वाक्य की आकांक्षा शक्ति के द्वारा श्रोता की जिज्ञासा की पूर्ति होती है। ''तुम मेरे लिए...'' से पूर्ण भाव प्रकट नहीं होता है। इसमें इच्छा शेष रह जाती है। इसलिए इसे वाक्य नहीं मान सकते हैं। आकांक्षा पूर्ति हेतु ''फूल लाओगे'' पदों या वाक्यांश को जोड़ देने पर वाक्य संरचना पूरी हो जाती है।

वाक्य की आकांक्षा के संदर्भ में कभी-कभी विशेष संरचना सामने आती है। वक्ता या लेखक वाक्य का कुछ अंश श्रोत या पाठक के परिचित संदर्भ में चमत्कारिक रूप देने के लिए छोड़ देता है। श्रोता या पाठक उसे भाव-वेग से पूरा करता हुआ आकांक्षा की पूर्ति करता है; यथा - कई बार मित्र को पत्र लिखने पर जब उत्तर नहीं आता, तो उत्तर पाने के लिए विशेष आकांक्षा आधारित वाक्यों का प्रयोग करता है - ''कई पत्र लिखे, तुमने उत्तर नहीं दिया। अब की बार उत्तर न दिया तो मैं...। सच है, तो मैं...'' यहाँ लेखक और पाठक सम्बन्ध-संदर्भ की गंभीरता से वाक्य की पूर्ति होगी।

3. आसक्ति

इसे सन्निधि की भी संज्ञा दी जाती है। इसका शाब्दिक अर्थ है - समीपता। यहाँ वाक्य में आसक्ति का अर्थ है - वाक्य में प्रयुक्त शब्दों या पदों का विशेष अन्तराल के साथ क्रमिक रूप में प्रयोग। वाक्य में विभिन्न पदों की दूरी सिमट जाए या अधिक हो जाय, तो वाक्य का अस्तित्व संदिग्ध हो जाएगा; यथा - ''यतनकलघरचलना'' की सार्थकता तब तक अस्पष्ट है जब ''यतन कल घर चलना'' रूप में नहीं लिखा जाता है। इसी प्रकार यदि इस वाक्य का ''यतन'' सवेरे बोले, ''कल'' दोपहर में बोले ''घर'' शाम को

और ''चलना'' रात में बाले तो यह वाक्य नहीं हो सकता है। वाक्य के विभिन्न पदों का एक विशेष अन्तराल के बाद प्रयोग अनिवार्य है।

आधुनिक भाषा वैज्ञानिक चिन्तन-प्रक्रिया में वाक्य के कुछ अन्य अनिवार्य तत्त्व बताए गए हैं - सार्थकता, अन्विति और पदक्रम।

1. **सार्थकता :** भाषा की मूल इकाई वाक्य का उद्देश्य है - पूर्ण और सार्थक अभिव्यक्ति। वाक्य की सार्थकता का अर्थ है - वाक्य में प्रयुक्त सभी शब्दों और पदों का सार्थक रूप में प्रयोग; यथा - ''गाय को गो-माता कहते हैं'' में सार्थकता है। यदि इस वाक्य के शब्दों को इस प्रकार ''यगा को गो तामा तेहक हैं'' प्रयोग करें, तो सार्थकता समाप्त हो जाती है और यह वाक्य नहीं रह जाता है।

   यहाँ पर ध्यातव्य है कि योग्यता के अन्तर्गत पदों और शब्दों की सार्थकता का भाव निहित होता है। वाक्य के ऐसे रूप को समाज द्वारा योग्यता संदर्भ से भी स्वीकृति नहीं मिल सकती है। अतः सार्थकता को वाक्य का भिन्न रूप में अनिवार्य तत्त्व कहना तर्कसंगत नहीं है।

2. **अन्विति :** इसके लिए अन्वय शब्द का भी प्रयोग होता है। अन्विति का अर्थ है - व्याकरणिक रूप में एरूपता। इसके अनुसार वाक्य के विभिन्न पदों में वचन, लिंग, पुरूष आदि संदर्भों में समानता होनी चाहिए। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार वाक्य में दो या दो से अधिक शब्दों की आपसी व्याकरणिक एकरूपता को अन्वय कहते हैं।

   योग्यता-सन्दर्भ से व्याकरणमूलक योग्यता पर विचार किया जाता है। वाक्य की व्याकरणिक योग्यता (विभिन्न पदों में वचन, लिंग विभक्ति आदि की समानता) ही अन्विति है। इस प्रकार अन्विति को वाक्य का अलग अनिवार्य तत्त्व कहना उचित न होगा। अन्वय का विचार कर्ता-क्रिया, कर्म-क्रिया, विशेष, सर्वनाम-संज्ञा सम्बन्धों में कर सकते हैं।

   1. **कर्त्ता और कर्म से निरमेक्ष क्रिया** : जब कर्त्ता और कर्म दोनों के साथ कारक चिह्न हों, तो सदा पुल्लिंग एकवचन में होती है; यथा - लड़की ने लड़के को देखा, लड़के ने लड़की को देखा।

   2. **सर्वनाम और संज्ञा अन्वय** : सर्वनाम सदा उसी संज्ञा के लिंग, वचन का अनुसरण करता है, जिसके स्थान पर प्रयुक्त हो; यथा - वह (नीलम) घर जाती है। वह (विनोद) दिल्ली से आ रहा है।

      आदर सूचक वाक्य में सर्वनाम और क्रिया शब्द बहुवचन हो जाते हैं; यथा - गुरू जी आ रहे हैं। वे संस्कृत पढ़ाएँगे।

      कर्त्ता-क्रिया अन्वय - यदि कर्त्ता के साथ कारक चिह्न न प्रयुक्त हो, तो क्रिया कर्त्ता के अनुसार होगी, यथा - लड़की आम खाती है, लड़का इमली खाता है।

      कर्त्ता आदर सूचक हो, तो क्रिया बहुवचन होगी; यथा - महात्मा गाँधी अंहिसा के पुजारी थे, पिताजी आ रहे हैं। कर्त्ता के साथ में, को, से आदि लगाने पर क्रिया का अन्वय नहीं होगा, यथा - महेश ने रोटी खा ली, बालिका को जाना है।

      वाक्य में एक ही लिंग, वचन, पुरूष के कारक रहित कर्त्ता और, तथा के युक्त हों, तो क्रिया उसी लिंग में, बहुवचन होगी; यथा - मोहन, सोहन और सागर जा रहे हैं; लता, मीना और माधुरी जा रही है।

3. **पद क्रप :** पदक्रम के लिए ''क्रप'' शब्द का भी प्रयोग होता है। इसका अर्थ है - वाक्य के विभिन्न पदों को भाषा-विशेष के सिद्धान्तानुसार क्रप में रखना।

   संस्कृत भाषा में सामान्यतः पदक्रम का विशेष महत्त्व नहीं होता है; यथा -

   ''ग्रामं निकषा नदी नास्ति'' को भिन्न पदक्रप में इस प्रकार भी लिख सकते हैं।

   निकषा ग्राम नदी आस्ति।

   नदी नास्ति ग्रामं निकषा।

   नास्ति नदी ग्रामं निकषा। आदि-आदि।

   संस्कृत भाषा में पदक्रम की ऐसी व्यवस्था का आधार है - सम्बन्ध तत्त्व के साथ सामजिक रूप में प्रयोग। सभी भाषाओं के वाक्यों में पदों का विशेष क्रम होता है। इस पदक्रम की व्यवस्था से पूर्ण और स्पष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति होती है।

   हिन्दी भाषा में सामान्यतः कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रमशः प्रयोग होता है; यथा -

   ''अंशुल आम खाता है'' में अंशुल - कर्त्ता, आम - कर्म और खाता है - क्रिया है। अंग्रेजी में हिन्दी के विपरीत कर्ता, क्रिया और कर्म का क्रमिक प्रयोग होता है; यथा - He eats mango. कर्त्ता + क्रिया + कर्म।

   वाक्य का यह क्रम विशेष संदर्भ (बलाघात) में बदल दिया जाता है। वाक्य के जिस भाग पर बल देना होता है, उसे सर्वप्रथम प्रयोग करते हैं; यथा -

   विपिन तुम्हारे साथ घर जा रहा है। - सामान्य वाक्य

   तुम्हारे साथ विपिन घर जा रहा है। - तुम्हारे साथ पर बल

   जा रहा है, तुम्हारे साथ विपिन घर। - जा रहा है पर बल

   इस प्रकार के विशेष पद क्रम वाले वाक्यों से विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। पदक्रम संदर्भ में ध्यातव्य तथ्य निम्नलिखित हैं -

1. विशेषण का प्रयोग प्रायः विशेष से पूर्व होता है; यथा - अच्छा लड़का है। सुन्दर चित्र लाओ। यदा-कदा विपरीत प्रयोग भी मिल सकते हैं; यथा - वह है सुन्दर।
2. क्रिया विशेषण का प्रयोग प्रायः कर्ता और क्रिया के मध्य होता है; यथा - वह धीरे चलता है, तुम तेज दौड़ते हो।
3. सम्बोधन प्रायः वाक्य के प्रारम्भ में आता है; यथा - दोस्त! आ जाओं, भगवान! तुम कहाँ हो? यदा-कदा इसके विपरीत प्रयोग भी मिल सकते है; यथा - बैठो मित्र!
4. अधिकरण कारक प्रायः क्रिया के पूर्व वाक्य के मध्य में प्रयुक्त होता है; यथा - कलम मेज पर है। कलम संदूक में है।
5. निवेदनात्मक 'न' का प्रयोग वाक्य के अन्त में होता है; यथा - आप आइएगा न!
6. निषेधात्मक अव्यय प्रायः क्रिया के पूर्व आते हैं; मैं नहीं आऊँगा। तुम वहाँ न जाना।
7. ही, भी, तो, तक, भर आदि जिस पर बल देना हो उसके बाद आते हैं; यथा - मैं ही आऊँगा, तुम भी चलना, आप तो आएंगे, शाम तक आ जाना आदि।

8. ''मात्र'' और ''केवल'' शब्दों का प्रयोग वाक्य में पहले और बाद में भी होता है; यथा -

   मात्र दो रूपये, दो रूपये मात्र।

   केवल चार पैसे, चार पैसे केवल

9. विस्मयादिबोधक प्रायः वाक्य के प्रारम्भ में आते हैं; यथा -

   वाह। कितना सुन्दर द श्य है।

10. प्रश्नवाचक शब्द प्रायः उस शब्द के पूर्व आता है, जिससे वह सम्बद्ध हो; यथा - क्या तुम पढ़ रहे हो? तुम क्या पढ़ रहे हो? तुम पढ़ क्या रहे हो? तुम पढ़ रहे हो क्या?

    पदक्रम के विषय में यह भी ध्यातव्य है कि पद्याात्मक रचना की अपेक्षा गद्य में पदक्रम अधिक व्यवस्थित होता है। लिखित भाषा से उच्चारित भाषा में पदक्रम अधिक प्रभावशाली और स्पष्ट होता है। पदक्रम की इस स्पष्टता के कारण ही उच्चारित भाग में अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत सशक्त होती है।

अध्याय - 9
हिन्दी प्रचार – आन्दोलन और हिन्दी का विविध रूप

9.1 हिन्दी-प्रसार आन्दोलन

प्रमुख व्यक्तियों के योगदान

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में भावनात्मक संदर्भ की क्रांति शुरू हुई। उस समय देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो चुकी थी। देश में होने वाले आन्दोलनों से जन-जीवन प्रभावित हो रहा था। भारत की राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए एक भाषा की आवश्यकता सामने आई। इस आवश्यकता के संदर्भ में **डॉ. अम्बा शंकर नागर** का मन्तव्य उद्धरणीय है– "सन् 1857 का आन्दोलन दासता के विरूद्ध स्वतंत्रता का पहला आन्दोलन था। यह आन्दोलन यद्यपि संगठन और एकता के अभाव के कारण असफल रहा, पर इसने भारतवासियों के हृदय में स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न कर दी। आगे चलकर जब भारत के विभिन्न प्रांतों में स्वतंत्रता के लिए संगठित प्रयत्न आरंभ हुए तो यह स्पष्ट हो गया कि बिना एक समान्य भाषा के देश में संगठन होना असंभव है।"

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाजिक, धार्मिक ही नहीं, राजनीतिक आंदोलनों में हिंदी मुख्य भाषा सिद्ध हुई इस प्रकार हिन्दी को व्यापक जनाधार मिला। राष्ट्रीय भावना जगाने हेतु हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग किया गया। विभिन्न व्यक्तियों और संस्थानों द्वारा हिंन्दी-प्रयोग हेतु आन्दोलन के रूप में कार्य किया गया है।

1. **लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक** – लोकमान्य तिलक प्रारंभ में परम विनम्र नेता थे। परिस्थितियों ने उन्हें ओजस्वी नेता बना दिया। "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का नारा देने वाले तिलक 'स्वदेशी' के प्रबल समर्थक थे। उनकी मान्यता थी कि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो राष्ट्रभाषा की पदाधिकारी है। उन्होंने हिंदी विषय में कहा था–"हिन्दी राष्ट्रभाषा बन सकती है मेरी समझ में हिन्दी भारत की सामान्य भाषा होनी चाहिए, यानी समस्त हिन्दुस्तान में बोली जाने वाली भाषा होनी चाहिए।"

   लोकमान्य तिलक देवनागरी को 'राष्ट्रलिपि' और हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' मानते थे। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के दिसम्बर, 1905 के अधिवेशन में कहा था –

   "भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रभाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है। समान भाषा के द्वारा हम अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं। अतएव यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाना चाहे तो सबके लिए समान भाषा से बढ़कर सशक्त अन्य कोई बल नहीं है।" उन्होंने जनसामान्य तक अपने विचार पहुँचाने के लिए 'हिन्दी केसरी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। हिन्दी का यह पत्र पर्याप्त लोकप्रिय हुआ।

लोकमान्य तिलक जीवन भर हिंन्दी के प्रचार-प्रसार में लगे हुए थे। उन्होने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के लिए बार-बार आग्रह किया था।

निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने अंग्रेजी में भाषण देना छोड़कर हिंन्दी सीखी और हिन्दी के प्रबल समर्थक बन गए थे, यह उनका हिन्दी और देश-प्रेम ही था।

2. **लाला लाजपतराय** – पंजाब केसरी लाला लाजपतराय प्रबल आर्य समाजी देशभक्त थे। वे महान-प्रेमी और ओजस्वी वक्ता थे। स्वदेशी वस्तुओं के समर्थक और विदेशी वस्तुओं के विरोधी थे। उन्होंने अंग्रेजी और पंजाबी पत्र के साथ 'वन्देमातरम्' दैनिक उर्दू पत्र का प्रकाशन किया। उन दिनों पंजाब में हिन्दी-उर्दू का विवाद चल रहा था। पंजाब में हिन्दी प्रचार-प्रसार में लाला लाजपतराय की बलवती भूमिका थी। उन्होंने सन् 1911 में पंजाब शिक्षा संघ की स्थापना की। शिक्षा में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने का सराहनीय प्रयास किया। सन् 1886 में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक कॉलेज की स्थापना की गई। इससे हिन्दी प्रसार का सुद ढ़ आधार मिला। इस कॉलेज में सभी विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ने की अनिवार्यता थी। लाला लाजपतराय के प्रयास से पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी को सम्मानीय स्थान मिला। उन्हीं का प्रयास था कि पंजाब विश्वविद्यालय में रत्न और प्रभाकर के माध्यम से हिन्दी को पाठ्यक्रम में स्थान मिला। हरियाणा के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन परिक्षाओं का सूत्रपात भी वहीं से हुआ।

लाला लाजपतराय विशेष उग्र और क्रान्तिकारी नेता थे। उनके द्वारा हिन्दी में भाषण देने से जनसामान्य विशेष रूप से आन्दोलित होते थे। वे हिन्दी भाषा के माध्यम से भारत को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे। निश्चय ही लाला लातपतराय महान हिन्दी-प्रेमी और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रबल समर्थक थे।

3. **पं॰ मदन मोहन मालवीय** – मालवीय जी महान् राष्ट्रीय नेता थे। उन्हें तीन बार हिन्दु महासभा के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित कियागया था। वे सन् 1884 से राष्ट्रीय कार्यों में समर्पित होकर लग गए थे। वे अपने क्रियाकलापों में हिन्दी का प्रयोग करते हुए औरों में भी हिन्दी-प्रेम जगाते रहे हैं। सन् 1886 के अधिवेशन में मालवीय जी के व्याख्यान से प्रभावित होकर काला कांकर के राजा ने इन्हें 'हिन्दुस्तान' दैनिक पत्र का संपादक बनाया था। यहीं से उनकी हिन्दी-सेवा का अनुप्रेरक रूप सामने आया है। उन्होंने 1907 ई॰ में साप्ताहिक हिन्दी 'अभ्युदय' का प्रारम्भ किया। यह पत्र सन् 1915 में दैनिक समाचार-पत्र बना। मालवीय जी ने हिन्दी प्रचार-प्रसार को गति देने के लिए सन् 1910 में प्रयोग (इलाहाबाद) से 'मर्यादा' हिंदी मासिक पत्रिका और 20 जुलाई, 1933 'सनातन धर्म' हिंदी पत्र का प्रकाशन शुरू किया है। मालवीय जी हिन्दी के महान् प्रेमी थे। इनकी प्रेरणा से 'भारत', 'हिन्दुस्तान' और 'विश्वबन्धु' जैसे चर्चित पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ है।

मालवीय जी के मन में हिन्दी के लिए विशेष आदर भाव था, इसलिए उन्होंने शिक्षा में हिन्दी की अनिवार्यता पर बल दिया। सन् 1917 में बनारस हिंदु विश्वविद्यालय की स्थापना की द ष्टि से हुई है। यहाँ के सभी विद्यार्थियों के लिए हिन्दी शिक्षा अनिवार्य थी। उन्होंने हिन्दी भाषा के विषय में स्पष्ट रूप से कहा था–

"राष्ट्रीय शिक्षा अपनी उत्तमता के उच्च शिखर पर तब तक नहीं पहुंच सकती, जब तक जनता की मात भाषा अपने उचित स्थान पर शिक्षा के माध्यम तथा सर्वसाधारण के व्यवहार के रूप में स्थापित न की जाए।"

उन्होंने उन्नीसवी शताब्दी के अंत में हिन्दी के लिए प्रबल संघर्ष किया। राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद के साथ न्यायालय में हिन्दी और देवनागरी के लिए जोरदार संघर्ष किया। उन्होंने कहा था कि जनता को न्याय दिलाने के लिए न्यायालय की भाषा हिन्दी ही होनी चाहिए। न्यायालयों में हिन्दी को स्थान दिलाने का श्रेय मालवीय जी को है।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना सन् 1893 में हुई। इसकी स्थापना में मालवीय जी की विशेष भूमिका रही है। हिन्दी प्रचार के अग्रणी नेता मालवीय जी 10 अक्तूबर, 1910 को सम्पन्न हिन्दी साहित्य

सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष थे। उनकी प्रेरणा से देश में हिन्दी के प्रति प्रबल अनुराग और राष्ट्रीयता का भाव जगा है।

4. **महात्मा गाँधीं–** स्वतंत्रता आन्दोलन में महात्मा गाँधी सजग, साहसी और आदर्श नेता के रूप में सामने आये। भारतीय आदर्शों को समाज में पल्लवित कराने में गाँधी जी ने अपने जीवन का हर पल लगाया। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद हिन्दी और हिन्दुस्तान को जगाने में लग गये। सन् 1917 में गुजरात प्रदेश के भड़ौच गुजरात शिक्षा परिषद् के अधिवेशन में उन्होंने अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाने के विरोध किया और हिन्दी के महत्त्व पर मुक्तकंठ से चर्चा की थी– "राष्ट्र की भाषा अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाना देश में 'ऐसपेरेण्टों' को दाखिल करना है। अंग्रेजी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की कल्पना हमारी निर्बलता की निशानी है।"

   महात्मा गाँधी ने सन् 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर के अधिवेशन में हिन्दी-प्रेम प्रकट करते हुए आह्वान किया था– "आप हिन्दी को भारत का राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य-पालन करना चाहिए।"

   भारत वर्ष में शिक्षा के माध्यम पर दो-टूक चर्चा करते हए गाँधी जी ने 2 सितम्बर, 1921 को कहा था, "अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए हमारे लड़के-लड़कियों की शिक्षा बन्द कर दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरन्त बदलवा दूँ।"

   गाँधी जी की द ष्टि में हिन्दी ही भारत की संपर्क भाषा के रूप में आदर्श भूमिका निभा सकती है। उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों, पत्र-पत्रिकाओं और संस्थाओं को हिन्दी-प्रयोग की अनूठी प्रेरणा दी है। वे हिन्दी को राष्ट्रीय एकता, स्वाधीनता की प्राप्ति और सांस्कृतिक उत्कर्ष मानते थे। उन्होंने हिन्दी को साधन और साध्य दोनों रूपों में अपनाया था। महात्मा गाँधी के हिन्दी-प्रेम और प्रचार-प्रसार के विषय में डॉ॰ रामविलास शर्मा का कथन विशेष रूप में उल्लेखनीय है–"दक्षिण भारत में गाँधी जी और उनके अनुयायियों-सहयोगियों ने जितना हिन्दी प्रचार किया, उतना और किसी नेता, राजनीतिक पार्टी या सांस्कृतिक संस्था ने नहीं किया।"

   गाँधी जी हिन्दी और भारतीय भाषाओं के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने हिन्दी प्रचार-प्रसार को गति देने के लिए विभिन्न संस्थाओं का विशेष सहयोग लिया था। गाँधी सेवा संघ, चर्खा संघ, हरिजन सेवक संघर्ष आदि का सारा कामकाज हिन्दी में होता रहा है। निश्चय ही हिन्दी-प्रसार के प्रयत्न में गाँधी जी की भूमिका अग्रगण्य रही है।

5. **राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन** – राष्ट्रभाषा हिन्दी को संघ की राजभाषा बनाने का जो प्रयास राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने किया है, वह सदा याद किया जाता रहेगा। पं॰ मदनमोहन मालवीय के दर्शाये गए मार्ग पर चल कर इन्होंने हिन्दी की अनुपमेय सेवा की है। इनके द्वारा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से की गई हिन्दी की सेवा अनपमेय रही है। टण्डन जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में से थे। इन्हीं की प्रेरणा से महात्मा गाँधी जी भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन से जुड़े हैं। ये लाला लाजपतराय के साथ मिलकर भी हिन्दी के प्रसार में लगे रहे। लाला जी की म त्यु के पश्चात् टण्डन जी 'लोकसेवा मण्डल' के सभापति बन कर हिन्दी प्रसार में लगे रहे। इसका कार्यालय लाहौर में था। इसलिए टण्डन जी ने वहाँ की संस्थाओं के माध्यम से हिन्दी का अनुप्रेरम प्रसार किया। ये हिन्दी के प्रबल समर्थक थे, गाँधी जी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे।

   टण्डन जी की प्ररेणा से हिन्दी साहित्य सम्मेलन आज भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगा है। यह टण्डन जी की ही देन है।

6. **डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद –** महात्मा गाँधी और हिन्दी के परम् भक्त डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद अखिल भारतीय कॉंग्रेस के सम्माननीय सदस्य थे। विभिन्न हिन्दी सम्मेलनों की अध्यक्षता और सहभागिता करते हुए इनका सहज और निकट

संबंध महात्मा गाँधी, मदनमोहन मालवीय और राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन से हुआ। देश की सभी हिन्दी संस्थाओं से इनका गहरा सम्बन्ध था और ये पूरी रूचि और पूरे उत्साह से भाग लेते रहे हैं। वे हिन्दी के प्रयोग हेतु सबको प्रेरित करते रहे हैं। उनका हिन्दी के संदर्भ का विचार अनुकरणीय है –

"मैं हिन्दी के प्रचार, राष्ट्रभाषा के प्रचार को राष्ट्रीयता का मुख्य अंग मानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह भाषा ऐसी हो, जिसमें हमारे विचार आसानी से साफ-साफ स्पष्टतापूर्वक व्यक्त हो सकें। राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिए, जिस केवल एक जगह के ही लोग न समझें, बल्कि उसे देश के सभी प्रान्तों में सुगमता से पहुंचा सकें।"

डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद पर महात्मा गाँधी का विशेष प्रभाव पड़ा है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में इनकी भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही है। उन्होंने भारतीय भाषाओं को महत्त्व देते हुए कहा है –

"मेरा दृढ़ मत है कि कोई भी शख्स अपनी मातृभाषा के द्वारा ही तरक्की कर सकता है।..... देश भर को बाँधने के लिए, भारत के भिन्न-भिन्न हिस्से एक-दूसरे से संबंधित रहें, इसके लिए हिन्दी की जरूरत है।" निश्चय ही डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद की हिन्दी-सेवा सदा ही याद की जाएगी। भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में हिन्दी को सम्मानीय स्थान दिलाने का श्रेय डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद को है। राष्ट्रपति के रूप में हिन्दी और भारतीय भाषाओं को सम्मानजनक स्थान दिलाने का सराहनीय प्रयास किया।

7. **काका कालेलकर** – हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अहिंदी भाषियों का नाम गौरव से लिया जाता है। ऐसे हिन्दी-प्रेमियों में काका कालेलकर का नाम विशेष श्रद्धा से लिया जाता है। इन्होंने हिन्दी के प्रसार में समर्पित होकर कार्य किया हैं उन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से जुड़कर और गुजरात में रहकर हिन्दी-प्रसार को नई दिशा प्रदान की है। उन्होंने कभी अंग्रेजी का विरोध नहीं किया, किन्तु प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दुस्तानी के प्रबल हिमायती थे। यह निर्विवाद सत्य है कि काका कालेलकर 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक थे। उस समय हिन्दुस्तानी का अर्थ था - हिंदी और उर्दू का मिश्रित रूप। अंग्रेजों के शासन और अंग्रेजी के शासन और अंग्रेजी के प्रभाव में 'हिन्दुस्तान' के प्रसार से हिंदी को ही लाभ हुआ है। इससे जन सामान्य में हिंदी के प्रति अनुराग विकसित हुआ है। गाँधी जी के अनुयायी काका कालेलकर का नाम हिंदी-आंदोलन के संदर्भ में सदा याद किया जाएगा।

8. **सेठ गोविन्ददास** - हिंदी के प्रसार के साथ इसे राजभाषा के प्रतिष्ठित पद पर सुशोभित करवाने में सेठ गोविन्ददास की अविस्मरणीय भूमिका रही है। ये उच्चकोटि के साहित्यकार हैं। आपकी नाट्यकृतियों से हिंदी साहित्य मोहक रूप में समृद्ध हुआ है। उन्होंने जबलपुर से शारदा, लोकमत तथा जयहिन्द पत्रों की शुरूआत कर जन-मन में हिंदी के प्रति प्रेम जगाने और साहित्यिक परिवेश बनाने का अनुप्रेरक प्रयास किया है।

   उन्होंने सवतंत्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया और हिंदी के लिए सतत प्रयास किया। भारतीय संविधान सभा में हिंदी और हिन्दुस्तानी को लेकर उठे विवाद को शांत करने में सेठ गोविन्ददास का विशेष महत्त्व रहा है। देश के मान्य सांसद और हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रूप में हिंदी के लिए जो प्रेरक कार्य आपने किया है, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

   हिंदी प्रसार के आन्दोलनों में हिंदी-प्रेमियों की लम्बी नामावली है। जिनके सतत प्रयास से देश में राष्ट्रीयता का भाव विकसित हुआ, देश स्वतंत्र हुआ और हिंदी को सम्मानजनक स्थान मिला। इनमें स्वामी दयानन्द, श्रद्धानन्द, विनोबा भावे आदि के नाम श्रद्धा से लेने योग्य हैं।

प्रमुख संस्थाओं का योगदान

भारतवर्ष में स्वाधीनता संग्राम के साथ हिंदी का आन्दोलन भी चलाया जा रहा था। वास्तव में हिंदी का यह आन्दोलन अंग्रेजी के विरोध में किया गया था। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय हिंदी या हिन्दुस्तानी ही देश की संपर्क भाषा थी। प्रत्येक आन्दोलनकारी 'वन्देमातरम्' या 'जिन्दाबाद' के नारे लगाता था। इस प्रकार भारत देश

की राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही थी। हिंदी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का आन्दोलन चलाया गया है। इस आन्दोलन की सफलता पर ही 14 सितम्बर, 1949 को हिंदी राजभाषा पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। इस आन्दोलन से हिंदी का सुन्दर परिवेश बना है, इसलिए इस आन्दोलन को 'राष्ट्रभाषा हिंदी' या 'राजभाषा हिंदी' से जोड़ सकते हैं।

हिंदी-प्रसार आंदोलन में धर्मगुरुओं, महात्माओं, राजनेताओं और हिंदी-प्रेमियों के साथ अनेक संस्थाओं की भी सराहनीय भूमिका रही हैं भारत धर्मप्रधान देश है। इसलिए हिंदी-प्रसार आन्दोलन में साहित्यिक संस्थाओं के साथ धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है।

(अ) **धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाएँ** - उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन की आँच में भारतवासी तप रहे थे। ईसाई पादरियों को ईसाई धर्म-प्रचार के लिए छूट मिल चुकी थी। उनके द्वारा हिन्दु धर्म को हेय द ष्टि से देखा जाता और निन्दा की जाती थी। भारतीयों को लालच देकर धर्म-परिवर्तन कराया जाता रहा है। यह सच है कि उस समय तक भारत में जाति-पाँति, छूआ-छूत, पर्दा-प्रथा, वाल-विवाह और अनमेल विवाह आदि विकृतियाँ फैल चुकी थीं। विवश और निरीह हिन्दु विजातीय धर्म स्वीकार कर रहे थे। इस विषम क्रियाकलाप की प्रतिक्रिया पर विविध सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ है। एक ओर सामाजिक और धार्मिक विकृतियों को रोकने का प्रयास शुरू हुआ, तो नैतिक मूल्यों को अनुकूलन आधार मिला। इस दिशा में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, प्रार्थना सभा, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि संस्थाओं की भूमिका से समाज में आशा की किरण जगमगाई है। इन संस्थाओं के द्वारा राष्ट्रीय भाव जगाने के लिए हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाया गया।

1. **ब्रह्म समाज** - भारतीय आदर्श और संस्कृति के पुजारी राजा राममोहन राय ने सन् 1828 में कलकत्ते में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। उन्होंने जब ईसाई धर्म-प्रचार से भारतीयों की मानसिकता पर पड़ने वाले प्रभाव को देखा और वे धर्म-परिवर्तन की प्रक्रिया से आन्दोलित हुए तब उन्होंने पुनर्जागरण के लिए 'ब्रह्म समाज' को चिन्तन का केन्द्र बनाया।

   देश में राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक चेतना जगाने में ब्रह्म समाज की अनूठी भूमिका रही है। ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने युगीन संदर्भ में आधुनिक विचार-चिन्तन को स्वीकार किया। उनके व्यक्तित्त्व में पूर्व और पश्चिम का अनुपम समन्वय था। वे अंग्रेजी को एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में सम्मान देते थे, किन्तु राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी के सबल समर्थक थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि भारतवर्ष में राष्ट्रीयता के भाव से सम्पन्न अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता मात्र हिंदी में है। उनकी विद्वता और राष्ट्रीयता का स्पष्ट बोध इससे होता है कि उन्होंने 'बंगदूत' नामक पत्र कलकत्ता से प्रकाशित किया। इसके पत्र में हिंदी, बंगला, अंग्रेजी और फारसी के प ष्ठ हुआ करते थे। वे स्वयं हिंदी में लिखते तथा हिंदी में लिखने के लिए दूसरों को भी प्रोत्साहित करते रहते थे। अहिंदी भाषा क्षेत्र बंगाल में 'ब्रह्म समाज' की भूमिका विशेष सराहनीय रही है। समाज-सुधार और हिंदी-प्रचार में अनेक विद्वान नेता-तन-मन से लग गए थे। इस संदर्भ में महर्षि देवेन्द्र नाथ, केशव चन्द्र सेन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर और नवीन चन्द्र राय के नाम श्रद्धा से लेते हैं। इस समाज द्वारा अधिकांश पुस्तक हिंदी में प्रकाशित की गई। इस संस्था के सभी सदस्यों से हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने का आह्वान किया गया। नवीन चन्द्र राय ने पंजाब पहुँचकर 1867 में 'ज्ञानप्रदायिनी' पत्रिका निकाल कर हिंदी-आन्दोलन को गति दी। भूदेव मुखर्जी ने बिहार की शिक्षा में हिंदी को प्रतिष्ठित किया और वहाँ के न्यायालयों में हिंदी और नागरी लिपि के प्रयोग का मार्ग खोला। उन्होंने अपनी पुस्तक 'आचार-प्रबन्ध' में हिंदी को सर्व उपयोगी गुणसम्पन्न देश की संपर्क भाषा के रूप में अपनाने का आह्वान किया।

केशव चन्द्र सेन की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द ने हिंदी में व्याख्यान देना शुरू किया। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिंदी में की। सेन ने सन् 1875 में 'सुलभ समाचार' निकालकर उस आन्दोलन को अधिक मुखर रूप प्रदान किया। उनकी मान्यता थी कि हिंदी देश की सर्वाधिक प्रचलित भाषा है, इसलिए यह भाषा ही राष्ट्रीय एकता का आधार बन सकती है।

हिंदी-प्रसार में 'ब्रह्म समाज' की भूमिका सर्वोपरि है।

2. **आर्य समाज** - भारतवर्ष के सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों में आर्य समाज का स्थान सर्वोपरि है। आर्य समाज की स्थापना 1875 ई. में, बम्बई में स्वामी दयानन्द द्वारा समाजोत्थान के लिए की गई थी। आर्य समाज द्वारा पूरे देश में स्वराज, धर्म और हिंदी भाषा के लिए आन्दोलन किया गया। आर्य समाज के आन्दोलनकारी हिंदी को 'आर्यभाषा' नाम से संबोधित कर अपना सारा कार्य इसमें ही करते थे। आर्य समाज के 28 नियमों में पाँचवां नियम हिंदी पढ़ना था। आर्य समाज के बढ़ते कदम लाहौर पहुँचे और 24 जनवरी, 1877 को लाहौर में आर्य समाज की स्थापना हुई। आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन हिंदी में ही होता था। इसलिए हिंदी-प्रसार को सुन्दर आधार मिला।

   आर्य समाज द्वारा गुरूकुलों, कन्या-पाठशालाओं और महिला-विद्यालयों की स्थापना की, जिनमें हिंदी की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी। गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम विज्ञान की शिक्षा हिंदी में देने की सफल व्यवस्था की गई। इस विषय में **श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति** का कथन उद्धरणीय है, ''भारत में पहला शिक्षणालय, जिसमें राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा समपूर्ण ज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया, गुरूकुल काँगड़ी था।''

   आर्य समाज के द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए हिंदी में अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई। भारत की जनता स्वामी दयानन्द के विचार पढ़ना चाहती थी। इन पत्र-पत्रिकाओं में ऐसे विचार प्रकाशन से हिंदी पर्याप्त लोकप्रिय बनी। स्वामी जी पहले संस्कृत में व्याख्यान देते थे, किन्तु कलकत्ता के ब्रह्म समाज के नेता केशव सेन के आग्रह पर उन्होंने हिंदी को अपनाया है। इस प्रकार हिंदी-प्रसार को लोकप्रिय आधार मिला है। स्वामी जी के परम सहयोगी **इन्द्रविद्यावाचस्पति** ने स्वामी जी के हिंदी-प्रेम के महत्त्व के विषय में लिखा है –

   ''महर्षि ने लोक-भाषा को उपदेश का साधन बनाकर न केवल अपने मिशन को लोकप्रिय और व्यापक बना दिया। भविष्य में राष्ट्रभाषा बनाने वाली आर्य को पुष्टि देकर राष्ट्र के स्वाधीनता-भवन की द ढ़ बुनियाद भी रख दी।''

   गुजराती भाषा-भाषा स्वामी जी के हिंदी-प्रेम से उनके अनुयायियों में अनुकरणीय हिंदी प्रेम जगा। श्री राम गोपाल के शब्दों में, ''उनके अनुयायियों के धर्म-प्रचार से जो अधिक उत्तम चीज राष्ट्रीय जीवन को प्राप्त हुई, वह थी राष्ट्रभाषा का प्रचार।''

   आर्य समाज के माध्यम से हिंदी का प्रचार भारत से बाहर मॉरिशस, फिजी, गयाना, सूरीनाम, ट्रिनीडाड-टुबैगो, युगांडा और लंदन में हुआ।

   आर्य समाज ने जैसा प्रेरक कार्य सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में किया, इसी प्रकार हिंदी-प्रसार में सर्वोतम कार्य किया।

3. **सनातन धर्म सभा** - ब्रह्म समाज और आर्य समाज के द्वारा मूर्तिपूजा और बहुदेवतावाद के प्रबल विरोध की प्रतिक्रिया में सन् 1973 में 'सनातन धर्म-रक्षिणी सभा' की स्थापना हरिद्वार और दिल्ली में की। सन् 1900 में पं. मदन मोहन मालवीय आदि ने सभा को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। सभा का मुख्य उद्देश्य था - हिन्दु धर्म की स्म तियों और पुराण आदि का शास्त्रों के आधार पर सुधार कार्य। सनातन धर्म की हजारों शाखाएँ भारत वर्ष के विभिन्न प्रान्तों में खुलीं। इस सभा का अधिकांश कार्य संस्कृत और हिंदी-प्रसार को बल मिला।

सनातन धर्म सभा के माध्यम से देश के विभिन्न प्रदेशों में शिक्षण संस्थाएँ शुरू हो गई। इनमें हिन्दी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। उत्तर भारत क्षेत्र में इस को आशातीत सफलता मिली। पं. मदन मोहन मालवीय के प्रिय शिष्य गास्वामी गणेश दत्त इस सभा के कर्णधार थे। इनका जन्म पंजाब के लायलपुर (पाकिस्तान) में हुआ था। उन्होंने सर्वप्रथम लायलपुर में एक गुरूकुल की स्थापना की। इसमें संस्कृत-हिंदी अध्ययन-अध्यापन व्यवस्था थी। इसके पश्चात् सैंकड़ों संस्थाएँ खुली। इससे पंजाब में हिंदी का व्यापक प्रचार हुआ। गोस्वामी जी ने सन् 1940 में 'विश्वबन्धु' दैनिक समाचार-पत्र का श्रीगणेश किया। भारत-विभाजन के बाद इन्होंने अपना कार्यक्षेत्र हरिद्वार बनाया। सन् 1947 में दिल्ली में 'अमर भारत' हिंदी दैनिक का प्रकाशन किया।

गोस्वामी गणेश दत्त के साथ हिंदी-प्रसार में योगदान देने वालों में श्रद्धाराम फिल्लौरी का नाम विशेष आदर से लिया जाता है। सनातन धर्म सभा के सतत प्रयास से भारत में मुख्यतः उत्तर भारत में हिंदी जन-मानस की भाषा बनी।

4. **प्रार्थना समाज** – भारत वर्ष में सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा में सुधार के लिए महाराष्ट्र में 'परमहंस सभा' की स्थापना सन् 1849 में हुई। ब्रह्म समाज के नेता श्री केशव चन्द्र सेन के बम्बई आगमन पर सन् 1867 में इस सभा को नया रूप देकर 'प्रार्थना समाज' के आधार पर प्रभावी कार्य शुरू किया गया। इस संस्था द्वारा समाज में व्याप्त जाति-पाँति, अछूत और नारी-समस्याओं को दूर करने का सतत् प्रयास किया गया। इस समाज का अधिकांश कार्य हिंदी में किया जाता था। साप्ताहिक प्रवचनों हिंदी-प्रयोग से महाराष्ट्र में हिंदी का प्रेरक परिवेश बना है।

   इस समाज के सक्रिय नेताओं में न्यायाधीश महादेव गोविंद रानाडे और आर. जी. भण्डारकर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। गोविंद रानाडे ने हिंदी और नागरी लिपि के प्रयोग और प्रसार का सतत् प्रयास किया है। निश्चय ही हिंदी-प्रसार आन्दोलन में प्रार्थना समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

5. **थियोसोफिकल सोसाइटी** – इस सोसाइटी की स्थापना भारतीय दर्शन और संस्कृति के प्रभाव से 'विश्व-बन्धुत्व' भाव जगाने हेतु सन् 1875 में अमेरिका में हुई। इसके संस्थापक मदाम ब्लावत्स्की और कर्नल आलकोट थे। सन् 1897 में इसका मुख्य कार्यालय मुम्बई में स्थापित किया गया। इस संस्था पर आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का विशेष प्रभाव पड़ा। इस संस्था ने स्वामी जी को अध्यात्म गुरु भी माना है। इसके उद्देश्य ब्रह्म समाज और आर्य समाज से बहुत कुछ मेल खाते हैं। सन् 1893 में श्रीमति एनी बेसेंट ने इस संस्था का नेत त्व अपने हाथों में लिया। उन्होंने सन् 1898 में काशी में सेंट्रल हिंदू कॉलेज और हिंदू कन्या विद्यालय की स्थापना की। इसके साथ ही देश के विभिन्न प्रांतों में शिक्षण संस्थाएँ खोलीं। इन विद्यालयों और महाविद्यालयों में भारतीय संस्कृति की शिक्षा हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में दी जाती थी। इस सोसाइटी पर अंग्रेजी का भी प्रभाव दिखाई देता है, किन्तु इनकी जो भी प्रचारादि सामग्री छपती, वह अंग्रेजी के साथ हिन्दी में भी होती थी। इस प्रकार हिन्दी-प्रसार को सुअवसर मिला। स्वाधीनता संग्राम के प्रति विशेष लगाव होने के कारण सन् 1918 से सन् 1921 तक इन्होंने दक्षिणी भारत में घूम-घूमकर हिन्दी का प्रचार किया था। उन्होंने हिन्दी का महत्त्व अपनी पुस्तक 'नेशन बिल्डिंग' में लिखा है – "हिन्दी जानने वाले आदमी संपूर्ण भारत में यात्रा कर सकता है और उसे हर जगह हिन्दी बोलने वाले मनुष्य मिल सकते हैं। हिन्दी सीखने का कार्य ऐसा त्याग है, जिसे दक्षिणी भारत के निवासियों को राष्ट्र की एकता के हित में करना चाहिए।

   श्रीमति एनी बेसेंट ने सन् 1928 में मद्रास (चेन्नई) में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हिन्दी-संदर्भ में प्रेरक वक्तव्य दिया था – "मेरा विश्वास है कि हिन्दी भारतवर्ष की मुख्य (संपर्क) भाषा होगी। मेरा विचार है कि भारतवर्ष की शिक्षा में हिन्दी अनिवार्य होनी चाहिए।"

   इस प्रकार के विचारों और गतिविधियों से हिन्दी-प्रसार को अनुकूल दिशा मिली है।

(आ) **साहित्यिक संस्थाएँ** - भारतवर्ष एक लम्बे समय तक दासता की बेड़ी में जकड़ा रहा। हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु समय-समय पर अनेक साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना होती रहती है। राष्ट्रीय भाव जगाने और हिंदी के प्रचार-प्रसार में इन संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है। इनमें कुछ संस्थाओं का उल्लेख किया जा रहा है।

1. **भारतेन्दु मण्डल** - आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने साहित्यकारों का एक मण्डल बनाया था। यह मण्डल हिन्दी साहित्य के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन का अभिलाषी था। मण्डल के सदस्यों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं पर महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। भारतेन्दु हरीशचन्द्र ने हिन्दी पर व्याख्यान देते हुए कहा था –

   "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।"

   भारतेन्दु मण्डल की गतिविधियों से सामाजिक क्षेत्र में जागरण का परिवेश बना, तो स्वदेशी आंदोलन को प्रभावी आधार मिला है। हिन्दी-प्रेम के कारण जन-सामान्य में हिन्दी लोकप्रिय हुई। भारतेन्दु हरीशचन्द्र के साथ इस मंडल के सक्रिय सदस्य थे – पं. प्रताप नारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी, श्रीनिवास दास, बालमुकुंद गुप्त, रमाशंकर व्यास और तोताराम आदि।

2. **नागरी प्रचारिणी सभा, काशी** - इस सभा की स्थापना 10 मार्च, 1983 में हुई। इस संस्था को संरक्षक के रूप में बाबू श्यामसुन्दर दास, श्री गोपाल प्रसाद खत्री और पं. राम नारायण मिश्र आदि का आशीर्वाद मिला। इस संस्था से अन्य जुड़ने वाले गणमान्य विद्वानों में महामना मदन मोहन मालवीय, श्रीधर पाठक, श्री अम्बिका दत्त व्यास, श्री राधाचरण गोस्वामी और बदरी नारायण चौधरी आदि प्रमुख हैं। कोश-रचना, हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन, हस्तलिखित ग्रंथों की खोज और संगोष्ठी आयोजन में यह संस्था देश में शीर्ष स्थान पर है।

   कामता प्रसाद गुरु रचित 'हिन्दी व्याकरण' पं. किशोरी वाजपेयी कृत 'हिन्दी शब्दानुशासन' के अतिरिक्त 'हिन्दी शब्दसागर', 'हिन्दी साहित्य का ब हत् इतिहास' आदि के दुर्लभ और महत्वपूर्ण प्रकाशन से इस संस्था को हिन्दी-विकास में विशेष महत्व मिला है। 'नागरी प्रचारिणी' शोध-पत्रिका का लगभग सौ वर्षों का गरिमामय इतिहास इस संस्था की गौरव गाथा का स्वरूप है।

   इस संस्था ने नागरी लिपि के सुधार, आशुलिपि (शार्टहैंड) और टंकण (टाइप) संदर्भ में अनुकरणीय पहल की है। नागरी प्रचारणी सभा का लगभग सौ वर्षों का इतिहास हिन्दी प्रचार-प्रसार के श्रेष्ठ और प्रेरक संदर्भ को प्रस्तुत करता है। यह सभा आज भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार के साथ हिन्दी साहित्य को सम द्ध करने में लगी है।

3. **हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग** - सम्मेलन हिन्दी प्रचार-प्रसार की सर्वप्रमुख साहित्यिक संस्था है। सन् 1910 में सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन महामना मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हुआ। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने इसी समय न्यायालय में हिन्दी और देवनागरी प्रयोग पर बल दिया।

   सम्मेलन द्वारा हिन्दी प्रचार-प्रसार और हिन्दी-विकास के लिए नियम बनाए गए। इनमें प्रमुख थे – राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी का प्रचार, हिन्दी भाषी प्रदेशों की शिक्षण संस्थाओं के साथ न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग, देवनागरी में छपाई की समुचित व्यवस्था, हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं का विकास, हिन्दी विद्वानों और साहित्यकारों का सम्मान और हिन्दी प्रचार-प्रसार हेतु हिन्दी की उच्च परीक्षाओं का आयोजन।

   सम्मेलन द्वारा उक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सतत् प्रयत्न किया जाता रहा है। सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन अर्थात् सन् 1913 से हिन्दी के व्यापक प्रचार हेतु प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा आदि परीक्षाओं का आयोजन शुरू हुआ।

सम्मेलन की त्रैमासिक 'सम्मेलन पत्रिका' शोधपरक और गन्वेषणात्मक आलेखों के आधार पर सतत् प्रकाशित होती रही है। 'राष्ट्रभाषा संदेश' पत्र भी हिन्दी प्रचार-प्रसार की आकर्षक भूमिका में है। हिन्दी का चर्चित शब्दकोश 'मानक हिन्दीकरण' पाँच खण्डों में प्रकाशित करना गरिमा का विषय है।

सन् 1963 में भारत सरकार के द्वारा लोक सभा में एक विशेष स्वीकृति कर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' को राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था के रूप में मान्यता दी गई है।

इस प्रकार हिन्दी प्रचार-प्रसार में सम्मेलन का सर्वोपरि महत्व है।

4. **दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास** - महात्मा गाँधी ने हिन्दी सम्मेलन के सन् 1918 के इन्दौर के अधिवेशन में दक्षिण में हिन्दी प्रचार की योजना बनाई। उनके पुत्र श्री देवदास गाँधी दक्षिण भारत में प्रथम हिन्दी प्रचारक के रूप में गए। दक्षिण भारत में प्रचारार्थ श्री सत्यदेव परिव्राजक आदि वहाँ पहुँचे। वहाँ प्रारंभ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से प्रचार हुआ। सन् 1927 में इसे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास नाम दिया गया। इसके संस्थापकों में चक्रवर्ती राजगोपालचारी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

   सभा के द्वारा दक्षिण के प्रांतों में हिन्दी का प्रेरक प्रचार किया गया। हिन्दी भाषा के प्रचारार्थ प्रवेशिका विशारद्, पूर्वार्द्ध, विशारद् उत्तरार्द्ध, प्रवीण तथा हिन्दी प्रचारक आदि परीक्षाओं का संचालन किया जाता है। सभा की प्रवेशिका, विशारद् और प्रवणी परीक्षाओं को केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा मान्यता मिली है। यहाँ से मासिक 'हिन्दी प्रचार समाचार' और 'दक्षिणी भारत' द्विमासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है।

   केन्द्र सरकार ने सभा को श्रेष्ठ हिन्दी प्रचारक मानकर राष्ट्रीय महत्व प्रदान किया है।

5. **राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा** - हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 25वाँ अधिवेशन सन् 1936 में नागपुर में हुआ। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सम्मेलन के अध्यक्ष थे। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के प्रस्तावानुसार दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ 'हिन्दी प्रचार समिति' का गठन किया गया। इसका प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में वर्धा में हुआ। काका कालेलकर के सुझाव पर इसका नाम बदल कर 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' रखा गया।

   इस समिति का मुख्य उद्देश्य हिन्दी-प्रचार था और इसी आधार पर समिति मानती थी 'एक हृदय हो भारत जननी' समिति ने हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए सन् 1938 से अपनी परीक्षाओं का संचालन शुरू किया समिति ने जुलाई 1943 से 'राष्ट्रभाषा' मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसके पश्चात् 'राष्ट्रभारती' पत्रिका का प्रकाशन किया गया। इस समिति के देश से बाहर लंका, स्याम, सुमात्रा, मॉरिशस, इंग्लैंड आदि देशों में केन्द्र हैं।

   समिति सम्मान और पुरस्कार से भी हिन्दी प्रचार-प्रसार को दिशा प्रदान करती है। इस समिति की गतिविधियों से हिन्दी को विशेष बल मिला है।

   इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा; गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; हिन्दी विद्यापीठ, मुम्बई; महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना और बिहार राष्ट्रभाषा, पटना आदि की हिन्दी प्रचार-प्रसार भूमिका उल्लेखनीय है।

9.2 हिन्दी के विविध रूप

भावाभिव्यक्ति के सन्दर्भ में विश्व की सभी भाषाएँ सामान्यतः समान होती हैं, क्योंकि सभी भाषाएँ विचार-विनिमय के मुख्य साधन-रूप में होती है। मन के भावों और अभिव्यक्ति की भिन्नता के कारण भाषा में भिन्नता होती है। भाषा प्रयोग अर्थात् उच्चारण के साथ ग्रहण अर्थात् श्रवण और अर्थ-ग्रहण में भी भिन्नता होना स्वाभाविक है। प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक रचना तथा परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होना स्वाभाविक है। प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक रचना तथा परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं जिसके कारण भाषा-प्रयोग तथा ग्रहण में भिन्नता आ जाती है। हिन्दी भारतवर्ष में बहुसंख्यक

लोगों द्वारा प्रयुक्त भाषा है। इसका प्रयोग व्यक्ति से राष्ट्रीय स्तर तक होता है। इसका प्रयोग सामाजिक, धार्मिक, प्रशासनिक और राजनीतिक आदि क्षेत्रों में होता है। हिन्दी के प्रयोग की विविधता ही इसकी शक्ति है। हिन्दी को प्रयोग के आधार पर मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में विभक्त कर सकते हैं –

1. व्यक्तिगत बोली

(Idiolect)

यह भाषा का लघुत्तम रूप है। यह व्यक्ति विशेष की बोली है। मनुष्य प्रकृति का महत्वपूर्ण अंग है। प्रकृति के नियम के अनुसार मनुष्य में विभिन्न द ष्टि के विकास या ह्रास की गति चलती रहती है। इस विकास-ह्रास के कारण भाषा के प्रयोग में भी भिन्नता होती रहती है। इतनी भिन्नता होते रहने पर भी उसकी भाषा जन्म से म त्यु तक अनेक समान विशेषताओं से युक्त होती है, जो विशेषताएँ अन्य किसी भी व्यक्ति में सूक्ष्मतम रूप में उपलब्ध नहीं हो सकती। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर यदि कोई परिचित व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अँधेरे में या पर्दे के पीछे से बोले तब भी पहचान लिया जाता हैं हिन्दी भाषी प्रत्येक व्यक्ति की भाषा की अपनी पहचान ही उसकी भाषायी विशेषताएँ हैं।

2. उपबोली

(Sub-Dialect)

किसी सीमित क्षेत्र के लोगों के द्वारा प्रयुक्त इस भाषा को उपबोली की संज्ञा दी जाती है। स्थान विशेष में प्रयुक्त होने के कारण भौगोलिक आधार पर स्थानीय बोली (Local Dialect) भी कहते हैं। इस भाषा में एक स्थान विशेष के विभिन्न लोगों में पाई जाने वाली समान विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। इस भाषा में व्यक्ति विशेष की बोली को महत्व न देकर स्थान विशेष के समग्र लोगों की बोली को महत्व देते हैं। एक बोली में कई उपबोलियाँ हो सकती हैं। बोलियों का विभाजन मुख्यतः दिशाओं के आधार पर पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी, दक्षिणी और मध्य उपबोली के रूप में करते हैं। कभी-कभी स्थान या जनपद विशेष की भाषा की उपबोली कहते हैं; यथा – अम्बालव, सुलतानपुरी आदि।

3. बोली

(Dialect)

इसके लिए विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न आधारों पर विभाषा, उपभाषा, भाषिका और उपप्रादेशिक नाम भी दिए हैं। बोली के प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या उपबोली के प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या कहीं अधिक होती है, क्योंकि कई उपबोलियों का संयुक्त रूप ही बोली होता है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक बोली के अन्तर्गत कई उपबोलियाँ आती हैं। एक बोली के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न क्षेत्रों की उपबोलियों के लोग आपस की भाषा को सरलता से समझ लेते हैं। क्योंकि एक बोली की विभिन्न क्षेत्रों की उपबोलियों के लोग आपस की भाषा को सरलता से समझ लेते हैं क्योंकि एक बोली की विभिन्न उपबोलियाँ की ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य तथा अर्थ – संरचना में पर्याप्त समानता होती है। बोली के विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं के उच्चारण तथा लोकोक्ति-मुहावरों के प्रयोग में भी पर्याप्त समानता होती है।

बोलियों के उद्‌भव और विकास का मुख्य आधार है – एक भाषा-भाषियों का दो या दो से अधिक स्थानों पर दूर-दूर बस जाना। उन विभिन्न स्थानों की भाषा में जब उनकी परिस्थितियों के अनुसार धीरे-धीरे पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है, तो बोलियों का विकास होता है। इस प्रकार बोली-विकास में एक स्थान के लोगों का दूसरे स्थान के लोगों से शिथिल सम्पर्क या सम्बन्ध-शिथिलन में आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक या सामाजिक कोई भी कारण हो सकता है।

बोली का विशेष महत्व होता है, क्योंकि बोली मनुष्य की सहज भाषा होती है। कोई भी व्यक्ति जिस बोली-क्षेत्र से सच्चे अर्थ से जुड़ा होगा, वह उसमें अपने भावों को अपेक्षाकृत कहीं अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। बोली में तत्सम्बन्धित क्षेत्र ही सांस्कृतिक तथा सामाजिक अभिव्यक्ति भी अपूर्व सहजता से होती है। बोली के माध्यम से जो व्यावहारिक प्रभाव पड़ता है, वह इसकी अपनी महत्वपूर्ण विशेषता है। बोली ही विकसित होकर भाषा का रूप धारण करती है। पूर्वकालीन अवधी, ब्रज आदि बोलियाँ अब भाषा बन गई हैं। खड़ी बोली के राजनीतिक और सामाजिक संरक्षण मिलता तो उसे राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हो गया।

4. भाषा

(Language)

जिस प्रकार उपबोली से बोली का क्षेत्र विस्त त होता है तथा प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या भी अधिक होती है, उसी प्रकार बोली से भाषा का क्षेत्र विस्त त होता है तथा प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या अधिक होती है। सामान्यतः समान विशेषताओं वाली कई बोलियों का समूह भाषा है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ आती हैं; यथा – हिन्दी भाषा के अन्तर्गत ब्रज, अवधी, हरियाणवी आदि बोलियाँ आती हैं। भाषा निर्माण की प्रक्रिया सायास होती है। जब किसी बोली को राजनीतिक, साहित्यिक और धार्मिक आदि आन्दोलनों का सुद ढ़ आधार मिल जाता है, तो उसके प्रयोग की सीमा बढ़ जाती है, उसका साहित्यिक रूप उभर आता है और तब बोली उच्च पद पाकर भाषा बन जाती है। दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जाने वाली 'खड़ी-बोली' का हिन्दी भाषा के रूप में विकास इसी प्रकार हुआ है।

भाषा-बोली में भेद :– भाषा और बोली के अन्तर को इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं –

(क) भाषा का क्षेत्र बोली – क्षेत्र की अपेक्षा विस्त त होता है।

(ख) भाषा के प्रयोग करने वालों की संख्या तत्सम्बन्धित किसी भी बोली के प्रयोग करने वालों की संख्या से अधिक होती है।

(ग) भाषा के अन्तर्गत एक या एक से अधिक बोलियाँ हो सकती हैं; जबकि एक बोली में एक से अधिक भाषा नहीं हो सकती।

(घ) एक भाषा की दो बोलियों में पर्याप्त समानता होने से उच्चारण समता तथा बोधगम्यता बनी रहती है, जबकि दो भाषाओं में ऐसा होना आवश्यक नहीं है; यथा – बंगला भाषी व्यक्ति सामान्य रूप में तमिल भाषा समझ नहीं सकता, इसी प्रकार तमिल भाषी व्यक्ति के लिए बंगला भाषा समझना दुष्कर होता है।

(ङ) भाषा का रूप साहित्यिक तथा व्याकरण सम्मत होता है, जबकि बोली मात्र बोल-चाल में प्रयुक्त होती है। बोली का व्याकरण सम्मत होना आवश्यक नहीं है।

(च) भाषा का प्रयोग शिक्षा तथा शासन में होता है, जबकि बोली बोलचाल तक सीमित रूप में ही प्रयुक्त होती है।

(छ) भाषा में साहित्यिक रचना होती है, जबकि बोली में लोक-साहित्य, संस्कृति का जैसा सहज तथा निखरा रूप मिलता है, वैसा रूप भाषा में नहीं मिलता।

(ज) भाषा के साथ बौद्धिकता व्यायाम साहित्य को परिनिष्ठित रूप प्रदान करता है। बोली में सहजता तथा स्वाभाविकता से लोक-साहित्य का मनोरंजक रूप उभरता है।

5. मानक भाषा

(Standard Language)

सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि द ष्टिकोणों से उन्नति करने के लिए एक विशेष भाषा क्षेत्र की विभिन्न बोलियों में से किसी एक बोली को मानक रूप दे दिया जाता है। भाषा की अन्य बोलियाँ

भी इसी रूप को मानक या आदर्श रूप मानकर अपना लेती हैं। ऐसी भाषा की विभिन्न इकाइयों का स्वरूप तथा उसका व्याकरण निर्धारित कर दिया जाता है। ऐसी भाषा के प्रयोग पर शिक्षित वर्ग को गर्व होता है। कभी-कभी एक बोली को मानक भाषा का रूप देने पर उसके निकट की अन्य बोलियाँ प्रभावित होती हैं। खड़ी-बोली को मानक भाषा के रूप में स्वीकृति मिलने के बाद पूर्व की पूर्ण विकसित अवधी तथा ब्रज में रचना-प्रक्रिया बहुत अधिक मन्द हो गई। मानक भाषा का स्वरूप निर्धारित आवश्यक कर दिया जाता है, किन्तु विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले प्रयोग में भिन्नता अवश्यक दिखाई पड़ती हैं। इस पर बोलियों का भी प्रभाव मिल जाता है। यह प्रभाव सर्वाधिक रूप से उच्चारण में मिलता है। शब्द-प्रयोग तथा व्याकरणिक कोटियों में भी क्षेत्रीय भाषा का प्रभाव देख सकते हैं।

6. राष्ट्रीय भाषा

प्रत्येक राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा होती है, किन्तु राष्ट्रीय भाषाएँ एक या एक से अधिक हो सकती हैं। व्यावहारिक रूप में किसी देश के वे भाषाएँ जो साहित्यिक रचना हेतु मानक रूप में प्रयुक्त होती हैं और संविधान में मान्यता प्राप्त हों, उन्हें राष्ट्रीय भाषा कहेंगे। भारत राष्ट्र की राष्ट्रभाषा हिन्दी है और यहाँ विभिन्न प्रदेशों में प्रयुक्त बंगला, पंजाबी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाएँ भी हिंदी के साथ व्यावहारिक रूप में राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। राष्ट्रभाषा के विकास से सामान्यतः राष्ट्रीय भाषाओं का स्तर भी उन्नत होता है।

7. राष्ट्रभाषा

(National Language)

किसी देश या राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में व्यवहार के लिए प्रयुक्त होने वाली भाषा को राष्ट्र-भाषा कहते हैं। कोई भाषा मानक भाषा बनने के पश्चात् ही राष्ट्र-भाषा बन सकती है। राष्ट्रभाषा का पद उस ही भाषा को मिल पाता है, जिससे राष्ट्र के सर्वाधिक लोग परिचित हों तथा उसमें कार्य तथा भावाभिव्यक्ति कर सकते हों। देश के विभिन्न क्षेत्रों तथा प्रदेशों के विभिन्न भाषाभाषी लोग इस भाषा का प्रयोग व्यावहारिक रूप में सार्वजनिक कार्यों में करते हैं। हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा है। अहिन्दी भाषी (बंगाली, मराठी, गुजराती आदि) व्यक्ति भी अपनी-अपनी भाषाओं के साथ सार्वजनिक रूप में हिन्दी का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार राष्ट्रभाषा का सम्बन्ध पूरे राष्ट्र से होता है और देश की उन्नति राष्ट्रभाषा की उन्नति पर बहुत कुछ निर्भर होती है। देश का अधिकांश साहित्य राष्ट्र-भाषा में रचा जाता है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधने का सबल माध्यम है। पूरे देश को एकसूत्र में बाँधने वाली विशेषता के कारण इसे सम्पर्क भाषा भी कह सकते हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के क्षेत्रीय रूप मिलते हैं; यथा – बम्बईया हिंदी आदि।

8. राजभाषा

(Official Language)

जिस भाषा में प्रदेश या देश का राजकाज होता है, उसे राजभाषा कहते हैं। सामान्य देश की राष्ट्रभाषा ही राजभाषा होती है, क्योंकि जनसामान्य के व्यवहार से जुड़ी राष्ट्रभाषा होने पर इसका प्रयोग सरल हो जाता है। 14 सितम्बर, 1949 को हिन्दी संघ की राजभाषा घोषित की गई। इस प्रकार संवैधानिक रूप में हिंदी को यह स्थान प्राप्त हुआ। इस द ष्टि से हिन्दी प्रयोग की अभी पर्याप्त अपेक्षाएँ हैं। हिन्दी को राजभाषा का संवैधानिक रूप मिल तो गया है, किन्तु कार्य रूप अभी बहुत पीछे है। भारतीय संविधान और राजभाषा अधिनियम के प्रावधान के अनुसार इसके प्रयोग के मुख्य क्षेत्र हैं-शासन, विधान, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका।

9. अन्तरराष्ट्रीय भाषा

(International Language)

देश के बढ़ते कदम जब दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करते हैं और ऐसे में दो अथवा दो से अधिक देशों द्वारा प्रयुक्त भाव आदान-प्रदान की भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहते हैं। दो या दो से अधिक देशों में

व्यापार या द ष्टिकोण से ऐसी भाषा की आवश्यकता होती। वर्तमान समय में अंग्रेजी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का स्थान प्राप्त है। माना सोवियत संघ, चीन तथा जापान ऐसे देशों में अंग्रेजी को वह स्थान नहीं प्राप्त है, फिर भी अन्य देशों के सन्दर्भ में अंग्रेजी का प्रयोग अन्तरराष्ट्रीय भाषा के रूप में होता है। अंग्रेजी जो एक बोली से विकसित हुई है, आज विश्वभाषा नहीं तो अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अवश्य प्रयुक्त हो रही है। हिंदी का प्रयोग का प्रयोग भारतवर्ष के अतिरिक्त श्रीलंका, नेपाल, गयाना, ट्रिनीडाड, टुबैगो, सूरीनाम, मोरीशस, फिजी, कनाडा और अमेरिका में भी आकर्षक रूप में होता हैं। इस प्रकार हिंदी का अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ का भविष्य उज्जवल है।

10. **सम्पर्क भाषा**

भारतवर्ष के अधिकांश व्यक्ति हिन्दी समझते और इसका प्रयोग करते हैं। हिंदी भाषी क्षेत्रों में तो हिंदी का प्रयोग होता है, किन्तु अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी हिंदी का प्रभावशाली प्रयोग भावाभिव्यक्ति में सहयोगी होता है। जब बंगाल में पंजाबी भाषी प्रदेश का व्यक्ति पहुंचता है बंगाल भाषी को प्रजाबी नहीं समझ आती और पंजाबी भाषी को बंगला आती है, तो दोनों हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपना कर संवाद कर लेते हैं। इसी प्रकार दो विभिन्न भाषाओं के अन्तराल में हिंदी बात-चीत हेतु सेतु बनती है। हिंदी का संपर्क भाषा रूप देश की एकता का परम आधार है। देशवासियों को हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाना चाहिए।

इस प्रकार हिंदी का प्रयोग विविधता के साथ सामने आता है जो देश की एकता का सबल आधार है।

9.3 हिंदी की संवैधानिक स्थिति

'राजभाषा' का शब्दिक अर्थ है-राजा की भाषा अर्थात् शासक की भाषा। इस शब्द से राजा और भाषा के महत्त्व का ज्ञान होता है, किन्तु जनतांत्रिक शासन में 'राजा' शब्द का महत्त्व नहीं है। इस प्रकार राजभाषा का अर्थ है - राजकीय भाषा या राजकाज की भाषा। इसी आधार पर भारत सरकार ने 'राजभाषा आयोग' (Official Language Commission) निर्माण किया है। 14 सितम्बर, 1949 को हिंदी भारत संघ की राजभाषा बनी। राजभाषा के प्रयोग के चार मुख्य क्षेत्र हैं - शासन, विधान, न्यायपालिका और कार्यपालिका। स्वतंत्रता पूर्व इन चारों क्षेत्रों में अंग्रेजी का वर्चस्व था। इन्हीं चारों क्षेत्रों में हिंदी को प्रतिष्ठित करना ही राजभाषा हिंदी को महत्त्व देना है।

भारतवर्ष के संविधान की धारा 343 से 351 के विभिन्न अनुच्छेदों में राजभाषा का प्रावधान किया है। इनमें मुख्यतः चार अध्यायों में चर्चा की गई है संघ की भाषा; प्रादेशिक भाषा; उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय की भाषा; राजभाषा संबंधी विदेश नियम। धारा 343 में हिंदी को भारत संघ की राजभाषा और देवनागरी को उसकी लिपि के रूप में मान्यता दी गई है। हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में राष्ट्रीय आन्दोलनों में रही हिंदी-भूमिका का विशेष महत्त्व रहा है। देश के महापुरुषों, हिंदी-प्रमियों, नेताओं के साथ सामाजिक और साहित्यिक और साहित्यिक संस्थाओं की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है।

हिंदी : संघ की राजभाषा

अनुच्छेद् 343 : संविधान के अनुसार राजभाषा और लिपि देवनागरी होगी। यहाँ यह भी स्पष्ट किया गया है कि राजकीय कार्यो में नागरी का अन्तरराष्ट्रीय रूप ही होगा अर्थात् नागरी के मूल चिह्नों के स्थान पर अन्तर्राष्ट्र चिह प्रयुक्त होंगे।

इसी धारा को भाग दो में स्पष्ट किया गया है कि 15 वर्षों तक संघ के राजकाज में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता रहेगा, जहाँ पहले अंग्रेजी का प्रयोग होता था, परन्तु राष्ट्रपति चाहेंगे तो इसी कालावधि में अपने आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों में अंग्रेजी के साथ हिंदी प्रयोग प्राधिकृत कर सकेंगे।

इसी अनुच्छेद् में पन्द्रह वर्ष बाद अंग्रेजी भाषा और देवनागरी के प्रयोग पर विचार कर अनुबंधित करने का प्रावधान रखा गया।

अनुच्छेद 344 में मुख्यतः छः संदर्भों को रेखांकित किया गया है –

1. राष्ट्रपति द्वारा पाँच वर्षों की समाप्ति पर भारत की विभिन्न भाषाओं के सदस्यों के आधार पर एक आयोग गठित करेगा और राजभाषा के संबंध में कार्य-दिशा निर्धारित करेगा।
2. हिंदी के उत्तरोत्तर प्रयोग पर बल दिया जाएगा। देवनागरी के अंकों प्रयोग होगा। संघ से राज्यों के बीच पत्राचारकी भाषा और एक राज्य से दूसरे राज्य से पत्राचार की भाषा पर सिफारिश होगी।
3. आयोग के द्वारा औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति के साथ लोक सेवाओं में अहिंदी भाषा क्षेत्रों के न्यायपूर्ण औचित्य पर ध्यान रखेगा।
4. राजभाषा पर विचारार्थ तीस सदस्यों की एक समिति का गठन किया जाएगा जिसमें 20 लोक सभा और 10 राज्य सभा के अनुपातिक सदस्य एकल संक्रमणित मत द्वारा निर्वाचित होंगे।
5. समिति राजभाषा हिंदी और नागरी अंक के प्रयोग का परीक्षण कर राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करेंगी।
6. राष्ट्रपति के द्वारा आयोग के प्रतिवेदन पर विचार कर निर्देश जारी किया जाएगा।

अनुच्छेद् 345, 346 और 347 : इसमें विभिन्न राज्यों की प्रादेशिक भाषाओं के विषय में भी साथ-साथ विचार किया गया है।

अनुच्छेद् 345 : राज्य के विधान मण्डल द्वारा विधि के अनुसार राजकीय प्रयोजन के लिए उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा या हिंदी भाषा के प्रयोग पर विचार कर सकता है। इस संदर्भ में यह भी स्पष्ट किया गया कि जब तक किसी राज्य का विधान मंडल ऐसा प्रावधान नहीं करेगा तब तक अंग्रेजी में कार्य पूर्ववत् चलता रहेगा।

अनुच्छेद 346 : संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भाषा यदि दो राज्यों की सहमति पर आपस में पत्राचार के लिए उपयोगी समझते हैं, तो उचित ही होगा। यदि दो या दो से अधिक राज्य आपास में निर्णय लेकर राजभाषा हिंदी को संचार भाषा के रूप में अपनाते हैं तो उचित होगा।

अनुच्छेद् 347 : यदि किसी राज्य में जनसमुदाय द्वारा किसी भाषा को विस्त त अधिकार प्राप्त हो और राज्य उसे राजकीय कार्यो में प्रयोग के लिए मान्यता दे, और राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाए, तो उक्त भाषा का प्रयोग मान्य होगा।

अनुच्छेद 348 : इसमें उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों की भाषा पर विचार किया गया है। यहाँ यह प्रावधान है कि जब तक संसद विधि द्वारा उपबंध न करे, तब तक कार्य अंग्रेजी में ही होगा।

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्षेत्र रखे गए –

उच्चतम न्यायालय, प्रत्येक उच्च न्यायालय।

इसके लिए संसद के दानों सदनों से प्रस्ताव पारित होना चाहिए। अधिनियम संसद या राज्य विधान मण्डल से पारित किए जाएं और राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा स्वीकृति मिले। यह प्रस्ताव विधि के अधीन और अंग्रेजी में होंगे।

राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति की सम्मति से हिंदी भाषा या राज्य की किसी भाषा का प्रयोग संभव होगा, किन्तु उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय या आदेश पर लागू नहीं होगा।

अनुच्छेद् 349 : संविधान के प्रारंभिक 15 वर्षों की कालावधि तक संसद की किसी सदन से पारित राजभाषा संबंधित विधेयक या संशोधन बिना राष्ट्रपति मंजूरी के स्वीकृत नहीं होगा। यह विधेयक राजभाषा संबंधित तीस सदस्यीय आयोग की स्वीकृति के पश्चात् ही राष्ट्रपति विचार कर स्वीकृति प्रदान करेगा।

अनुच्छेद् 350 : इस अनुच्छेद में विशेष निर्देशों को व्यवस्थित किया गया है। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी समस्या को संघ और राज्य के पदाधिकारी को संबंधित मान्य भाषा में अभिवेदन कर सकेगा। इससे प्रत्येक व्यक्ति को अधिकृत भाषा में संघ या राज्य के अधिकारियों से पत्र-व्यवहार का अवसर दिया गया है।

अनुच्छेद् 351 : भारतीय संविधान की अष्टम सूची में स्थान प्राप्त भाषाओं को महत्त्व दिया गया है। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार से भारत की सामाजिक संस्कृति को अभिव्यक्ति मिलने का संकेत है। हिंदी भाषा में मुख्यतः संस्कृत शब्दावली के साथ अन्य भाषाओं के शब्दों से समद्ध करने का संकेत है।

राष्ट्रपति के आदेश

भारत संघ में राजभाषा के कार्यान्वयन के लिए राष्ट्रपति के द्वारा समय-समय पर आदेश जारी किए गए हैं। इनमें कुछ आदेश विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं –

1952 का आदेश : राष्ट्रपति ने संविधन के अनुच्छेद् 343 (2) के अधीन 27 मई, 1952 को एक आदेश जारी किया जिसमें संकेत था - ''राज्य के राज्यपाल, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति-अधिपत्रों में अंग्रेजी के साथ हिंदी और अंक नागरी लिपि के हों।''

राजभाषा आयोग की स्थापना 1955 में हुई। आयोग के तीस सदस्यों द्वारा राजभाषा संदर्भ में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया –

1. त्वरित गति से परिभाषिक शब्द-निर्माण हो।
2. 14 वर्ष तक प्रत्येक विद्यार्थी को हिंदी शिक्षा दी जाए।
3. माध्यमिक स्तर तक भारतीय विद्यार्थियों को हिंदी अनिवार्य हो।

इसमें से प्रथम सिफारिश मान ली गई। अखिल भारतीय और उच्चस्तरीय सेवाओं में अंग्रेजी जारी रखी गई। सन् 1965 तक अंग्रेजी को प्रमुख और हिंदी को गौण रूप में स्वीकृति मिली। 45 वर्ष से अधिक उम्र के कर्मचारियों को हिंदी-प्रशिक्षण की छूट दी गई।

1955 का आदेश : इस आदेश के अनुसार संघ के सरकारी कार्यों में अंग्रेजी के साथ हिंदी प्रयोग करने का निर्देश दिया गया। जनता से पत्र-व्यवहार, सरकारी रिपोर्ट का पत्रिकाओं और संसद में प्रस्तुत, जिन राज्यों ने हिंदी में अपनाया है , उनसे पत्र-व्यवहार, संधि और करार, अन्य देशों, दूतों उनके अन्तर्राष्ट्र संगठनों से पत्र-व्यवहार, राजनयिक अधिकारियों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में भारत के प्रतिनिधियों द्वारा जारी औपचारिक विवरण।

1960 का आदेश : राष्ट्रपति द्वारा राजभाषा आयोग के प्रतिवेदन पर विचार कर 1960 में निम्न निर्देश जारी किया गया था –

1. वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माणार्थ शिक्षा मंत्रालय के अधीन एक आयोग स्थापित किया जाए।
2. शिक्षा मंत्रालय, सांविधिक नियमों आदि के मैनुअलों का एकरूपता निर्धारित कर अनुवाद कराया जाए।
3. मानक विधि शब्दकोश, हिन्दी में विधि के अधिनियम और विधि-शब्दावली निर्माण, कानून विशेषज्ञों का एक आयोग बनाए।
4. त तीय श्रेणी के कर्मचारियों को छोड़, 45 वर्ष तक की उम्र वाले कर्मचारियों को हिंदी प्रशिक्षण अनिवार्य। ग ह मंत्रालय हिंदी आशुलिपिक, हिंदी टंकण प्रशिक्षण योजना बनाए।

1963 का राजभाषा अधिनियम : 26 जनवरी, 1965 को पुनः अगामी 15 वर्षों तक अंग्रजी को पूर्ववत् रखने का प्रावधान बना। हिंदी-अनुवाद की व्यवस्था पर जोर दिया गया। उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में अंग्रेजी के साथ हिंदी या अन्य राजभाषा के वैकल्पिक प्रयोग की छूट दी गई।

इससे अंग्रेजी का वर्चस्व बना रह गया। देश को एकता के सूत्र में बाँधने वाली हिंदी को वह स्थान नहीं मिल सका जो अपेक्षा थी।

1968 का संकल्प : सन् 1968 में संविधान के राजभाषा अधिनियम को ध्यान में रखकर संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष संकल्प पारित किया गया। इसमें निम्नलिखित विचार रखे गए –

1. हिंदी प्रचार-प्रसार का प्रयत्न किया जाएगा और प्रतिवर्ष लेखा-जोखा संसद पटल पर रखा जाएगा।
2. आठवीं सूची की भाषाओं के सामूहिक विकास पर राज्य सरकारों से परापर्श और योजना-निर्धारण।
3. त्रिभाषा-सूत्र पालन करना।
4. संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में अंग्रेजी के साथ हिंदी और आठवीं सूची की भाषाओं को अपनाना।
5. कार्यालयों से जारी होने वाले सभी दस्तावेज हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हों। संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत किए जाने वाले सरकारी पत्र, आदि अनिवार्य रूप से हिंदी रूप से हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हों।

राजभाषा हिंदी कार्यान्वयन के लिए देश को भाषिक धरातल पर तीन भागों में बांटा गया –

'क' क्षेत्र - बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और दिल्ली।

'ख' क्षेत्र - गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, अंदमान निकोबार द्वीप-समूह और केन्द्रशासित क्षेत्र।

'ग' क्षेत्र - भारत के अन्य क्षेत्र - बंगाल, उड़ीसा, आसाम, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल आदि।

इस अधिनियम के अनुसार केन्द्र सरकार द्वारा 'क' क्षेत्र से पत्र व्यवहार हिंदी में ही होगा। यदि अंग्रेजी में पत्र भेजा गया, तो उसके साथ हिंदी अनुवाद अवश्य होगा। 'ख' क्षेत्र से पत्र - व्यवहार हिंदी के साथ अंग्रेजी में भी होगा। 'ग' क्षेत्र से पत्र - व्यवहार अंग्रेजी में हो सकता है।

भारत सरकार द्वारा राजभाषा हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए सतत् प्रयास किए जा रहे हैं। सभी मंत्रालयों के साथ हिंदी सलाहकार समितियाँ बनाई गई हैं। इन समितियों की बैठक भी त्रिमासिक होने का प्रावधान है। बैठकों में राजभाषा प्रयोग के लेखा-जोखा पर विचार किया जाता है।

वर्तमान समय में राजभाषा हिंदी के आकर्षक रूप से प्रयोग में देश की एकता और अखण्डता निहित है। राजकाज में राजभाषा हिंदी का निराशाजनक प्रयोग अत्यन्त चिंता का विषय है। देश के उच्च अधिकारी और दूसरे देश में जाने वाले राजनयिक ही नहीं, अधिकारी भी हिंदी के प्रयोग को राष्ट्रीय कार्य समझें तो हिंदी को अनुकूल दिशा मिलेगी। विभिन्न कार्यालयों में द्विभाषी-अंग्रेजी-हिंदी कंप्यूटरों की अनुकूल संख्या होने की संभावना प्रसन्नता का विषय है। किन्तु उनका हिंदी भाषा के संदर्भ में उपयोगी हो, यह अपेक्षा है। निश्चय ही राजभाषा के सम्मानजनक प्रयोग होने पर देश की एकता, अखण्डता और उन्नति निश्चित होगी।

अध्याय - 10
भाषा और लिपि

10.1 भाषा और लिपि के घटकों का पारस्परिक संवाद

लिपि का उद्‌भव भाषा के बहुत बाद हुआ है। भाषा का अर्थ मुख्यतः बोलने से लिया जाता है। भाषा तथा लिपि दोनों ही भावाभिव्यक्ति के साधन हैं। दोनों में ही स्वप्न संकेतों का प्रयोग किया जाता है। दोनों ही मूल रूप से स्वरों पर आधारित हैं। भाषा और लिपि, दोनों ही मानव-उन्नति में परम सहयोगी है। दोनों ही प्रयास करके सीखी जाती है अर्थात् भाषा तथा लिपिबद्ध प्रयत्न-आधारित अर्जित सम्पति है। भाषा और लिपि का अध्ययन करने से उनके घटकों में निम्नलिखित पारस्परिक संवाद सामने आते हैं –

संकेत व्यवस्था

भाषा उच्चारित ध्वनि-संकेतों की व्यवस्था पर आधारित है, यथा–कमल शब्द में 'क', 'म' तथा 'ल' का उच्चारण कैसे होता है. इस पर ही ध्यान दिया जाता है। Knife, But तथा Put के उच्चरित ध्वनि संकेतों का भी ध्यान रखना पड़ता है। लिपि में लिखित स्वर चिह्नों की व्यवस्था पर ध्यान देते हैं, यथा – म + इ + ल् + अ + न् + अ आधारित शब्द का उच्चारण करेगा तो 'मिलन' रूप में लिखा जाएगा। अंग्रेजी के कर्नल शब्द के लिए Colonel लिपि-चिह्नों का ध्यान रखना पड़ता है।

शक्ति

भाषा के एक रूप वाचिक या मौखिक में वक्ता और श्रोता का होना अनिवार्य है। ऐसी भाषा में वक्ता और श्रोता को एक ही स्थान पर और एक ही समय में होना अनिवार्य है। यत्र–आधारित दूरभाष ऐसी भाषा में यंत्र का माध्यम आवश्यक है। लिपि में समय तथा स्थान की सीमा पर करने की शक्ति होती है, अर्थात् यदि कोई बात आज लिपिबद्ध कर व्यवस्थित रूप में रख दी जाए, तो वर्षों बाद भी पढ़ी जा सकती है। एक स्थान पर लिपिबद्ध की गई बात देश-विदेश के किसी अन्य स्थान पर पहुंचाई जा सकती है। इसी का आधार पाकर भाषा का लिखित रूप सामने आया है।

इन्द्रिय सम्बन्ध

भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कर्णेन्द्रिया मुख्य आधार है, जबकि लिपि के लिए मुख्य आधार इन्द्रिय-चक्षु हैं।

समष्टि रूप

भाषा में विभिन्न ध्वनियों की व्यवस्था है, इससे यह ध्वनियों का समष्टि रूप है। लिपि में विभिन्न लिपि चिन्हों की व्यवस्था होती है, अतः यह लेखिम चिन्हों का समष्टि रूप है।

योग तत्व

भाषा के माध्यम से भावाभिव्यक्ति हेतु वाक्‌यंत्रों का संयुक्त योगदान है, यथा–क वर्ग की व्यंजन ध्वनियां जीभ

के पार्श्व भाग से उच्चारित होती हैं। इसमें श्वास नली के कंठ भाग का विशेष योगदान होता है। इसलिए इसे कण्ठ्य ध्वनि भी कहा जाता है। त वर्ग की व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण दांत तथा जीभ के सहयोग से होता है जबकि श्वास नली की भी अपनी भूमिका होती है। लिपि में लेखनी, स्याही, रंग, कागज, छेनी, चित्रों आदि में कुछ एक का संयुक्त योगदान होता है।

अभिव्यक्ति आधार

भाषा में भावाभिक्ति हेतु स्वनों का उपयोग किया जाता है। स्वन के अभाव में भाषा का अस्तित्व संदिग्ध हो जाएगा। लिपि में भावाभिव्यक्ति के लिए लिपि–चिन्हों का उपयोग किया जाता है।

लिपि-भाषा संबंध

किसी भाषा के लिए किसी लिपी–विशेष का अनिवार्य संबंध नहीं होता है। हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी या नागरी है, किंतु इसे रोमन लिपि में भी लिख सकते हैं; यथा–

लिपि की समस्याएँ– Lipi Ki samasayan अंग्रेजी भाषा की लिपि रोमन है, किंतु इसे नागरी लिपि में भी अंकित कर सकते हैं; यथा –

I am going > आई ऐम गोइंग।

विकास क्रम

भाषा प्रारंभ में संकेताधार पर शुरू हुई और धीरे-धीरे स्वनात्मक स्थिति में आ गई। सांकेतिक भाषा का रूप आज भी मिलता है; यथा–हरी झंडी या बत्ती का अर्थ–आगे बढ़ना या मार्ग साफ है, तो लाल झंडी या लाल बत्ती का अर्थ–रूकिए या मार्ग अवरूद्ध है। लिपि का प्राचनीतमा रूप चित्रात्मक था; यथा–सूर्य के भाव को प्रकट करने के लिए एक गोला और उसके चारों ओर निकलती रेखाएँ (किरणें) बनाई जाती हैं। विकास–क्रम में संकेत लिपि का आविष्कार हुआ; यथा–पर्वत को स्पष्ट करने के लिए खड़ी रेखाओं का प्रयोग। लिपि के दोनों ही स्तर भावात्मक थे। वर्तमान लिपि, चिह्नों पर आधारित है। इस प्रकार भाष तथा लिपि का स्वनों से अटूट संबंध है।

भाव-संबंध

भाव तथा भाषा का सीधा संबंध है, किंतु लिपि तथा भाव का संबंध भाषा के माध्यम से ही होता है। यह तथ्य इससे भी स्पष्ट होता है कि भाषा के अभाव में लिपि का अस्तित्त्व भी असंभव हो जाएगा।

व्यवस्था

स्वनों की व्यवस्था से भाषा का रूप निर्धारित होता है और भाषा की शुद्धता, स्पष्टता, स्थिरता आदि लिपि से ही संभव होती है। भाषा में यदि लिपि–व्यवस्था न हो तो स्वनों का उच्चारण इच्छानुसार, मनमाने ढंग से होगा और भाषा अव्यवस्थित हो जाएगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा तथा लिपि में अत्यंत निकट का संबंध है। लिपि के आधार से ही लिखित भाषा का रूप सामने आया है। यह ही भाषा का सर्वोत्तम रूप है क्योंकि लिखित भाषा में स्थान और समय पार करने की शक्ति होती है।

10.2 लिप्यंकन (स्वनिमिक और मर्षस्वनिमिक)

लिपि के माध्यम से भाषा को स्थायित्व प्राप्त होता है। यह तथ्य स्पष्ट है कि लिपि के उद्‌भव से पूर्व भाषा का उद्‌भव हुआ है। भाषा के लिए लिपि का होना अनिवार्य नहीं है, जबकि लिपि के लिए भाषा का होना अनिवार्य है। संसार की कुछ भाषाएँ लिखित हैं, तो कुछ अलिखित। सामान्य व्यक्ति द्वारा किसी भाषा को लिपिबद्ध

करना लेखन है। जब कोई भाषिक या भाषा-वैज्ञानिक किसी भाषा के विश्लेषण हेतु किसी विशेष लिपि का विशेष द ष्टिकोण से प्रयोग करता है, तो उसे लिप्यंकन की संज्ञा दी जाती है। लिप्यंकन के लिए अंकन शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। लिप्यंकन के तीन भेद किए जा सकते है –

1. स्वनिक लिप्यंकन या स्वानांक
2. स्वनिमिक लिप्यंकन या स्वनिमांकन
3. मर्षस्वनिमिक लिप्यंकन या मर्षस्वनिमांकन

स्वनिक लिप्यंकन

इसके लिए स्वनांकन शब्द का भी प्रयोग किया जाता है इस लिप्यंकन में प्रत्येक श्रुत स्वन (ध्वनि) का लिपिबद्ध किया जाता है। इस लिप्यंकन के अंतर्गत यदि दो स्वनों में सूक्ष्म भिन्नता हो तब भी उन्हें स्वतंत्र रूप में अलग-अलग अंकित करते हैं। विश्व की सभी भाषाओं के सभी स्वनों को स्पष्ट रूप में लिपिबद्ध करने के लिए स्वनिक लिप्यंकन का प्रथम प्रयास 1888 में हेनरी स्वीट, डैनियल जोन्स, एलिस और पासी ने किया था। इस वर्णमाला को International Phonetic Association (I.P.A.) अंतर्राष्ट्रीय स्वनिक लिपिचिह नाम दिया गया है। इन भाषा-वैज्ञानिकों के द्वारा इस (I.P.A.) में वह शक्ति भरने का प्रयास किया गया कि किसी भी भाषा के स्वनों को स्पष्ट रूप से लिपिबद्ध किया जा सके। इस लिप्यंकन में समय-समय पर सुधार होता रहा है।

विशेषताएँ

1. किन्हीं दो स्वनों के तनिक भी अंतर को लिपिबद्ध करने के कारण इसे हम सूक्ष्म लिप्यंकन भी कह सकते हैं। भाषा-वैज्ञानिक प्रत्येक स्वन की अनय स्वनों से सूक्ष्म भिन्नता का ज्ञान प्राप्त कर इस लिप्यंकन में लिपिबद्ध करने का प्रयत्न करता है। सामान्य लेखन में प्रयुक्त होने वाले लिपि-चिह्नों के अतिरिक्त अन्य स्वन-चिह्नों की परिकल्पना इसमें की जाती है; यथा–

   ए, ऐ के अतिरिक्त ऍ

   ऍ = अर्द्धविव त अग्र ह्रस्व स्वर

   अंग्रेजी का College (कॉलेज) शुद्ध रूप > कॉलेज

   अ, आ के अतिरिक्त ऑ

   ऑ = अर्द्धविव त पश्च दीर्घ। यह स्वर हिंदी के प्रधान स्वर ओ से कुछ नीचा है। अंग्रेजी में इस स्वन का प्रयोग होता है। अंग्रेजी के इस स्वन को हिन्दी में भी लिपिबद्ध किया जाने लगा है; यथा –

2. उच्चारणनुसार लिप्यंकन-इस लिप्यंकन के माध्यम से सूक्ष्मतम भिन्नता वाले स्वनों को भी स्वतंत्र रूप से लिपिबद्ध किया जा सकता है। इस लिप्यंकन के अनुच्चारित ध्वनि-चिह्नों का प्रयोग स्वतः समाप्त हो जाता है। रोमन लिपि पर आधारित अंग्रेजी लेखन में ऐसे अनुच्चारित चिह्नों का बहुत प्रयोग मिलता है; यथा Knife (नाइक) > Nife Colonel (कर्नल) > Karnal.

   स्वनिक लिप्यंकन से भाषा-लेखन तथा उच्चारण दोनों ही सरल तथा भाषा-वैज्ञानिक हो जाता है।

3. सामान्य लेखन में प्रयुक्त होने वाले लिपि-चिह्नों को उनके शब्दों में प्रयुक्त उच्चारण के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप दिए जाते है; यथा –

   'ल' वर्ण का प्रयोग-लड़का तथा महल दोनों शब्दों में लकार ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न हैं, अतः इनके लिए अलग-अलग स्वन चिह्नों की व्यवस्था होती है।

4. जब एक भाषा के स्वनों का उच्चारण दूसरे भाषा-भाषी करें तथा उसमें भिन्नता हो, तो इस लिप्यांकन में उनके लिए भिन्न-भिन्न स्वन संकेतों की व्यवस्था होती है; यथा –

ज वर्ण का प्रयोग-जकार से निर्मित शब्द 'जल' हिंदी-भाषी सामान्य रूप से प्रयोग करता है, किंतु बंगाली इसी शब्द का उच्चारण भिन्न 'जॅल' रूप में करता है, अतः दोनों स्वनों के लिए भिन्न चिह्न निर्धारित किए जाते हैं।

इस लिप्यंकन से भाषा का ऐतिहासिक पक्ष अधिक सरलता से अध्ययन किया जा सकता है, क्योंकि किसी भी समय से लिप्यांकन में मात्र उन्हीं स्वन-चिह्नों को प्रयुक्त किया जाता है, जो उच्चारित होते हैं। इस प्रकार दो काल में प्रयुक्त स्वन-चिह्नों के आधार पर उच्चारण के ऐतिहासिक तथ्यों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता है।

5. इस लिप्यांकन हेतु किसी भाषा की किसी भी प्रकार की व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि इसमें वैसा ही लिखना होता है।

   दोष-व्यक्ति तथा भाषा-स्तर पर स्वनों की भिन्नता के अति विस्तार होने के कारण एकरूपता लाना असंभव-सा है।

   सामान्य व्यक्ति के द्वारा इतने सूक्ष्म स्वन-चिह्नों को याद कर पाना असंभव है। इस प्रकार सामान्य व्यक्तियों के लिए इस लिप्यंकन की कोई उपयोगिता नहीं है।

   प्रत्येक भाषा-वैज्ञानिक स्वन के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप को लिपिबद्ध करने का प्रयत्न करता है। इस प्रतिस्पर्धा से जहाँ लिपि-संकेतों की संख्या बढ़ती रहती है, वहीं एकरूपता की संभावना कम हो जाती है।

स्वनिमिक लिप्यंकन

इसे स्वानिमांकन भी कहते हैं। इस लिप्यांकन में प्रत्येक स्वनिम को अंकित किया जाता है। किसी भाषा में मानव द्वारा उच्चारित ध्वनि-विभेदों को जिन आवर्ती अर्थ-विभेदक ध्वन्यात्मक इकाइयों में संगठित करते हुए सीमित रूप में व्यवस्थित किया जाता है, उन्हें स्वनिम कहते हैं।

प्रत्येक भाषा में सभी एकाधिक उपस्वनों को स्वनिमों की एक सीमित संख्या में व्यवस्थित किया जाता है। स्वनिमों की यह व्यवस्था स्वर तथा व्यंजन दोनों में की जाती है। एक स्वनिम में व्यवस्थित किए जाने वाले उपस्वन कम से कम कुछ एक पर्यावरणों में परस्पर व्यतिरेकी होते हैं। इन सभी उपस्वनों अर्थात् स्वनिम के लिए मात्र एक लिपि-संकेत का प्रयोग किया जाता है; यथा – तीलन स्वनिमों से बने हिंदी के एक शब्द / कमल / में उनके स्थान व्यावर्तक रूप की किसी ध्वनरूात्मक इकाई को रख देने से तीनों पर व्यतिरेक स्पष्ट होता है - (कमल : दकन / कमल : कनक)।

यहाँ कमल, दकन तथा कनक में प्रयुक्त क ध्वनियाँ/क/स्वनिम के अंतर्गत आती हैं। हिंदी के मन, मान, मिलन, मीन, मूद, मोम की 'न' ध्वनियाँ सूक्ष्म भिन्नता होते हुए भी एक स्वनिम 'म' सुनाई पड़ता है।

विशेषताएँ

1. स्वनिम में प्रभेदक (Distinctive) गुण होता है अर्थात् किसी भाषा-विशेष के स्वनिमों में उस भाषा की अर्थ भेदक शक्ति होती है, यथा–

   हिंदी के 'काम' और 'नाम' शब्दों में अर्थ का अंतर 'क' तथा 'न' के कारण है। ये 'क' 'न' स्वनिम हैं, जिनमें अर्थभेदक क्षमता है।

2. स्वनिम का अस्तित्व मानसिक होता है, क्योंकि उपस्वनों के आधार पर स्वनिमों की स्थापना होती है।
3. यदि उपस्वनो को व्यक्ति-विशेष के रूप में मानें, तो स्वनिम को तत्संबंधित जाति-विशेष''।
4. प्रत्येक भाषा के सभी स्वनिम आपस में वितरण की द ष्टि से व्यतिरेक की होते हैं अर्थात् उनमें स्पष्ट अर्थ-भिन्नता होती है।

5. प्रत्येक भाषा के सभी स्वनिम आपस में ध्वन्यात्मक द ष्टि से भी भिन्न होते हैं : यथा-मगर, गमन और मग शब्दों में 'ग' स्वनिम है। रतन, चरण और अपर शब्दों में 'र' स्वनिग है। 'ग' तथा 'र' स्वनिम विभिन्न शब्दों में समान रूप में उच्चारित होते हैं, तो दोनों स्वनिमों का आपस में पूर्ण भिन्न उच्चारण है।
6. सामारू लेखन में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, इसलिए स्वनिम को भाषा की महत्त्वपूर्ण इकाई मानते हैं।
7. स्वनिम के किसी अन्य स्वनिम या उपस्वनिम से मिलने पर भी उसका महत्त्व किसी न किसी रूप में स्थिर रहा है; यथा-'कर्म' शब्द में 'र' और 'म' स्वनिम आपस में मिलाकर प्रयुक्त हुए हैं, तब भी दोनों की भेदक क्षमता किसी न किसी रूप में विद्यमान है।
8. प्रत्येक भाषा के अपने स्वनिम होते हैं जिनका प्रयोग सामान्य रूप में दूसरी भाषा के लिए नहीं होता है।
9. प्रत्येक भाषा के स्वनिमों की संख्या भी निश्चित और भिन्न होती है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भाषा-लेखन हेतु स्वनिमिक लेखन सर्वश्रेष्ठ है।

मर्षस्वनिमिक लिप्यंकन

इसके लिए मर्षस्वनिमांकन शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। भावाभिव्यक्ति ही भाषा का उद्देश्य है, अतः भाषा में अर्थ प्रकट करने वाली लघुत्तम इकाई का विशेष महत्त्व होता है। अर्थ प्रकट करने वाले लघुत्तम स्वनिम समूह को मर्ष कहते हैं; यथा-सफलता एक शब्द है, जो कई स्वनों के आधार पर निर्मित है। इस शब्द के दो अर्थवान खंड किए जा सकते हैं - सुंदरता = सुंदर + ता; इस प्रकार 'सुंदर' और 'ता' दो मर्ष है।

जब दो या दो से अधिक मर्ष एक-दूसरे के साथ संयुक्त रूप में अंकित किए जाते हैं, तो उसे मर्षस्वनिमिक लिप्यंकन की संज्ञा दी जाती है। ऐसे संयुक्त मर्ष के रूप में परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन सर्वप्रथम उच्चारण में होता है। कुछ परिवर्तन तो लिखित भाषा में अपना लिए जाते हैं, किंतु कुछ परिवर्तन केवल उच्चारित भाषा तक ही सीमित रहते हैं। मर्षस्वनिमिक लिप्यंकन में विशेष परिवेश के प्रभाव से होने वाले स्वनिमिक परिवर्तनों पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

विशेषताएँ

1. इस लिप्यंकन में दो रूपियों के संयोजन से जो परिवर्तन होता है, उसकी उपेक्षा कर दी जाती है; यथा-'डाग्डर साब' या 'डाक्साब > 'डॉक्टर साहब' 'चीड्डाल' > 'चीर डाला' 'दूद्दों' > 'दूध दो' ही लिखा जाएगा।
2. विशेष परिवेश के प्रभाव के कारण उच्चारित रूपिमों में परिवर्तन हो जाता है, किंतु इन परिवर्तनों की भी उपेक्षा की जाती है; यथा - 'लिखति' > 'लिखन्ती' > लिख्यति' 'राजिन्द्र' > राजेन्द्र ही लिखा जाएगा।
3. दो रूपियों के संयोजन का बहुप्रचलित प्रयोग जो अब विशिष्ट अर्थ प्राप्त कर चुका है, का भी परिवर्तन उपक्षित कर लिप्यांकन किया जाता है, यथा - 'घुद्दौड़' > 'घुड़दौड़', 'चौब्बारा' > 'चौबारा'।
4. मानक भाषा के उच्चारण में भी स्वनिम-परिवर्तन स्पष्ट हो जाता है, किंतु मर्षस्वनिमिक लिप्यंकन में इसकी उपेक्षा की जाती है और उसका शुद्ध रूप लिखा जाता है; यथा - 'सुन्दरता' > 'सुन्दरता', 'नई' > 'नहीं।
5. प्रत्येक भाषा में मर्षस्वनिमिक लिप्यांकन की अपनी अलग व्यवस्था होती है। इस वैविध्य के कारण सभी भाषाओं के लिए एक मर्षस्वनिमिक लिप्यंकन व्यवस्था संभव नहीं है।
6. किसी भाषा के मर्षस्वनिमिक लिप्यंकन के लिए उस भाषा की व्यवस्था का पूर्ण ज्ञान अनिवार्य होता है। इस ज्ञान के अभाव में मर्षस्वनिमिक लिप्यंकन संभव नहीं है। ऐसी व्यवस्था पर लिप्यंकन होने के कारण इसे व्यवस्थात्मक लिप्यंकन भी कह सकते हैं।

7. इस लिप्यंकन में शब्द के उच्चारण और क्रम को ध्यान दिए बिना उस शब्द की स्वनिम व्यवस्था पर ही ध्यान दिया जाता है; यथा-'सुरेन्द्र' शबद यदि 'सुरिन्दर' रूप से उच्चारित हो तो भी मर्षस्वनिमिक लेखन में 'सुरेन्द्र' ही लिखा जाएगा।

8. इस लेखन से भाषा में क्षेत्रीयता और व्यक्ति-विशेष का प्रभाव कम होने से एकरूपता होने की संभावना अधिक हो जाती है, अन्यथा एक शब्द के अनेक रूप प्रयुक्त होंगे; यथा-महेन्द्र शब्द के लिए महिन्दर, महेन्दर, मोहिन्दर आदि उच्चारित अन्य रूपों के भी प्रयोग मिलते हैं किंतु केवल महेन्द्र लिखा जाएगा मर्षस्वनिमिक लिप्यंकन भाषा को सुद ढ़ व्यवस्थित आधार प्रदान करता है।

10.3 देवनागरी : नामकरण

नागरी लिपि के आठवीं नौवी शताब्दी के रूप को 'प्राचीन नागरी' नाम दिया जाता था। इस लिपि को नागरी के अतिरिक्त 'देवनागरी' भी कहते हैं। दक्षिणी भारत के विजय नगर के राजाओं के दान-पात्रों पर लिखी हुई लिपि का नमा 'नंदिनागरी' दिया गया है।

वर्तमान समय में इसे देवनागरी और कहीं-कहीं पर नागरी नाम से संबोधित किया जाता है। इस लिपि के नामकरण के निम्नलिखित मत सामने आते हैं।

1. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के एक मतानुसार मध्ययुग में स्थापत्य कला की एक शैली थी-नागर। इसमें सभी चिह्न किसी न किसी रूप में चतुर्भुज से मिलते जुलते होते हैं। इस प्रकार के प, म, ग भ, झ आदि चिह्नों की शैली विशेष 'नागर' आधार पर इसे नागरी नाम दिया गया है।

2. डॉ. वर्मा के द्वितीय मतानुसार प्राचीन समय में उत्तर भारत की विभिन्न राजधानियों में 'नगर' किसी प्रसिद्ध राजधानी का नाम रहा होगा और इसी राजधारी के आधार पर इस लिपि का नाम 'नागरी' पड़ा है।

   डॉ. वर्मा जी का प्रथम मत जहाँ कुछ ही चिह्नों पर आधारित है तो दूसरा मत पूर्ण काल्पनिक होने से स्वीकार्य नहीं है।

3. कुछ विद्वानों की मान्यता है कि प्राचीनकाल में काशी को 'देव नगर' नाम से जाना जाता था। इस नगर में इस लिपि के उद्‌भव होने से इसे देवनागरी कहा गया है।

   यह मत तर्कसंगत नहीं लगता, क्योंकि काशी के निकट से प्राप्त प्रमाणों से प्राचीन प्रमाण अन्यत्र से मिले हैं। भारत के विभिन्न स्थानों से इस लिपि के प्रयोग के प्रमाण मिलने से यह मत भी वैज्ञानिक नहीं सिद्ध होता है।

4. विद्वानों के एक वर्ग का मत है कि शिक्षा का केंद्र 'नगर' रहा है। इसलिए लिपि का उद्‌भव नगर में हुआ। 'नगर' में उद्‌भव होने के कारण इसका नाम 'नागरी' लिपि पड़ा है।

   इस मत को भी वैज्ञानिक नहीं मान सकते हैं क्योंकि प्राचीनकाल में, भारत वर्ष में गुरूकुलीय शिक्षा का प्रचलन था, जिसका केंद्र प्रायः नगर से दूर वनस्थली में होता था। नगरों में शिक्षा केंद्र होने से भी इसे आधार नहीं बना सकते हैं।

5. संस्कृत भाषा को 'देववाणी' भी कहते हैं। संस्कृत भी नागरी में लिखी जाती है। इसलिए नागरी में 'देव' जोड़ कर 'देवनागरी नाम किया गया है।

6. कुछ भाषाविद् बुद्ध के 'ललित विस्तर' में आए नाम 'नागलिपि, से ही संबंधित बतलाते हुए नागरी नामकरण स्वीकार करते हैं।

   प्रमाण के अभाव में इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

7. विद्वानों के एक वर्ग का मत है कि बिहार में स्थित पटना का नाम कुछ समय पूर्व पाटलीपुत्र और प्राचीन समय

में 'नगर' चंद्रगुप्त को 'देव' नाम से पुकारा जाता था। गुप्तकाल में पटना में इस लिपि के प्रचलन के आधार पर चंद्रगुप्त नाम 'देव' और पटना नाम 'नगर' के संयुक्त देवनगर से देवनागरी नाम बताया गया है।

प्राचीनकाल में नागरी के प्रयोग का केंद्र पटना ही रहा हो, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है। इससे नामकरण में कुछ आधार लगता है, किंतु वैज्ञानिकता नहीं सिद्ध होती है।

8. कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस लिपि का प्रारंभिक प्रयोग गुजरात के नागर ब्राह्मण द्वारा किया गया है, जिनके नाम-आधार पर नागरी नाम दिया गया है।

   कल्पना आधार पर नाम विश्लेषण वैज्ञानिक नहीं है।

9. कुछ विद्वानों द्वारा इसे 'हिंदी लिपि' नाम दिया जाता है। यह नाम पूर्ण भ्रामक है, क्योंकि नागरी मात्र हिंदी की ही लिपि नहीं है वरन् संस्कृत, मराठी और नेपाली आदि भाषाओं की लिपि है। हिंदी भाषा और देवनागरी का पारस्परिक संबंध है, किंतु दोनों एक नहीं है। यह नाम पूर्ण अवैज्ञानिक है।

10. श्री आर. शाम शासी के मतानुसार भारतवर्ष धर्मप्रधान देश है। भारत में जब मूर्तिकला और चित्रकला का विकास नहीं हुआ था, तब यहाँ विभिन्न चिन्हों के आधार पर विभिन्न देवी-देवताओं का ध्यान किया जाता रहा है। ऐसे में गोले, त्रिभुज, चतुर्भूज आदि विभिन्न चिन्हों का उपयोग किया जाता था। देवों के इन प्रतीक समूह को एकत्र कर देने पर 'देवनगर' की संज्ञा दी जाती थी। इसी आधार पर विकसित लिपि का नाम 'देवनागरी' रखा गया है।

11. आचार्य विनोबा भावे ने नागरी के लिए 'लोक नागरी' नाम दिया है। आचार्य ने इस लिपि को विशेष महत्त्व देने के लिए यह नाम दिया है। उनकी मान्यता रही है, यह लिपि किसी जाति किसी जाति, संप्रदाय वर्ग या धर्म-विशेष की नहीं वरन समस्त भारतीयों की लिपि है। उन्होंने इस राष्ट्र लिपि के रूप में स्वीकार कर कहा था कि विभिन्न भाषा भाषियों को अपनी लिपि के साथ नागरी लिपि का भी प्रयोग करना चाहिए। आचार्य विनोबा भावे का तर्क लगता है कि वर्तमान समय में देश के विभिन्न क्षेत्रों, धार्मिकों, प्रांतवासियों आदि के द्वारा यदि यह लिपि अपना ली जाए तो संपर्क में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण हो जाएगी। यह नाम तर्क-संगत है, किंतु इसे अपनाया नहीं गया।

    मेरे विचार से भाषा-विकास में मानव और देश की उन्नति निहित है। लिपि को पाकर भाषा में स्थायित्व विकसित होता है। भारतीय परिवेश में सुसभ्य अनुकूल विचार वाले व्यक्ति को नागर कहते हैं। भाषा के सुंदर-अनुकूल प्रयोक्ता और उसे स्थायित्व प्रदान करने से प्रयत्नशील 'नागर' (सुसभ्य व्यक्ति) के आधार पर इसका नाम 'नागरी' रखा गया। संस्कृत को 'देव भाषा' कहते हैं। संस्कृत की भी लिपि नागरी है। इसलिए इसे 'देवनागरी' नाम भी दिया गया है।

10.4 नागरी लिपि का विकास

भाषा का प्रारंभिक रूप संकेत भाषा है, तो लिपि का प्रारंभिक रूप चित्रात्मक रहा है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर भारत की प्राचीनतम लिपि सिंध घाटी से प्राप्त लिपि है। सिंध क्षेत्र के मोहनजोदड़ों और पाकिस्तान के हड़प्पा से मिले सिक्कों में प्राचीन लिपि के संकेत मिलते हैं। इन लिपि-चिह्नों के विकास का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है।

ब्राह्मी भारतीय की प्राचीनतम लिपि है। इसका प्राप्त प्राचीनतम रूप ई. पू. 500वीं शताब्दी का है। इसका प्राचीनतम रूप उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के पिपरावा के स्तूप में मिलता है। ब्राह्मी लिपि का प्रयोग ई. पू. 500वीं शताब्दी से तीसरी शताब्दी तक होता रहा है। इसके पश्चात् गुप्त लिपि का उद्‌भव हुआ। गुप्त लिपि 200 वर्षों तक प्रयुक्त होने के पश्चात् कुटिल रूप का प्रयोग 8वीं शताब्दी तक होता रहा है। नौंवी शताब्दी में प्राचीन देवनागरी का रूप सामने आया है।

भारत के अनेक लिपियाँ प्राचीन नागरी लिपि से विकसित हुई हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए प्राचीन नागरी को दो भागों में विभक्त कर अध्ययन किया जा सकता है।

प्राचीन नागरी

पूर्वी भाग	**पश्चिमी भाग**
मैथिली, बंगला, उड़िया	देवनागरी, गुजराती, महाजीन, राजस्थानी, मराठी

नागरी का वास्तविक विकास अभी खोज का विषय है। वैसे प्रारंभिक प्राप्त रूप गुजरात के नरेश जयभट्ट (700-800 ई.) के शिलालेख में मिलता है। कुछ विद्वानें की मान्यता है कि इस लिपि का प्रारंभिक विकास गुजरात और कोंकण में हुआ। इसके पश्चात् उत्तर भारत में हुआ। यह मान्यता उचित नहीं, क्योंकि उत्तर भारत से प्राप्त तथ्यों से नागरी के उत्तर भारत में विकसित होने के तथ्य मिलते हैं।

दसवीं शताब्दी से 15वीं शदी तक नागरी चिन्हों में विशेष सुधार चलता रहा है। यह परिवर्तन मुख्यतः सरल और सुंदर बनाने के प्रयत्न से हुआ है। दसवीं शती के प्रारंभिक रूप जाइक देव के समय के मिले मोरबी के दान-पत्रों, नेपाली से मिले हस्तलिखित ग्रंथों में देख सकते हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के पश्चात् विकसित रूप नागरी के वर्तमान चिह्नों से बहुत कुछ मेल खाते हैं। नागरी के सतत विकसित रूप में रेखांकन योग्य कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. लिपि-चिह्नों को सरल और सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया है।
2. लिपि-चिह्नों में स्पष्टता लाने का प्रयत्न दिखाई देता है।
3. लिपि-चिह्नों में आकर्षक और व्यवस्थित रूप देने के लिए शिरोरेखा लगाने का प्रयत्न स्पष्ट होता है।
4. लिपि-चिह्नों में स्पष्ट लेखन के साथ त्वरा-लेखन-गुण विकसित करने का प्रयत्न किया गया है।

नागरी लिपि के विकास अध्ययन में विभिन्न शिलालेखों, भोज-पत्र के लेखों, सिक्कों, पत्रों और हस्तलिखित ग्रंथों का सहयोग लिया गया है। इनमें प्रयुक्त नागरी के लिपि-चिह्नों से उनके क्रमिक विकास का ज्ञान होता है।

नागरी चिह्नों के विकास को प्रस्तुत करने के लिए कुछ एक चिह्नों का विकास क्रम प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

अ – यह नागरी का अर्ध विव त मध्य स्वर है। दसवीं शताब्दी में इसका रूप राजा जाइक देव कालीन मोरबी से मिले दानपत्र में मिलता है। ग्यारहवीं शती में लगभग मिलता-जुलता चिह्न धार से मिले राजा भोज के कर्मशतक में है। बारहवीं शती के हैहय वंशी राजा जाजाल्देव के लेख में और तेरहवीं शती का रूप आबू के परमार का राता के औरिया के लेख में मिलता है। इसके पश्चात् इसमें सरलीकृत और सुन्दर रूप का विकास हुआ है।

ह – नागरी वर्णमाला का अंतिम वर्ण है। इसका प्रारंभिक रूप ई.पू. तीसरी शती के अशोक के गिरनार के लेख में मिलता है। नागरी का यह चिह्न सर्वप्रथम दसवीं शताब्दी के मोरबी से मिले राज जाइक देव के दानपत्र में प्राप्त हुआ। तेरहवीं शती में आबू के परमार राजा धारावर्ष के समय के लेख में इसका विकसित रूप मिलता है। इसके बाद नागरी का वर्तमान 'ह' चिह्न विकसित हुआ है।

किसी भी लिपि के दो मुख्य भाग होते हैं-प्रथम, वर्ण और द्वितीय अंक। नागरी के अंकों का विकास भी शिलालेखों, पत्रों और हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर दर्शाया जा सकता है; यथा - (एक) - ब्राह्मी में इसका रूप छोटी पाई-लगभग योजक चिह्न के समान '-' प्रयोग होता था। गुप्तकाल तक यही रूप प्रयुक्त होता रहा है। नौवीं शताब्दी में यह रूप घुमाकर नीचे की ओर कर दिया गया। दसवीं शताब्दी में इसके उपरी सिरे को घुण्डीदार

बनाने का प्रयत्न किया गया है। यह रूप दसवीं शती के चालुक्य मूलराज के दानपत्र में देखा जा सकता है। इसके पश्चात् उपर के भाग को पूर्णरूपेण घुण्डीदार बनाकर सुन्दर बनाया गया है।

अंकों के विकास में किसी न किसी अंश में घुण्डीदार रूप अवश्य विकसित हुआ है। नागरी वर्णों में शिरोरेखा का सतत विकास और चिह्नों में गोलांश या घुण्डीदार रूप-विकास इनकी रेखांकन योग्य विशेषता है।

प्रतिनिधि वर्ण-अंक-चिह्न का विकास

	10वीं शती	13वीं शती	15वीं शती	17वीं शती	21वीं शती
	अ-ग्र	अ	अ	अ	अ
	ह्	ह	ह	ह	ह
अंक					
	1	1	1	1	1

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारत की प्राचीनता लिपि ब्राह्मी से क्रमशः विकसित होती विभिन्न लिपियों के क्रम में नौंवी शताब्दी में प्राचीन नागरी का रूप सामने आया है। इसके पश्चात् नागरी का विकास हुआ है। नागरी लिपि के चिह्नों को उस समय से लगातार सरल, सुन्दर और वैज्ञानिक रूप प्रदान करने के प्रयत्न से वर्तमान रूप सामने आया है। वर्तमान समय में प्रयुक्त नागरी लिपि किसी भी अन्य लिपि से कहीं अधिक वैज्ञानिक है।

10.5 देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता

भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा की लिपि देवनागरी है। संवैधानिक रूप में नागरी को राजलिपि का पद प्राप्त है। विश्व की कोई भी वर्णमाला नागरी के समान सर्वांगीण और वैज्ञानिक नहीं है। माना सभी को अन्य वस्तुओं की भांति अपनी भाषा तथा लिपि ही अच्छी लगती है, किंतु नागरी की वैज्ञानिकता को कोई भी विद्वान अस्वीकार नहीं कर सकता है। यदि भारतवर्ष की सभी भाषाओं को नागरी लिपि में भी लिखा जाए, तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाएगी। इस लिपि की निम्नलिखित विशेषताएँ है -

चिह्न संख्या

कहा जाता है कि नागरी में चिह्नों की संख्या बहुत अधिक है, रोमन में मात्र 26 चिह्न है। विचार करने पर नागरी में स्वर-लगभग 10, मात्रा-लगभग 1, व्यंजन-33 अर्थात् 52 चिह्न हैं। अंग्रेजी में छोटे + बड़े अक्षर अर्थात् 26 + 26 = 2.2 चिह्न है। इस प्रकार नागरी के चिह्नों को अधिक कहना तर्क संगत नहीं है। इनकी संख्या अनुकूल है।

आदर्श वर्गीकरण

नागरी वर्णमाला का वर्गीकरण पूर्ण वैज्ञानिक है। नागरी वर्णमाला को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया गया है-स्वर तथा व्यंजन। स्वर को प्रारंभ में तथा व्यंजन को बाद में स्थान दिया गया है।

स्वर – जिन वर्णों का उच्चारण किसी अन्य वर्ण की सहायता के बिना किया जा सके और मुख-विवर से हवा अबोध गति से बाहर निकले, उन्हें स्वर की संज्ञा दी जाती है; यथा-अ, आ, इ, ई, उ, उ आदि।

व्यंजन – जिन संकेतों (वर्णों) का उच्चारण स्वर की सहायता के बिना न किया जा सके तथा उच्चारण में हवा

अबोध गति में मुख-विवर में न निकल सके, ऐसी ध्वनि के उच्चारण के समय हवा का घर्षण करती हुई सकीर्ण मार्ग से निकलती है। इस प्रकार मार्ग में वायु का पूर्ण या अपूर्ण अवरोध होता है, ऐसे वर्णों को व्यंजन की संज्ञा दी जाती है; यथा-क, ख, ग, घ, ङ., च, छ, ज, झ, त्र आदि।

(क) **स्वर वर्गीकरण :** स्वर वर्णों की व्यवस्था अपने में पर्याप्त वैज्ञानिक है।

1. मात्रानुसार-नागरी के स्वरों के ह्रास्व, दीर्घ तथा लुप्त रूपों की व्यवस्था द्रष्टव्य है -
   (क) ह्रस्व-जिन स्वरों के उच्चारण में अपेक्षाकृत सीमित समय लगता है; जैसे-अ, इ, उ।
   (ख) दीर्घ-जिन स्वरों के उच्चारण में ह्रस्व से लगभग दूना समय लगता है' जैसे- आ, ई, उ।
   (ग) प्लुत-जिन स्वरों के उच्चारण में दीर्घ स्वर से भी अधिक समय लगता है, ह्रस्व से लगभग तीन गुना समय लगे; जैसे-ओ म् में ओ ।
2. आकृति के अनुसार- स्वरों की आकृति के अनुसार की गई व्यवस्था महत्त्वपूर्ण है।
   (क) मूल स्वर-जिन संकेतों में मात्र एक स्वर होता है; यथा-अ, इ, उ।
   (ख) संयुक्त स्वर-जिन संकेतों में मात्र एक स्वर हों; यथा-ए = अ + इ, ऐ = अ + ई, ओ = अ + उ, औ = अ + ऊ।

(ख) **व्यंजन-वर्गीकरण**

1. **वर्ग-विभाजन –** नागरी में 55 व्यजनों के वर्ग की पूर्ण वैज्ञानिक व्यवस्था है-कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तथा पवर्ग में क्रमशः कण्ठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य, दन्तय तथा ओष्ठ्य लिपि चिह्न।
   (क) कवर्ग-इस वर्ग की व्यंजन ध्वनियाँ जीभ के चिह्न भाग से उच्चारित होती हैं। इसलिए इन्हें कण्ठ्य ध्वनि-चिह्न कहते हैं; यथा-क, ख, ग आदि।
   (ख) चवर्ग-इस (तालव्य) वर्ग की व्यंजन-ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक से कठोर तालु पर झटके से मिलने से होता है; यथा-च, छ आदि।
   (ग) टवर्ग-इस (मूर्द्धन्य) वर्ग के व्यंजन-चिह्नों का उच्चारण मूर्द्धा की सहायता से होता है; यथा-ट, ठ, ड, ढ, ण।
   (घ) तवर्ग-इस (दन्त्य) वर्ग की व्यंजन-ध्वनियों का उच्चारण दाँत के साथ जीभ की नोंक के मिलने से होता है; यथा-त, थ, द आदि।
   (ङ) **पवर्ग –** इस (ओष्ठ्य) वर्ग की व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण दोनों ओठों की सहायता से होता है; उदाहरणार्थ - प, फ, ब, भ, म।
2. **प्राणत्व-आधार :** व्यंजन वर्णों के उच्चारण-संदर्भ में निकलने वाली हवा को ध्यान में रखकर की गई लिपि-चिह्नों की व्यवस्था उत्तम कोटि की है।
   (क) महाप्राण-जिन व्यंजनों के उच्चारण में हवा का प्रवाह तीव्र हो तथा हकारत्व विद्यमान हो। प्रत्येक वर्ग की द्वितीय तथा चतुर्थ ध्वनियाँ-
   कवर्ग-ख, (kh), घ (gh) चवर्ग-छ (chh) झ (jh)
   टवर्ग-ठ (Th), ढ (Dh) तवर्ग- थ (Th) ध (Dh)
   पवर्ग-फ (Ph), भ (Bh)
   (ख) अल्प्राण-जिन व्यंजनों ध्वनियों के उच्चारण में हवा का प्रवाह मंद हो तथा हकारत्व का अन्त न हो। प्रत्येक वर्ग की प्रथम, त तीय तथा पंचम व्यंजन ध्वनियाँ-

कवर्ग-क, ग, ड.चवर्ग-च, ज, त्र

टवर्ग-ट, ड, ण तवर्ग-त, द, न

पवर्ग-प, ब, म

3. **नासिक्य-आधार :** जिन व्यंजनों के उच्चारण में हवा मुख्यतः नाक से निकले, उन्हें नासिक्य व्यंजन कहते हैं। नागरी लिपि के प्रत्येक व्यंजन वर्ग में अनुनासिक व्यंजन को अंत में पाँचवें स्थान पर व्यवस्थित किया है; यथा-क, च, ट, त और पवर्ग के क्रमशः नासिक्य ध्वनि-चिह्न हैं-ङ., ण, न, म।

4. **संयुक्तानुसार :** नागरी वर्णमाला में सामान्य रूप से सरल व्यंजनों को स्थान दिया गया है-संयुक्त व्यंजन वर्णमाला में नहीं है। प्रयोग आवश्यक होने पर संयुक्त और द्वित्व रूप बना लेते हैं; यथा -

(क) सरल व्यंजन-क, ख, च, त आदि

(ख) संयुक्त व्यंजन-क्ष (क्ष), त्र (त्र,), ज्ञ (जत्र)

(ग) द्वित्व व्यंजन-क्क, त्त, द्द, (पक्का, रत्ती, भद्दा) आदि।

लिपि-संकेत नाम तथा ध्वनि अनुरूपता

नागरी लिपी के वर्णों की यह प्रमुख विशेषता है कि वर्णों के नाम के ही अनुरूप शब्दों में उनका भी उच्चारण होता है, यथा-क-चकोर, त-तमाल आदि।

इस प्रकार नागरी वर्ण-ज्ञान होने पर किसी शब्द का शुद्ध उच्चारण संभव है। रोमन लिपि में यह गुण नहीं है। रोमन के संकेतों की ध्वनियों शब्दों में प्रयुक्त होकर कुछ से कुछ हो जाती है। प्रत्येक लिपि-संकेत के साथ शब्दों में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि को याद करना पड़ता है। रोमन में इस संदर्भ की अनेकरूपता दिखाई पड़ती है-

(क) अंग्रेजी के कुछ शब्दों के उच्चारण में कुछ लिपि-संकेतों के नाम की मात्र प्रथम ध्वनि का प्रयोग होता है; यथा- B (बी) 'ब'- Bag (बैग), D (डी) 'ड'- Date (डेट), K (के) 'क' Kite (काइट)।

(ख) अंग्रेजी के कुछ शब्दों में लिपि-संकेतों के नाम की दूसरी ध्वनि का प्रयोग किया जाता है; यथा- F (एफ) 'फ' (Fan) (फैन), L (एल) 'ल' Lame (लेम), M (एम) 'म' Man (मैन)।

(ग) अंग्रेजी के कुछ शब्दों में लिपि संकेतों के किसी भी ध्वनि का प्रयोग नहीं होता है; यथा- C (सी) 'क' Cat (कैट), (एवं) ह H (हाउस), 'अ' Hour (आवर)।

एक ध्वनि के लिए एक लिपि-संकेत

नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है कि लगभग प्रत्येक ध्वनि के लिए एक संकेत का प्रयोग होता है। रोमन में यह गुण न्यून है। इसमें एक ध्वनि के लिए एक से अधिक संकेतों का प्रयोग होता है; यथा-

क	>	K	(के)	—	Kite	काइट	(पतंग)
	<	Ch	(सी एच)	—	Chemistry	कैमेस्ट्रि	(रसायन विज्ञान)
	>	C	(सी)	—	Coat	कोट	(कोट)
	>	Ck	(सी के)	—	Back	बैक	(पीछे)
	>	Que	(क्यू-यू-ई)	—	Cheque	चेक	(हुंडी)
	X	X	(एक्स)	—	Fox	फॉक्स	(लोमड़ी)

इस प्रकार 'फ' के लिए F (Fan, Ph (Photo), Gh (Rough) प्रयोग होता है, तो 'इ' के लिए I (Tin), O (Women), Y (System) आदि संकेत प्रयुक्त होते हैं।

एक लिपि-संकेत के लिए एक ध्वनि

एक लिपि-संकेत के लिए एक ध्वनि का होना वैज्ञानिकता है। नागरी लिपि के किसी वर्ण को शब्द के आदि, मध्य अथवा अंत कहीं भी प्रयोग करें, ध्वनि एक ही होती है। हिंदी में कुछ एक अपवाद मिल सकते हैं, तो रोमन लिपि में यह कमी बहुत खटती है-

A	(ए)	अ	>	Affirm	(अफ्फर्म)	—	निश्चयपूर्वक कहना
		आ	>	Car	(कार)	—	कार
		ए	>	Rate	(रेट)	—	नियत मूल्य
		ऐ	>	At	(ऐट)	—	पर

इसी प्रकार (यू) का उच्चारण अ (Cut), उ (Put), यू (Unit), आदि रूपों में होता है।

व्यंजन की आक्षरिकता

नागरी लिपि के सभी व्यंजनों के साथ स्वर अ का उच्चारण होता है। यह गुण व्यंजनों की आक्षरिकता कहलाता है। च = च् + अ, त = त् + अ आदि।

इस प्रकार आक्षरिक रूप में लेखन में त्वरा आती है। साथ ही समय तथा स्थान की भी बचत होती है।

रोमन लिपि के वर्णों में यह गुण नहीं है, जिसके कारण समय अपेक्षाकृत अधिक लगता है, यथा—कमल KAMALA रमन – RAMANA, छम छम- CHHAMA CHHAMA.

मात्रा का प्रयोग

नागरी लिपि के स्वरों का कभी स्वतंत्र रूप में प्रयोग होता है, तो कभी उनके मात्रा संकेतों का। स्वरों के स्वतंत्र प्रयोग में किसी अन्य लिपि-संकेतों का सहारा नहीं लेना पड़ता है; यथा-अ-अपनी, इ-इधर, उ-उधर आदि।

जब स्वर के स्थान पर उनकी मात्राओं का प्रयोग किया जाता है, तो लेखन का मूलाधार व्यंजन होता है; यथा-आ माता, इ > ि लिपि, उ > ु कुछ उ ू कुछ, उ > ू -मूल आदि।

यदि मात्रा प्रयोग की व्यवस्था न होती तो स्थान एवं समय अधिक लगने से लेखन में त्वरा संभव न होता। ऐसे में लेख का रूप इस प्रकार होता-माता = म् आ त् आ, लिपि = ल् इ प् इ, कुछ = क् उ छ् अ

ऐसी वैज्ञानिकता रोमन लिपि में नहीं है। स्वरों के मात्रा रूप के अभाव होने से उनका स्वतंत्र रूप में ही प्रयोग होता है; यथा-पतन PATANA, कमल KAMALA आदि।

ह्रस्व-दीर्घ स्वरों के लिए स्वतंत्र लिपि-संकेत

वर्ण का ही प्रयोग होता है, जिसके कारण ऐसी ही विषम स्थिति होती है, यथा-

यह नागरी की प्रमुख वैज्ञानिकता है। रोमन लिपि में यह गुण आंशिक रूप में भी नहीं है। नागरी लिपि में भी नहीं है। नागरी लिपि में स्वर के दो रूप है-ह्रस्व तथा दीर्घ; यथा-

ह्रस्व स्वर-आ, इ, उ आदि।

दीर्घ स्वर-आ, ई, उ आदि।

इस प्रकार स्वर के ह्रस्व तथा दीर्घ, दो रूपों से ध्वनियों का अधिक शुद्ध उच्चारण और लिपिबद्ध करना संभव है; यथा-

रम, रमा, रामा।

लत, लता, लात, लाता।

ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर ध्वनियों के दो रूप से उक्त लेखन संभव है, अन्यथा रम, रमा, राम, रामा के लिए एक ही रूप होता। रोमन में 'अ' तथा 'आ' स्वर ध्वनियों के लिए सामान्यतः 'A' वर्ण का ही प्रयोग होता है, जिसके कारण ऐसी ही विषम स्थिति होती है, यथा -

RAMA = रम, रमा, राम, रामा।

LATA = लत, लता, लात, लाता।

पर्याप्त लिपि-चिह्न

वैज्ञानिक लिपि में सम्बन्धित भाषा की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त संकेतों का होना आवश्यक होता है। नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है। रोमन लिपि द्वारा अंग्रेजी की भी ध्वनियों को लिपिबद्ध करना अत्यन्त कठिन है। रोमन लिपि में महाप्राण ध्वनियों के लिए स्वतन्त्र लिपि संकेत नहीं है। इनको लिपिबद्ध करने के लिए अल्पप्राण ध्वनि के साथ 'H' का प्रयोग किया जाता है; यथा- ख KH, घ GH ठ TH फ PH अंग्रेजी में लिपि-संकेतों की अपर्याप्ता के कारण पढ़ने में आने वाली समस्याएँ द्रष्टव्य हैं - AGHAN > अगहन, अघन।

रोमन लिपि की इस कमी के कारण एक ही शब्द में अनेक शब्दों के संदेह की समस्या आ जाती है; यथा - KAMALA, कमल, कमला, कमाल, कामल, कामला, कमाला, कामाल, कामाला।

यह शक्ति नागरी के अतिरिक्त सुपाठ्यता और लेखन-सारल्य नागरी लिपि की विशेषताएँ हैं जिससे इसकी वैज्ञानिकता और पुष्ट होती है। इन विशेषताओं को देखते हुए नागरी लिपि के रूप में प्रयोग करना चाहिए, इससे राष्ट्रीय एकता भी सुद ढ़ होगी।

10.5 देवनागरी : मानकीकरण

देवनागरी लिपि विश्व की अनेक लिपियों से अधिक वैज्ञानिक है। नागरी को सर्वगुण या पूर्ण लिपि बनाने के लिए इसमें कुछ सुधार आवश्यक है। वर्तमान समय में नागरी लिपि की कुछ समस्याएँ हैं, जिनका सुधार अपेक्षित है।

समस्याएँ

एक वर्ण के लिए एक से अधिक संकेत - देवनागरी में कुछ ऐसे वर्ण हैं जिनके लिए एक से अधिक संकेतों का प्रयोग होता है; यथा -

(क) 'र' के लिए चार संकेतों का प्रयोग - र = र, ्‍, ‸, ` रमा, क्रम, ट्रक, धर्म।

(ख) एक वर्ण के लिए दो शब्दों का प्रयोग - अ - त्र्प, छ - द्द, झ - भ ल - ल, ण - रा, श -श आदि।

(ग) एक अंग के लिए दो या दो से अधिक संकेतों का प्रयोग।
चार संकेतों का प्रयोग नौ - ६ ....
तीन संकेतों का प्रयोग छः - ६ ....
दो संकेतों का प्रयोग आठ - ८ ....

↑
← *Characters not available in this Font.*
← *please change the text.*
←
←

दो लिपि - चिह्नों के भ्रामक प्रयोग - ख-रव, घ-ध, भ-म, रा (र् + आ) - रा (आधा रा)। यह शिरोरेखा विहीन लेखन या त्वरित लेखन में होती है।

संयुक्त वर्णों का प्रयोग - क्ष, त्र, ज्ञ, द्य, द्ध, क्त, झ आदि।

लिपि-संकेतों की अपर्याप्त - ख, ग, ज, फ आदि का प्रभाव।

'इ' की मात्रा के प्रयोग की समस्या।

व्यंजनों की आक्षरिकता सभी मूल व्यंजनों में आकार का होना।

शिरोरेखा और पूर्ण विराम-चिह्नों का प्रयोग - विवाद।

समाधान या सुधार - सिद्धान्त

लिपि-सुधार के समय उससे सम्बन्धित मूल भूत सिद्धान्तों पर विचार करना आवश्यक है; जो अग्रलिखित हैं -

आवश्यकतानुसार कम से कम परिवर्तन,

एक ध्वनि के लिए एक संकेत-प्रयोग,

एक लिपि-संकेत के लिए एक ध्वनि-प्रयोग,

लिपि संकेतों की पर्याप्ता,

लेखन एकरूपता,

लिपि में त्वरित लेखन-गुण

उच्चारणनुसार लेखन,

लेखन-सरलता,

लेखन, टंकण और मुद्रण में एकरूपता।

सुधार-इतिहास

मानव का सम्पर्क दिन-प्रतिदिन देश से विदेश की ओर बढ़ता जा रहा है। देवनागरी को पूर्ण वैज्ञानिक लिपि बनाने के लिए इस शताब्दी में कुछ व्यक्तियों, संस्थाओं और राज्यों एवं केन्द्र सरकारों द्वारा लगातार प्रयत्न किए गए हैं। इस संदर्भ में किए गए कुछ प्रयास इस प्रकार हैं -

(क) **प्रारम्भिक सुधार** - नागरी लिपि के प्रथम सुधारकर्ता के रूप में बम्बई के महादेव गोविन्द रानाडे का नाम लिया जाता है। इसके पश्चात् महाराष्ट्र साहित्य परिषद्, पुणे के द्वारा एक लिपि - सुधार समिति नियुक्त की गई। मराठी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में इस संदर्भ का प्रस्ताव पास किया गया।

सावरकर ने 'अ' का मूल स्वर मानकर इसी से अन्य स्वरों की कल्पना की थी; यथा - इ अि, ई अी, उ अु, ऊ अू, ए अे आदि। इस संदर्भ में महात्मा गांधी, विनोबा भावे कालेलकर आदि ने सराहनीय कार्य किया है। इस सुधार-प्रयास को पूर्ण स्वीक ति न मिल सकी। इसका मुख्य कारण था- एक अनुत्तरित प्रश्न कि ये मात्राएँ जो 'अ' में लगाकर इ, उ आदि बनती है, वे इ, उ आदि के अस्तित्व के बिना आई कहाँ से ?

नागरी लिपि - संकेतों से शिरोरेखा हटाने का भी सुझाव दिया गया है। उसी समय से गुजराती लिपि से शिरारेखाविहीन लेखन की परम्परा चली आ रही है। इस समय लिपि - सुधार संदर्भ में कार्य करने वाले अन्य विद्वान थे - केशवराम, काशीप्रसाद शास्त्री, गोरख प्रसाद और श्रीनिवास आदि।

(ख) **हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयास** के तत्वाधान में 1935 में महात्मा गांधी के सभापतित्व में हुए अधिवेशन में एक नागरी लिपि सुधार-समिति का गठन किया गया है, जिसकी बैठक 5 अक्तूबर, 1941 को हुई। इसमें निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए गए -

1. शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है।
2. प्रत्येक वर्ण तथा मात्रा उच्चारण क्रम में लिखे; यथा-चुप > च ु प, मेल > म ॅ ल आदि।
3. 'इ' की मात्रा 'ि' के भ्रामक प्रयोग से बचने के लिए 'इ' और 'ई' की मात्राओं में परिवर्तन करके मात्रा ि के नीचे भाग को बाएँ और ई की मात्रा ी के नीचे के भाग को दाएँ भुजाएँ।
4. पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई का प्रयोग करें।
5. अनुस्वार तथा अनुनासिक संकेतों का प्रयोग उच्चारण-क्रम में दाहिनी ओर हटकर करें; यथा-चंद > च ं द, चाँद > चा ँ द।

6. घ-ध और भ-म की भ्रामक स्थिति समाप्त करने के लिए ध और भ को घुण्डीदार बनाएँ; यथा - ध, भ।

7. प्रेम, क्रीम, त्रुटि आदि संयुक्त वर्गों में स्वतन्त्र 'र' का प्रयोग करें, यथा प्रेम > प्रेम, क्रीम > क्रीम, त्रुटि > त्रुटि आदि।

(ग) **नागरी प्रचारिणी सभा, काशी** द्वारा 1995 अनेक विद्वानों से नागरी-सुधार सम्बन्ध में सूझाव माँगा गया। श्रीनिवास ने समिति के सामने 'प्रति देवनागरी' नया नाम रखते हुए संदर्भ में कुछ सुझााव दिए जिनकी कुछ विशेषताएँ हैं -

1. वर्णो की संख्या कम करने के लिए एक वर्ण को परिवर्तित कर दूसरे वर्ण बनाए गए।

2. सभी स्वर 'अ' के आधार पर बनाए गए थे।

3. सुधार-प्रयत्न से वर्ण-संकेतों में बहुत अधिक नवीनता आ गई थी।

बहुत अधिक नवीनता हो जाने से इन सुधारों को महत्त्व न मिला।

(घ) **उत्तर प्रदेश सरकार (प्रथप प्रयास)** - 31 जुलाई, 1947 को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में 'नागरी सुधार समिति' का गठन किया। इस समिति के द्वारा कई सुझाव दिए गए -

1. शिरोरेखा का प्रयोग हो।

2. जिन व्यंजनों के उत्तरार्द्ध में खड़ी पाई न हो उनसे संयुक्त रूप बनाते समय उसमें हलन्त का प्रयोग करें : यथा - गड्ढ़ा, गद्दी।

3. 'इ' की मात्रा को वर्ण के दाहिने लगाएँ किन्तु लम्बाई आधी कर दें, यथा - मिलन > मीलन, तिल > तील आदि।

4. घ-ध और भ-म के भ्रम को दूर करने के लिए ध और भ का घुण्डीदार = 'ध', 'भ' प्रयोग करें।

6. पूर्णविराम को खड़ी पाई के रूप में प्रयो करें।

7. अनुस्वार के लिए शुन्य (०) और अनुनासिक के लिए बिन्दु (.) का प्रयोग होना चाहिए।

8. संयुक्त वर्णों (क्ष, त्र, ज्ञ आदि) का यथासाध्य निकाल देना चाहिए।

(ङ) **उत्तर प्रदेश सरकार (द्वितीय प्रयास)** : नागरी प्रचारिणी सभा के अनुरोध पर उत्तर प्रदेश सरकार ने एक 'लिपि सुधार-परिषद्' का गठन किया। 28, 29 नवम्बर, 1953 को देश के उपराष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में परिषद् की बैठक हुई, जिसमें चौदह प्रान्तों के मुख्यमंत्रियों और उनके भाषाशास्त्रियों ने भाग लिया। इस समिति के सर्वसम्मत्ति से स्वीकृति सुझाव इस प्रकार थे -

1. ध और भ के समान छ को भी घुण्डीदार 'छ' बनाएँ।

2. संयुक्त वर्णों को स्वतत्त्र वर्णों के माध्यम से लिखे (मात्र क्ष के पूर्ववत् प्रयोग पर बल दिया गया)।

अन्य सुधारों के सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में दिए गए सुझावों की सराहना की गई।

(च) इनके अतिरिक्त पंजाब हिन्दु महासभा, दक्षिणी हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास; राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, वर्धा; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना तथा हिन्दी प्रचार परिषद्, बंगलौर आदि के द्वारा भी नागरी-सुधार के सम्बन्ध में प्रयत्न किए गए, जो पूर्ववर्णित सुधारों के समान हैं।

(छ) नागरी-सुधार के प्रयास संदर्भ में आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. उदयनारायण तिवारी, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, डॉ. हरदेव बाहरी और डॉ. शंकर द्विवेदी की सराहनीय भूमिका रही है।

देवनागरी सुधार-विवेचन

देवनागरी लिपि के समस्त सुधारों को समवेत रूप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं -

1. समय-स्थान की बचत के साथ त्वरा-लेखन के लिए स्वर-मात्राओं का पूर्ववत प्रयोग करें। परम्परागत प्रयोग की समानता को देखते हुए 'इ' की मात्रा 'ि' का पूर्ववत प्रयोग करें।
2. 'र' के लिए प्रचलित चार रूपों (र) के स्थान पर एक स्वतंत्र संकेत का ही प्रयोग करें; यथा - राम, क्रम > क्रम, ड्रप > ड्रम, मर्म > मर्म।
3. एक वर्ण के लिए प्रयुक्त होने वाले दो संकेतों के स्थान पर केवल एक संकेत निर्धारित हो; यथा

   अ, झ, ण, ल और श आदि।

   इसी प्रकार स्पष्टता, सरलता और बहुप्रचलन के आधार पर अ, झ, ण, ल, श का ही प्रयोग वैज्ञानिक है।
4. दो वर्णो के लगभग समान संकेतों से भ्रामक स्थिति उत्पन्न होती है; यथा - ख > रव, (खाना > रवाना), घ > ध (घाम > धाम), रा (आधा ण) > (अराडा > अराडा)

   इस समस्या के हल हेतु सम्बन्धित वर्णो में इस प्रकार परिवर्तन करें -

   (ख > ख, घ > ध, भ > भ और 'रा' के स्थान पर 'ण' की ही प्रयोग करें।
5. संयुक्त वर्णों के स्थान पर स्वतंत्र ध्वनियों का प्रयोग करें, यथा - क्ष > क्ष, त्र > त्र, ज्ञ > ज्ञ, श्र > श्र, क्त > क्त आदि।
6. नागी लिपि में क, ख, ग, ज, फ ध्वनि चिह्न पहले से ही विद्यमान हैं। इनमें ही संघर्षी चिह्न लगाकर अरबी-फारसी की क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियों का लेखन कर सकते हैं। इससे स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के साथ नागरी लिपि पर अतिरिक्त लिपि-चिह्नों का बोझ नहीं आएगा।
7. अंग्रेजी की 'ऑ' ध्वनि का हिन्दी में प्रयोग होने लगा है; यथा - डॉक्टर, कॉलेज, बॉल आदि। इसे अपना लेना चाहिए और इसे 'चन्द्रांक कह सकते हैं।
8. पूर्णविराम के स्थान पर '।' का ही प्रयोग करना चाहिए।
9. अनुनासिक तथा अनुस्वार के शुद्ध उच्चारण और लेखन को स्पष्ट रूप देने हेतु अनुनासिक (ँ) रूप में और अनुस्वार पूर्ववत् (-) प्रयोग करना चाहिए, यथा-चाँद, चंद।
10. नागरी के प्रत्येग अंक के लिए एक चिह्न का प्रयोग करना चाहिए नागरी के नौ अंक के लिए चार संकेतों, छह के लिए तीन और आठ के लिए दो संकेतों के प्रयोग मिलते हैं। इनमें सरलता बहुप्रयुक्त चिह्न रूप ही (1, 8, 6) अपनाना चाहिए।

अध्याय - 11
हिन्दी में कंप्यूटर सुविधाएँ

भाषिक अनुप्रयोग

वर्तमान में हम सूचना विस्फोट के युग में गतिशील हैं। इन्टरनेट (विश्वजाल) ने विस्तीर्ण संसार को विश्वगाँव (Global Village) में बदल दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी को सर्वाधिक गति कंप्यूटर से मिलती हैं। कंप्यूटर के विकास में लगभग पाँच दशक का समय अवश्य लगा है, किन्तु आज कंप्यूटर जनसामान्य के लिए भी विशेष उपयोगी बन गया है। इसका उपयोग मानव द्वारा सभी क्षेत्रों में किया जाने लगा है। कंप्यूटर का उद्‌भव अंग्रेजी भाषा क्षेत्र में हुआ। इसलिए इसमें सर्वप्रथम अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि का प्रयोग किया गया। धीरे-धीरे विभिन्न भाषाओं और विविध लिपियों का प्रयोग कंप्यूटर में किया जाने लगा है।

वर्तमान समय में व्याकरण के सुद ढ़ आधार से अनुशासिस संस्कृत कंप्यूटर की सर्वाधिक उपयोगी भाषा है। संस्कृत भाषा की लिपि नागरी है। इसे देवनागरी नाम भी दिया जाता है। देवनागरी में संस्कृत के अतिरिक्त वैदिक, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, राजस्थानी और नेपाली आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं। नागरी लिपि वैज्ञानिक लिपि है। इस प्रकार नागरी लिपि में कंप्यूटर पर कार्य करना सरल है। नागरी लिपि के सॉफ्टवेयर पर्याप्त रूप में उपलब्ध है। कंप्यूटर पर हिंदी भाषा का उपयोग अनुकूल गति से होने लगा है।

कंप्यूटर पर हिंदी के भाषिक प्रयोग को निम्नलिखित संदर्भो में रेखांकित कर सकते हैं -

11.1 आँकड़ा संसाधन और शब्द संसाधन
(Data Processing or Word Processing)

कंप्यूटर में आँकड़ा (Data) कुंजीपटल के द्वारा भरा जाता है। आँकड़ा, शब्द या अंक किसी भी रूप में हो सकता है। ध्यान से देखें, तो दो भाग सामने होंगे-प्रथम, मॉनिटर या स्क्रीन जिस पर आँकड़ा-शब्द और अंक देख सकते हैं। द्वितीय सी.पी.यू. (Central Processing Unit) एक बॉक्स के रूप में होता है। इसमें एक मदर बोर्ड होता है जिसमें मूंगफली के आकार का छोटा-सा सिलिकॉन चिप में संसाधक या प्रोसेसर रहता है।

आँकड़ा संसाधक को मुख्यतः तीन विषयों में विभक्त कर सकते हैं-

(अ) हार्डवेयर विकल्प
(Hardware Option)

आँकड़ा संसाधन से संबंधित कार्य हिंदी भाषा में करने हेतु दो विकल्प में संभव है-प्रथम-हार्डवेयर विकल्प, द्वितीय-सॉफ्टवेयर विकल्प। आँकड़ा संसाधन संबंधित हार्डवेयर के विकास मे आई.आई.टी., कानपुर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सॉफ्टवेयर की इस प्रणाली को जिस्ट प्रौद्योगिकी (Graphics and Intelligence based Script Technology) नाम दिया गया है। इस प्रणाली को अपनाकर भारत सरकार का 'सी-डेक' सोसायटी

ने 'परम' नाम सुपर कंप्यूटर का विकास किया। यह सोसायटी 'सी-डेक' (Centre for Development of Advanced Computering) महाराष्ट्र प्रदेश के पुणे में स्थित है। जिस्ट प्रौद्योगिकी में पर्सनल कंप्यूटर के 'मदर बोर्ड' पर एक 'प्लग इन कार्ड' लगाया जाता है। इसे ही 'जिस्ट कार्ड' कहते है। इस जिस्ट कार्ड की सहायता से आई.बी.एम. के पर्सनल कंप्यूटरों पर द्विभाषित और बहुभाषित रूप में आँकड़ा संसाधन संभव है। यूनिक्स/जेनिक्स परिचालन पद्धतियों के लिए जिस्ट कार्ड के स्थान पर 'जिस्ट-टर्मिनल' की अपेक्षा होती है। 'जिस्ट प्रौद्योगिकी' के माध्यम से हिंदी और विभिन्न भाषाओं का प्रयोग संभव है।

(ब) सॉफ्टवेयर विकल्प

(Software Option)

आँकड़ा संसाधन का सॉफ्टवेयर विकल्प 'फ्लॉपी डिस्क' के रूप में प्राप्त किए जा सकते है। इसके लिए कंप्यूटर में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती है। फ्लॉपी डिक्स के रूप में उपलब्ध पैकेज को दो रूपों में विभक्त कर सकते है -

1. **समर्पित सॉफ्टवेयर प्रोग्राम (Dedicated Software Programme) –** यह हिंदी में आँकड़ा संसाधन का एक महत्वपूर्ण सॉफ्टवेयर है-बेस (द्विभाषी डाटाबेस प्रबन्धन प्रणाली)। इस सॉफ्टवेयर का निर्माण दिल्ली की में. सॉफ्टेक प्राईवेट लिमिटेड द्वारा किया गया है। यह सॉफ्टवेयर 'डी-बेस' III प्लस का द्विभाषी संस्करण ही है। हिंदी में काम करने के लिए यह एक उपयोगी पैकेज है। इसमें अभी और संशोधन कर अनुकूल दिशा पाने की आवश्यकता है।

2. **सामान्य उद्देश्यीय सॉफ्टवेयर परिवेश (General Purpose Software) –** आँकड़ा संसाधन का ऐसा परिवेश है जिसमें रोमन के अनेक सॉफ्टवेयर पैकेज हैं, यथा-'डी-बेस', लोटस, क्लिपर और सॉफ्टवेयर आदि। इन पैकेजों पर हिंदी में काम किया जा सकता है। इस परिवेश के विभिन्न प्रोग्रामिंग पर भी हिंदी में कार्य करना संभव है। यह परिवेश सामान्यतः जिस्ट के ही समान है अर्थात् जिन कार्यो को जिस्ट कार्य कर सकते हैं, उनको परिवेश के आधार पर सम्पन्न कर सकते हैं। नई दिल्ली के आर.के. कंप्यूटर रिसर्च फाउंडेशन द्वारा निर्मित 'सुलिपि' नामक सॉफ्टवेयर जिस्ट के ही समकक्ष उद्देश्यीय सॉफ्टवेयर है। इसके आधार पर एम.एस. डॉस पर आधारित पर्सनल कंप्यूटरों पर सभी कार्य हिंदी और अंग्रेजी में साथ-साथ किए जा सकते हैं।

   जिस्ट और सुलिपि के अन्तर्गत विभिन्न भारतीय भाषाओं के परस्पर लिप्यंतरण की उत्तम सुविधा है। जिस्ट और सुलिपि में मुख्य अंतर यह है कि जिस्ट के माध्यम से एम.एस.डॉस और यूनिक्स/जेनिक्स परिवेश में भी हिंदी कार्य करना संभव होता है, तो सुलिपि में एल.ए.एन. (Local Area Network) परिवेश में हिंदी-कार्य करना संभव होता है।

शब्द-संसाधन (Word Processing)

भाषिक अनुप्रयोग में शब्द-संसाधन प्रारंभिक चरण है। अंग्रेजी भाषा क्षेत्र में कंप्यूटर के उद्‌भव के कारण प्रारंभिक शब्द-संसाधन अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि में हुआ। हिंदी पाठों के प्रारंभिक शब्द-संसाधन रोमन लिपि के माध्यम से कुंजीपटन किया गया। कंप्यूटर के सदंर्भ में हिंदी का प्रारंभिक अनुप्रयोग शब्द-संसाधन से हुआ। वर्तमान समय में हिंदी के अनेक पैकेज देश-विदेश में विकसित हो चुके हैं। हिंदी के साथ द्विभाषित या बहुभाषिक रूप उपलब्ध हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से शब्द-संसाधन के कार्य चल रहे हैं। वर्तमान समय में कुछ पैकेज हैं-अक्षर, मल्टीवर्ड, शब्दरत्न, भारती, आलेख, शब्दमाला आदि। हिंदी के इन पैकेजों में वे विभिन्न सुविधाएँ उपलब्ध हैं, तो वर्डस्टार, वर्डपरफेक्ट आदि प्रोसेसिंग पैकेजों में उपलब्ध हैं। यह कहना नितांत आवश्यक है कि मात्र शब्द-संसाधन से कंप्यूटर के समस्त भाषायी अनुप्रयोग संभव नहीं है। वर्तमान समय में हिंदी के भाषिक अनुप्रयोग को आदर्श रूप प्रदान करने के लिए प्रयत्न चल रहे हैं। आँकड़ा संसाधन की सफलता के लिए वर्तमान स्थिति में अंग्रेजी-हिंदी द्विभाषी रूपों को अपनाया जा रहा है।

(स) हिंदी भाषा-शिक्षण

वर्तमान वैज्ञानिक युग में शिक्षा को वैज्ञानिक पद्धति से जोड़ने और सुरूचिपूर्ण बनाने की बात सामने आई। कंप्यूटर युग में कम से कम समय में उपयोगी शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। आज जब द श्य-श्रव्य उपकरणों से अधिकांश कार्य सम्पन्न होने लगें, तो शिक्षा को भी इससे जोड़ने और रूचिकर बनाने का प्रयत्न शुरू हुआ। विभिन्न क्षेत्रों के विद्यार्थियों को शिक्षित करने के लिए श्रव्य-द श्य कैसेट और वीडियो बनाना संभव नहीं। इसके साथ ही कंप्यूटर से शिक्षा देने का प्रश्न सामने आया। आज कंप्यूटर का प्रचार बहुत तेजी से हो रहा है। हिंदी-शिक्षण के लिए कंप्यूटर प्रयोग की योजना बनाई गई।

कंप्यूटर से भाषा-शिक्षण के लिए संलेखन प्रणाली (Authorising System) की आवश्यकता होती है। इसके तीन पक्षों में प्रथम-उपयोगिता क्रमादेश प्रणाली, द्वितीय-संलेखन भाषाएँ और त तीय क्रमादेश। इनके आधार पर अभ्यास के लिए पाठ बनाए तथा अभ्यास कराए जाते हैं।

भारत में सुपर कंप्यूटर के निर्माता 'सी-डेक' ने कंप्यूटर के माध्यन से हिंदी-शिक्षण के लिए बहुआयामी सॉफ्टवेयर पैकेज विकसित किया है। इस पैकेज के माध्यन से हिंदी तथा वाक्य-संरचना के साथ प्रमाणिक उच्चारण और चित्रों के माध्यम से शुद्ध उच्चारण और शुद्ध लेखन भी संभव हो रहा है। यह पैकेज उन लोगों के लिए विशेष उपयोगी है जो हिंदी भाषी नहीं है। आजकल विदेश में इसकी विशेष मांग है। विदेश में रहने वाले और भारतीय संस्कृति और भाषा से जुड़े लोगों के लिए विशेष उपयोगी है। इन पाठों को रोचक कथ्य और अभ्यासों के माध्यम से विकसित किया गया है।

वर्तमान समय में भारत के स्कूलों में कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी-शिक्षा 'CLASS' कार्यक्रम के अन्तर्गत शुरू किया गया है। यह इंग्लैण्ड की भेंट स्वरूप होने के कारण प्रारंभ में इसके सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर अंग्रेजी उपयोग के लिए थे। बाद में सी.एम.सी. लिमिटेड ने बी.बी.सी. माइक्रो नामक इस कंप्यूटर में आवश्यक परिवर्तन करके 'प्रश्नकोश' आदि अनेक सॉफ्टवेयर हिंदी में विकसित कर लिए। कंप्यूटर पर हिंदी-शिक्षण संदर्भ में आई.आई.टी., मद्रास का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। वहाँ के शुक्ला दंपत्ति ने ऐसी प्रणाली विकसित की है कि हिंदी के माध्यम से सभी विषयों के शिक्षण दिया जा सकता है। माउस द्वारा सभी प्रकार के रेखाचित्र खींचे जा सकते हैं। स्कैनर द्वारा चित्रों को स्म तिकोश में सुरक्षित किया जा सकता है। हिंदी भाषा-शिक्षण हेतु दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा ने आई.आई.टी., मद्रास के सहयोग से एक उपयोगी योजना तैयार की है। भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर और हिंदी संस्थान, आगरा के द्वारा बी.बी.सी. माइक्रो पर हिंदी और भारतीय भाषाओं के शिक्षा हेतु विदेश माइक्रोसॉफ्ट तैयार किया गया है।

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि निकट भविष्य में कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी-शिक्षण का उपयोगी रूप सामने आ जाएगा।

11.2 वर्तनी-शोधन

कंप्यूटर वर्तमान युग में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाला विशेष उपयोगी यंत्र है। इसका बहुआयामी प्रयोग होता है। भाषिक अनुप्रयोग के संदर्भ में कंप्यूटर की उपयोगिता अनिवार्य होती जा रही है। जिस प्रकार एक विद्यार्थी कुछ लिखता है, तो उसमें गलतियों की संभावना होती है। भाषा की गलतियाँ मुख्यतः दो प्रकार की होती है-प्रथम-वर्तनी की गलती, द्वितीय-व्याकरण की अशुद्धि। शिक्षण इन गलतियों को संशोधित कर देता है। इसी प्रकार हम जब कुंजीपटल के माध्यम से आँकड़ा संसाधन करते हैं, अर्थात् जब कुंजीपटल के माध्यम से विषय-वस्तु को कंप्यूटर में टाइप करते हैं तो मॉनीटर उपर उसे पढ़ा जा सकता है। आँकड़ा या विषय वस्तु मॉनीटर या स्क्रीन के माध्यम से द श्य होता है।

कुंजीपटल के प्रयोग स्ट्रोक के साथ शब्द-संरचना हेतु वर्ण की मात्राओं के चिह्न उभरते रहते हैं। शब्द की संरचना पूरी होती है। कंप्यूटर उसकी शुद्धता का निर्णय प्रकट कर देता है। यदि शब्द वर्तनी की द ष्टि से शुद्ध होगा, तब कोई संकेत नहीं होता। वर्तनी की अशुद्धि होने पर शब्द के नीचे लहरदार लाला लाईन उभर आती है, यथा-कंप्यूटर को आधुनिक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। '' वाक्य-रचना के समय रेखा का अर्थ है कि कंप्यूटर को आधुनिक 'सधन' लिखते ही 'सधन' के नीचे वर्तनी अशुद्धि के लिए लाल लहरदार देखा उभर आएगी। इस संकेत रेखा का अर्थ है कि कंप्यूटर के मस्तिष्क (मेमोरी) में ऐसा कोई शब्द है ही नहीं। जिस प्रकार एक विद्यार्थी कोई शब्द लिखता है और शब्द की वर्तनी संदिग्ध होने पर शब्दकोश का सहारा लेता है। यदि शब्दकोश में वह शब्द हो ही नहीं, तो वह अपने लिखे शब्द को अशुद्ध मान लेता है। इसके बाद संशोधन करता है।

कंप्यूटर के मस्तिष्क में एक शब्द कोश सुरक्षित कर दिया जाता है। उसी के माध्यम से कंप्यूटर शब्द-संशोधन के समय ही उसकी वर्तनी की शुद्धता का परीक्षण कर त्वरित निर्देश करता रहता है। कंप्यूटर का प्रारंभिक प्रयोग अंग्रेजी भाषा क्षेत्र में हुआ है। इसलिए अंग्रेजी में वर्तनी, संशोधन की प्रक्रिया पर्याप्त समय पहले से है, किन्तु हिंदी में भी वर्तनी-संशोधन की प्रक्रिया लोकप्रिय हो गई है।

जब वाक्य के शब्द के अशुद्ध होने का संकेत किया जाता है उसकी वर्तनी संशोधन के लिए सर्वप्रथम टूल्स (Tools) पर क्लिक करते हैं, तो कई पद्धतियों के विवरण-संकेत सामने आते हैं। इनमें से 'वर्तनी और व्याकरण' पर क्लिक करते हैं तो वर्तनी - संशोधन के लिए तीन या चार शुद्ध विकल्प सामने आ जाते हैं। वाक्य के भावानुकूल शब्द का चयन कर उस पर क्लिक करते ही अशुद्ध शब्द स्वयंमेव शुद्ध हो जाता है। यथा-पूर्व वाक्य था - 'कंप्यूटर का आधुनिक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।'' जब सध्न को शुद्ध करने के लिए टूल्स (Tools) पर क्लिक कर वर्तनी और व्याकरण पर क्लिक करते हैं तो तीन/चार शुद्ध शब्द आते हैं -

साधन
साधनता
साधना

इसके पश्चात् 'साधन' पर क्लिक करते हैं। वाक्य का शब्द 'सध्न' संशोधित होकर 'साधन' बन जाता है।

वर्तनी शुद्ध करने के दूसरा तरीका है कि यदि शब्द गलत शब्द पर माउस के दाहिने ओर से उस पर क्लिक करें, तो गलत शब्द के लिए शुद्ध शब्दों के पूर्ववत् तीन/चार विकल्प सामने आ जाएंगे। इनमें से भावानुसार चयन कर उस पर क्लिक करने से वाक्य का अशुद्ध रूप शुद्ध हो जाता है। भाषिक अनुप्रयोग में वर्तनी संशोधन का विशेष महत्व है इसके द्वारा एक हिंदी भाषा के मानक रूप में प्रयोग को सबल आधार मिलता है, वहीं दूसरी ओर हिंदी भाषा-शिक्षण का उत्कृष्ट अवसर मिलता है।

निश्चय ही भाषा-प्रयोग और भाषा-शिक्षण में जो भूमिका शब्द कोश और शिक्षण की होती है, वहीं भूमिका कंप्यूटर आधारित वर्तनी-संशोधन की है।

11.4 मशीनी अनुवाद

वर्तमान वैज्ञानिक युग में मानव नए-नए संदर्भो से सुपरिचित होना चाहता है। प्रौद्योगिकी क्रांति के साथ मशीनी अनुवाद की अपेक्षा हुई है। आज नए-नए ज्ञान-विज्ञान की जानकारी के लिए त्वरित अनुवाद की अपेक्षा है। यह सुस्पष्ट मान्यता है कि मानव द्वारा निर्मित कंप्यूटर मानव से कहीं त्वरित कार्य कर सकता है। अनुवाद के संदर्भ में अभी यह गुणवत्ता और विश्वसनीयता नहीं है। अनुवाद कार्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-प्रथम, जहाँ पर सूचनात्मक, विवरणात्मक तथ्यों की बात है, वह कंप्यूटर पूर्ण त्वरित और सफलता

से कर लेता है और इसे कंप्यूटर से सम्पन्न करना चाहिए। द्वितीय, गुणवत्तापूर्ण सहित्यिक अनुवाद-कार्य व्यक्तिगत रूप में सम्पन्न करना संभव है। वर्तमान समय में अनुवाद-कार्य का यह विभाजन उपयोगी होगा।

मशीनी अनुवाद वास्तव में अन्तरविद्यावर्ती विषय है। इसका प्रथम और प्रमुख भाग भाषा-विश्लेषण, द्वितीय या बहुभाषी कोश-निर्माण एवं भाषा-आधार पर विश्लेषण और मूल्यांकन करना है। दूसरी ओर कंप्यूटर विशेषज्ञों द्वारा कंप्यूटर के आपेक्षिक कार्यक्रमों के द्वारा अनुवाद की विभिन्न प्रक्रियाओं दोनों भाषाओं के व्याकरणिक सांस्कृतिक नियमों के आधार पर अनुवाद कार्य सम्पन्न करने के लिए सॉफ्टवेयर विकसित करना है।

मशीनी अनुवाद का अर्थ है कि अनुवाद का कार्य कंप्यूटर सम्पन्न करता है। जिस प्रकार अनुवादक क्रमशः विश्लेषण, अंतरण और समायोजन करता है, उसी प्रकार कंप्यूटर को भी इन तीनों आधारों से गुजरना होता है। अनुवादक स्त्रोत भाषा के पाठ को पढ़ाता है, उसका विश्लेषण कर तथ्य ग्रहण करता है। कोष-आधार पर लक्ष्य भाषा में अन्तरण करता है। इस प्रक्रिया में लक्ष्य-भाषा की संरचना और सांस्कृतिक आधारों पर समायोजन किया जाता है। कंप्यूटर में ये प्रक्रिया विशेष सॉफ्टवेयर के माध्यम से की जाती है। विश्लेषण से संबंधित प्रक्रिया-सामग्री को 'पार्सर' तथा समायोजन संबंधी प्रक्रिया को 'जेनेरेटर' नाम दिए जाते हैं।

मशीनी अनुवाद का उद्‌भव और विकास

मशीनी अनुवाद का प्रारंभ बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक से मान सकते हैं। वैसे इसका प्रारंभ सन् 1993 से हो चुका था। इस समय अनुवाद को कोड ब्रेकिंग के रूप में स्वीकार किया गया थां इस समय द्विभाषी शब्दकोशों का महत्व दिया गया है। इससे द्विभाषी कोशों में प्रव ष्टियों का अवसर मिला। मशीनी अनुवाद की वास्तविक शुरूआत वारेन टीवर के 1947 के आलेख ऑन ट्रांसलेशन को माना जा सकता है। इसी समय टाउन विश्वविद्यालय में मशीनी अनुवाद की प्रक्रिया शुरू की गई। शुरू में रूसी-अंग्रेजी अनुवाद सिस्ट्रान (SYSTRAN) तंत्र से अपनाया गया। इसके बाद अंतरिक्ष विज्ञान की महत्वपूर्ण जानकारियों को अनुवाद के साथ महत्वपूर्ण गुणवत्ता को अपनाने का प्रयत्न किया गया। इसी समय उच्च गुणवत्ता अनुवाद तंत्र (General Purpose High Quality Machine Translation) अमेरिका की ALPAC समिति के द्वारा 1964 से दो वर्ष तक मशीनी अनुवाद पर कार्य करते हुए इस कठिन कार्य को सम्पन्न करने के लिए विश्लेषण सिद्धान्त विकसित करने पर बल दिया गया। इसके आधार पर अमेरिका और अन्य देशों में भाषा-विश्लेषकों (Language Parsers) का विकास किया गया।

मशीनी अनुवाद में क्रांतिकारी रूप 1976 में आया जब कनाडा प्रसारण सेवा द्वारा TAUMMETEO अनुवाद तंत्र का विकास किया गया। इसके साथ यूरोपिय भाषाओं के अनुवाद हेतु 'सिस्ट्रन' अनुवाद तंत्र विकसित किया गया। इस प्रकार ARIANE, METAL, SUSY और MU अनुवाद तंत्र विकसित किए गए।

इस समय तक अनुवाद में भाषाविदों को महत्व नहीं दिया जाता था। अनुवादकों का उपयोग केवल 'इनपुट' के पूर्व संपादन और 'आउटपुट' के बाद 'पश्च संपादन' में किया जाता था।

भाषा-संसाधन के मशीनी अनुवाद हेतु कापलान और ब्रेसनिन का लैक्सीकल फंक्शनल ग्रामर (LFG) का सिद्धान्त 'पार्सर' निर्माण हेतु 1979 ई० में सामने आया। इसी आधार पर के.बी.एम.टी. (KBMT) अनुवाद तंत्र अमेरिका के कार्नेजी मेलन विश्वविद्यालय द्वारा विकसित किया गया। कंप्यूटर भाषा-विश्लेषण सिद्धान्त विकसित हुए। इसी आधार पर पार्सर निर्माण हेतु कंप्यूटर भाषा-विश्लेषक सिद्धान्तों में 'ट्री एडज्वाइनिंग ग्रामर' (टी.ए.जी.) डेफिनिट क्लाज ग्रामर (डी.सी.जी.) सामने आए हैं।

मशीनी अनुवाद के भेद

मशीनी अनुवाद – मशीनी अनुवाद का प्रारंभिक रूप शाब्दिक अनुवाद है। इसे WORD EXPERT नाम दिया जाता है। इस प्रक्रिया में स्त्रोतभाषा के वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों को लक्ष्यभाषा के भावानुकूल बदला जाता है। इसके साथ लक्ष्यभाषा के अनुरूप वाक्य को पुनः नियोजित किया जाता है। इसे SYSTRAN तकनीक के अन्तर्गत माना गया है।

संरचनात्मक अंतरण – इस अनुवाद में सर्वप्रथम स्त्रोत-भाषा के वाक्य का संरचनात्मक विश्लेषण करने के पश्चात् लक्ष्यभाषा के अनुरूप वाक्य संरचनात्मक किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1976 में विकसित मशीनी अनुवाद इसी तंत्र पर विकसित किया गया। यूरोपिय समुदाय की भाषाओं का EUROTRA में इसी तकनीक को अपनाया जाता है। इस प्रक्रिया में विश्लेषण, अतंरण और विश्लेषण-क्रम को अपनाया जाता है।

आर्थी आधारित भाषा-संरचना – इसके अन्तर्गत स्त्रोत-भाषा की संरचना करके विश्लेषण करने के बाद उसमें निहित अर्थ को लक्ष्य-भाषा की संरचना में प्रजनन (Generation) किया जाता है। जापानी मशीनी अनुवाद तंत्र इसी आधार विकसित किया गया है। जापानी तंत्र MU और PIVOT में इसी प्रकार के पार्सर तैयार किये गये हैं। 1989 में अमेरिका में विकसित के.बी.एम.टी. (KBMT) मशीनी अनुवाद तंत्र इसी तकनीक पर आधारित है।

भारत में मशीनी अनुवाद-भारत वर्ष में कंप्यूटर आधारित अनुवाद बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक से प्रारंभ हुआ है। प्रकृति भाषा संसाधन (Natural Language Processing) की दिशा में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च TIFR और अब NCST), मुम्बई में आर. चन्द्रशेखर का प्रयास उल्लेखनीय है।

सूचना प्रौद्योगिकी विभाग के द्वारा भारतीय भाषाओं में प्रौद्योगिक विकास योजना बनाई गई। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में 'अक्षर भारती' में भारतीय भाषाओं के परस्पर अनुवाद का प्रयास शुरू किया गया। इसी क्रम में हैदराबाद विश्वविद्यालय में प्राकृत भाषा संसाधन में तेलगु, पंजाबी, मराठी आदि भाषाओं से हिंदी में अनुसारकों के विकास की योजना बनाई गई। अब ये अनुसारक प्रौद्योगिक विभाग के 'सर्वर' पर उपलब्ध हैं।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद की दिशा में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के द्वारा 'आंग्लभारती' और 'अनुभारती प्रविधियों' के द्वारा मशीनी अनुवाद शुरू किया गया। याहीं से 1992 ई० में कारपोर उदाहरण आधारित मशीनी अनुवाद तंत्र विकसित करने की योजना बनी। 1999 ई० में एलिटेक्स (ELITEX) प्रदर्शनी में इस स्थान दिया गया। यह प्रयोग तंत्र के रूप में सामने आया।

1995 में मीडिया के उपयोग के लिए नेशनल कौंसिल फॉर साईस टैक्नोलॉजी (NCST) द्वारा मात्रा (MATRA) मशीनी अनुवाद तंत्र का विकास किया गया इसका उद्देश्य था - अंग्रेजी में प्राप्त समाचार को हिंदी में अनुवाद कर यू.एन.आई. में उपयोग करना। इसका उपयोग आज भी विस्तार के साथ हो रहा है अभी और भी विस्तार की अपेक्षा है।

भारत सरकार के राजभाषा विभाग के वित्त-पोषण से सी-डेक, पुणे द्वारा अनुवाद 'तंत्र-मंत्र' का आविष्कार किया गया। इसका उद्देश्य था-सरकार द्वारा जारी सूचनाओं का अनुवाद कर प्रसारित करना। यह कार्य 1996-97 से शुरू हुआ। इस मशीनी तंत्र द्वारा सरल वाक्यों के अनुवाद तक सीमित रखा गया। सी-डेक, पुणे इसे प्रभावी बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

मशीनी अनुवाद में स्त्रोत तथा लक्ष्य दो भाषाओं के रूप में अपनाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि यह कार्य आधुनिक कंप्यूटर तकनीक पर आधारित है, किन्तु मूलाधार भाषा है। इस प्रकार इसमें भाषिक नियमों के ज्ञाता अर्थात् भाषाविदों की भूमिका विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस कार्य में भाषा की विभिन्न प्रयुक्तियों के अध्ययन-विश्लेषण के आधार पर मशीनी अनुवाद के विकास की आवश्यकता है। इस कार्य को गति देने के लिए विभिन्न भाषा इकाईयों मुख्यतः 'पद-कोश' निर्माण की भी अपेक्षा है। इस दिशा में भारत सरकार का सूचना प्रौद्योगिकी विभाग गंभीरता से कार्य कर रहा है।